Master of Arts (Public Administration) (DDE)

Semester – II

Paper Code – 20PUB22C5

FINANCIAL ADMINISTRATION – II

वित्तीय प्रशासन – II

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)

NAAC 'A+' Grade Accredited University

Material Production

Content Writer: *Dr.* _____

Copyright © 2020, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

ISBN :

Price : Rs. 325/-

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

MASTER OF ARTS (PUBLIC ADMINISTRATION)

SECOND SEMESTER

FINANCIAL ADMINISTRATION – II

PAPER CODE -20PUB22C5

M. Marks = 100
Term End Examination = 80
Assignment = 20
Time = 3 hrs.

Note : Attempt five questions by selecting one question from each unit. Question No. 9 is compulsory. All Questions carry equal marks.

Course Outcomes : On successful completion of the course the student will be able to :

CO – 1. Acquaint with the role of Monetary, Fiscal and Disinvestment Policy.

CO – 2 Explain the Parliamentary control over Finance, Delegation of Financial Powers in relation to Centre and States.

CO – 3. Familiar with Modified Accounting System and Performance Audit as well as the basics of Accounting and Auditing System

CO – 4. Describe the organization and functions of Central Board of Direct Taxes and Central Board of Excise and Custom as well as features of different committees and Commission of Tax Reforms.

UNIT – I

- Monetary Policy of India : Meaning, Objectives, Types and Instruments;
- Fiscal Policy of India : Meaning, Objectives, Techniques and LImitations;
- Disinvestment Policy of India : Meaning, Objectives, Importance and Features; Role of International Monetary Fund in Monetary Policy

UNIT – II

- Fiscal Federalism in India, Delegation of Financial Powers, Parliamentary Control over Public Finance, Public Debt.

UNIT – III

- Accounting System in India : Evolution Meaning, Objectives, Forms and Characteristics; Controller General of Accounts; Auditing System in India : Evolution, Meaning, Objectives and Characteristics, Second Administrative Reforms Commission and Financial Management.

UNIT – IV

- Tax Administration : Evolution, Meaning Importance, Principles and Types of Taxation, Central Board of Direct Taxes, Central Board of Excise and Custom, Goods and Services Tax.

SUGGESTED BOOKS

- Baisya, K.N., Financial Administration, New Delhi : Omsons Publications, 1992.
- Chand, Prem, Control of Public Expenditure in India, Allied Publishers, New Delhi, 2010.
- Chand, Prem, Performance Budgeting, Allied Publishers, New Delhi, 2010.
- Chaturvedi, T.N. and K.L. Honda, Financial Administration, New Delhi, IIPA, 1992.
- Chaturvedi, T.N. and K.L. Honda, Financial Administration, New Delhi : Indian Institute of Public Administration, 1986.
- Gautam, P.N., Bhartiya Vitt Prashsan, Chandigarh, Haryana Sahitya Academy, 1993.
- Goel, S.L., Public Financial Administration, New Delhi : Deep & Deep, 2008.
- Government of India, Report of the 2nd ARC on Financial Management, 2009.
- Government of India, Report of the 1st ARC on Centre State Relations; Delegation of Financial and Administrative Powers, 1969.
- Gupta, B.N., Indian Federal Finance and Budgetary Policy, Chaitanya Publishing House, Allahabad, 2006.
- Handa, K.L. (ed.), Financial Administration, New Delhi, IIPA, 1986.
- Lal, G.S., Financial Administration in India, Delhi, HPJ Kapoor, 1969.
- Mahajan, Sanjeev Kumar & Anupma Puri Mahajan, Financial Administration in INdia, New Delhi, PHI Learning Pvt. Limited, 2014.
- Mathur, Kuldeep (ed.), Development Policy and Administration, Sage, New Delhi, 1996.
- Mukerjee, S.S., Financial Administration in India, Delhi, Surjeet Book Deport, 1980.
- Palekar, S.A., Development Administration, PHI Learning Private Limited, New Delhi, 2012.
- Radhey Sham, Financial Administration, New Delhi, Surjeet Book Deport, 1992.
- Sarapa, Public Finance in India, Kanishka Publishers, Distributors, New Delhi, 2004.
- Sharma, Manjusha and O.P. Bohra, Bhartiya Lok Vit Prashashan, Delhi, Ravi Books, 2005.
- Singh, Sahib and Swinder Singh, Personnel and Financial Administration, Chandigarh, New Academic, 1994.
- Sundharam, KPM, Indian Public Finance and Financial Administration, New Delhi, S. Chand, 1973.
- Thavaraj, MJK, Financial Administration in India, New Delhi, S. Chand, 1995.
- Tiwari, A.C., Problems of Fiscal Management in the Government, Delhi, SHIPRA Publications, 1995.
- Verma, V.P., Financial Administration – Concept and Issues, New Delhi, Alfa Publications, 2008.
- Wattal, P.K., Parliamentary Financial Control in India, Bombay, Minerva, 1962.

विषय सूची

क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	मौद्रिक नीति : अर्थ, उद्देश्य, प्रकार	1
2.	राजकोषीय : अर्थ, उद्देश्य, तकनीक तथा सीमाएँ	9
3.	भारत में विनिवेश नीति : अर्थ, उद्देश्य, महत्त्व तथा विशेषताएँ	21
4.	अर्न्तराष्ट्रीय मुद्राकोष की भूमिका	36
5.	भारत में वित्त संघवाद	45
6.	वित्तीय शक्तियों का प्रत्यायोजन	55
7.	सार्वजनिक वित्त पर संसदीय नियन्त्रण	65
8.	भारत में लेखा प्रणाली एवं लेखा परीक्षा प्रणाली	75
9.	द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग और वित्तीय प्रबन्ध	94
10.	कर प्रशासन : अर्थ, महत्व, प्रकार, विशेषताएँ	100
11.	केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड	122
12.	केन्द्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क बोर्ड	139

अध्याय – 1

मौद्रिक नीति : अर्थ, उद्देश्य, प्रकार

Monetary Policy : Meaning, Objectives, Types

रूपरेखा

- मौद्रिक नीति का अर्थ
- उद्देश्य
- प्रकार
- यन्त्र तथा क्रियान्वयन
- सारांश
- कुछ उपयोगी पुस्तकें
- कुछ संभावित प्रश्न

मौद्रिक नीति की प्रस्तावना (Introduction to Monetary Policy)

एक देश अपनी सीमाओं के मध्य विकास परियोजनाओं को विनियोग के स्तर के द्वारा प्रभावित कर सकता है। इसे वह साख के प्रवाह को नियमित करने की कुशलता द्वारा सम्भव करता है।

विकसित देशों के कोषों की उपलब्धता को नियमित करने का मुख्य मौद्रिक उपाय (1) खुले बाजार की क्रियाएँ, (2) कोषों की आवश्यकता में परिवर्तन तथा (3) बट्टे की दर में समायोजन या सदस्य बैंकों को केन्द्रीय बैंक द्वारा दिए जाने वाले कर की दर में परिवर्तन कर सम्भव होता है।

कम विकसित देशों में मौद्रिक नीति की क्रियाशीलता सीमित होती है। इसका कारण यह है कि इन देशों में सरकारी प्रतिभूतियों के लिए पर्याप्त बाजार नहीं होता तथा खुले बाजार की क्रियाओं के कार्यकरण का क्षेत्र सीमित होता है। साथ ही कोषों की आवश्यकता या बट्टे की दर में परिवर्तन के प्रभाव भी सीमित होते हैं।

सामान्यतः विकसित देश में केन्द्रीय बैंक आर्थिक स्थायित्व की प्राप्ति हेतु मुद्रा बाजार को नियन्त्रित करता है। कम विकसित देशों में उसे आर्थिक विकास को गति प्रदान करने हेतु न केवल मुद्रा बाजार का नियमन करना पड़ता है बल्कि आर्थिक विकास हेतु संसाधनों को भी गतिशील करना होता है।

इस प्रक्रिया में केन्द्रीय बैंक एक ओर विकास हेतु मौद्रिक संसाधनों का प्रबन्ध करता है, उनके समुचित उपयोग की व्यवस्था करता है तो दूसरी ओर उसे मुद्रा प्रसारिक शक्तियों को नियन्त्रण में रखना होता है। संक्षेप में, साख विस्तार एवं साख नियन्त्रण की शक्तियों को तालमेल युक्त रखना उसका दायित्व हो जाता है।

मौद्रिक नीति की अवधारणा एवं आशय (Concept and Meaning of Monetary Policy)

संकुचित रूप में मौद्रिक नीति केन्द्रीय बैंक द्वारा लागू साख नियन्त्रणों से मुद्रा पूर्ति को नियंत्रित करती है। विस्तृत रूप में मौद्रिक नीति के अन्तर्गत सरकार द्वारा व्यय एवं मुद्रा के प्रयोग को प्रभावित करने के विनियमित करने वाले उपाय सम्मिलित किए जाते हैं।

संक्षेप में, केन्द्रीय बैंक के द्वारा अपनाई गई नीति मौद्रिक नीति या साख नियन्त्रण नीति कहलाती है। इसके अधीन केन्द्रीय बैंक द्वारा अपनाए गए वह समस्त उपाय शामिल होते हैं जिससे वह मुद्रा प्रसार पर नियन्त्रण कर अर्थव्यवस्था को आन्तरिक स्थायित्व व बाह्य सन्तुलन की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

मौद्रिक नीति को परिभाषित करते हुए क्राउथर ने स्पष्ट किया कि मुद्रा की व्यवस्था एवं उसके कार्यकरण से उत्पन्न होने वाले दोषी को न्यून करने हेतु किए जाने वाले समस्त उपाय मौद्रिक नीति के अन्तर्गत समाहित होते है।

मौद्रिक नीति के अधीन कीमत स्थायित्व, विदेशी विनिमय स्थायित्व, पूर्ण रोजगार एवं तीव्र आर्थिक विकास जैसे उद्देश्यों हेतु केन्द्रीय बैंक मुद्रा की पूर्ति में कमी अथवा वृद्धि करता है।

आर०पी० कैंट के अनुसार, पूर्ण रोजगार के विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति हेतु मौद्रिक नीति प्रचलन में मुद्रा की मात्रा के विस्तार एवं संकुचन का प्रबन्ध करती है। अतः मौद्रिक अधिकारी द्वारा मुद्रा की पूर्ति का विनियमन मौद्रिक नीति है।

प्रो० ए०जी० हार्ट मौद्रिक नीति के द्वारा तथा राजकोषीय नीति से मौद्रिक अधिकारी अथवा सरकार निजी उपभोग अथवा सरकारी व्यय में संसाधनों के प्रवाह को कम या अधिक कर सकती है। इस प्रकार वह विनियोग एवं पूँजी निर्माण हेतु उपलब्ध संसाधनों की मात्रा में कमी या वृद्धि कर सकती है जिसका अर्थव्यवस्था की विकास दर पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ेगा।

पाल एनजिग (Paul Einzig) मौद्रिक नीति का समुदाय का मौद्रिक प्रणाली के प्रति राजनीतिक अधिकारी का दृष्टिकोण मानते है। इस परिभाषा में नियन्त्रण के तरीके व उन उद्देश्यों को स्पष्ट नहीं किया गया है जो राजनीतिक अधिकारी के दृष्टिकोण को प्रभावित करते है।

जी०के० शॉ के अनुसार मौद्रिक अधिकारियों द्वारा मुद्रा की मात्रा, इसकी उपलब्धता तथा ब्याज की दर में परिवर्तन के लिए की गई सजग क्रियाओं से आशय मौद्रिक नीति से है। हैरी जी० जानसन मौद्रिक नीति को केन्द्रीय बैंक के मुद्रा की पूर्ति पर नियन्त्रण द्वारा अभिव्यक्त करते हैं जिसे एक उपकरण के रूप में सामान्य आर्थिक नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु प्रयुक्त किया जाता है।

प्रो० राइटमैन ने मौद्रिक नीति को ऐसे प्रयास के द्वारा अभिव्यक्त किया जो मौद्रिक पूर्ति को नियन्त्रित करता है तथा कुछ निश्चित व्यापक उद्देश्यों के लिए साख का सृजन करता है।

सार रूप में मौद्रिक नीति एक तरीका है – मौद्रिक प्रबन्ध में केन्द्रीय बैंक द्वारा अपनाया गया। एक देश का केन्द्रीय बैंक वह परम्परागत एजेन्ट है जो मौद्रिक नीति को निर्मित एवं क्रियान्वित करता है। इसी सन्दर्भ में भारत की मौद्रिक नीति भी रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के द्वारा संचालित होती है।

मौद्रिक नीति की कई मात्रात्मक विधियों के अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक साख नियन्त्रण की चुनी हुई विधियों की बेहतर समझ रखता है जिसके द्वारा वह सट्टे, जमाखोरी या फिर गैर उत्पादनीय व्यापार एवं अन्य उद्देश्यों हेतु ऋण योग्य कोषों की उपलब्धता को सीमित करता है।

वह समयानुकूल होने पर साख की राशनिंग भी कर सकता है। परन्तु सामान्यतः ऐसा नहीं किया जाता। जॉर्ज जी० सौस के अनुसार चुने हुए साख नियन्त्रण मौद्रिक पूर्ति के प्रयोग के ऐसे उदाहरण है जो मौद्रिक नीति के प्रयोग को सीधे संसाधनों के आवण्टन से प्रभावित करते है।

नैतिक राय एवं प्रचार–प्रसार भी चयनात्मक साख नियन्त्रण की सहायक विधियों है। कई केन्द्रीय बैंक साप्ताहिक रूप से वाणिज्यिक बैंकों से साप्ताहिक समयबद्ध सूचनाएँ प्राप्त करते है जिससे उनकी जमाओं, अग्रिमों एवं ऋणों के बारे में जानकारी प्राप्त हो सके।

इस प्रकार केन्द्रीय बैंक उन तरीकों से परिचित रहता है जिसके अधीन वाणिज्यिक बैंक कार्यरत है। स्पष्ट राय मशविरे के द्वारा वाणिज्यिक बैंकों को एक विशिष्ट नीति या दिशा प्रदान करते हुए समूची बैंकिंग व्यवस्था के सुचारू क्रियान्वयन को सम्भव बनाया जाता है।

वी० कृष्णमूर्ति के अनुसार, आरम्भिक स्तर पर मौद्रिक नीति एक देश के पास मुद्रा की समुचित मात्रा से सम्बन्धित रही था परन्तु बाद में मौद्रिक नीति एक या अधिक उद्देश्यों के लिए मुद्रा के परिमाण में विस्तार एवं संकुचन के प्रबन्ध से सम्बन्धित हो गयी। इनमें पूर्ण रोजगार का उद्देश्य महत्वपूर्ण था। व्यापक अर्थों में सभी प्रकार के मौद्रिक एवं बैंकिंग नियमनों को मौद्रिक नीति के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है, क्योंकि वह आर्थिक प्रणाली में विद्यमान मुद्रा के परिणाम को प्रबन्धित करती हैं।

स्पष्ट है कि एक देश का केन्द्रीय बैंक वह परम्परागत एजेन्ट है जो मौद्रिक नीति का निष्पादन एवं क्रियान्वयन करता है। भारत में मौद्रिक नीति को रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

भारतीय संदर्भो में मौद्रिक नीति सरकार एवं रिजर्व बैंक के उन निर्णयों से सम्बन्धित है जो प्रत्यक्ष रूप से – (1) मौद्रिक पूर्ति के परिणाम एवं संघटक, (2) साख के आकार एवं वितरण, (3) ब्याज दरों के स्तर एवं संरचना तथा (4) उन समस्त मौद्रिक चरों, बचत एवं विनियोग, उत्पादन, आय एवं कीमतों इत्यादि पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं।

एक मौद्रिक नीति तब निष्क्रिय कहलाती है जब केन्द्रीय बैंक जानबूझकर मौद्रिक उपायों को लागू नहीं करता। मौद्रिक नीति सक्रिय उस दशा में होगी जब वह कुछ निश्चित लक्ष्यों को समुचित मौद्रिक उपायों के द्वारा क्रियान्वित करे।

मौद्रिक नीति स्वयं में एक लक्ष को प्राप्त करने का आय है। इसके लक्ष्य, उद्देश्य एवं क्षेत्र आर्थिक वातावरण एवं समयानुकूल दशाओं से परिचालित होते है। इसकी संरचना एवं क्रियान्वयन देश के मुद्रा बाजार के संस्थागत घाटे के अधीन संचालित किया जाता है।

व्यापक अर्थों में, यद्यपि मौद्रिक नीति नियन्त्रणकारी उपाय के रूप में अकेले क्रियान्वित नहीं होती वरन् इसे राजकोषीय नीति एवं ऋण प्रबन्ध के साथ लागू किया जाता है। वास्तव में राष्ट्रीय वित्त नीति को निर्धारित करने में मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति तथा ऋण प्रबन्धन को तालमेल युक्त किया जाता है। परम्परागत रूप से साख नियन्त्रण के उपाय एवं निर्णय मौद्रिक नीति के संघटक घटक है।

मौद्रिक एवं साख नीतियाँ निम्न अन्तर्सम्बन्धित घटकों पर क्रियाशील होती है –

1 साख की उपलब्धता एवं इसका प्रवाह।

2 मुद्रा की मात्रा।

3 उधार की लागत अर्थात् मन की दर।

4 अर्थव्यवस्था की सामान्य तरलता।

एक उचित मौद्रिक नीति नियोजित विकास के कार्यक्रमों के सफल संचालन हेतु पूर्वअहर्ता है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि आर्थिक वृद्धि एक वास्तविक दशा है, मौद्रिक दशा नहीं।

लेकिन मुद्रा इसमें एक प्रावैगिक भूमिका प्रस्तुत करती है, क्योंकि यह व्यर्थ पड़े संसाधनों को क्रियाशील करती है तथा विभिन्न मदों की और मुद्रा का आवण्टन करती है। एक सुविचारित मौद्रिक नीति इसके समर्थ आवण्टन द्वारा सूचित होती है।

विकसित देशों में मौद्रिक अधिकारी मौद्रिक उपायों के नियमनकारी प्रभावों को अधिक महत्वपूर्ण मानते है जिसके द्वारा आर्थिक स्थायित्व के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके जबकि भारत जैसे विकासशील देशों में मौद्रिक नीति नियंत्रित विस्तार के उद्देश्य से सामान्यत प्रभावित होते हैं जिसमें बहुधा दो विरोधाभासी लक्ष्य समाहित होते हैं – (1) आर्थिक वृद्धि को सम्भव बनाना, (2) मुद्रा प्रसारिक दबावों को परिसीमित करना।

वास्तव में विकासशील देशों में मौद्रिक नीति के दो पक्ष होते हैं – (1) धनात्मक, (2) ऋणात्मक धनात्मक पक्ष के अन्तर्गत जहाँ यह बचतों की दर में सुधार एवं पूँजी निर्माण हेतु साख के विस्तार की सुधारात्मक क्रियाएँ करता है तो दूसरी ओर ऋणात्मक पक्ष में यह साख विस्तार को संरक्षित करते हुए देश की अवशोषण क्षमता के अनुरूप साख का उचित आवण्टन करता है।

अर्थव्यवस्था के नियमन में केन्द्रीय बैंक सरकारी बोल्ट के क्रय एवं विक्रय की किया सम्पन्न करने में सहायक हो सकता है। सरकारी बॉण्ड की माँग में वृद्धि होती है, वह उनकी कीमतों में वृद्धि का कारक बनता है तथा ब्याज की दरें गिरती है चूंकि बॉण्ड के प्रतिफल की दर ब्याज है अतः बॉण्ड की उच्च कीमतों का आशय है प्रतिफल की दरों का निम्न होना।

केन्द्रीय बैंक द्वारा बॉण्ड हेतु किया गया भुगतान भावी प्रयोग के लिए अर्थव्यवस्था में मुद्रा को वापस लाता है। केन्द्रीय बैंक द्वारा बॉण्ड की बिक्री से ठीक विपरीत प्रभाव उत्पन्न होंगे। कोषों की आवश्यकता में परिवर्तन से एक बैंक द्वारा प्रदान किए गए ऋणों की मात्रा (जो कि कोषों के एक दिए हुए स्तर पर दिए जाते हैं प्रभावित होती है)।

इस सम्बन्ध को हम निम्न समीकरण से प्रदर्शित कर सकते है –

$$\Delta M_s = \frac{1-r}{r} \Delta R$$

जहाँ ΔM_s मौद्रिक (Change in the money supply)

ΔR = कोषों (Change in reserves)

r = कोषों की आवश्यकता

कोषों की आवश्यकता (r) को सीमित या कम रखते हुए मौद्रिक पूर्ति में काफी अधिक विस्तार (कोषों में हर परिवर्तन के प्रति) होगा दूसरी ओर कोषों की आवश्यकता बढ़ने पर, कोषों में किसी परिवर्तन की विस्तार क्षमता घट जाएगी।

उदाहरण हेतु यदि 20 प्रतिशत कोष की आवश्यकता है तब कोषों में परिवर्तन (ΔR) मौद्रिक पूर्ति पर $(1 - 0.2)/0.2 = 0.8/0.2 = 4$ अर्थात् चार गुना अधिक प्रभाव डालेगा। यदि कोष आवश्यकता 10 प्रतिशत कम होती है तब कोषों में होने वाले एक समान परिवर्तन के प्रति मौद्रिक पूर्ति – $(1 - 0.10)/0.10 = 0.90/0.10 = 9$ अर्थात् नौ गुना प्रभाव डालेगी।

यदि साख की बढ़ती आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए एक देश आन्तरिक रूप से पूंजी में वृद्धि करने में कठिनाई का अनुभव करें तो आन्तरिक स्रोतों के पूरक के रूप में वह विदेशी पूंजी बाजारों का दोहन कर सकता है। विदेश से प्राप्त उधार देश को इस योग्य बनाता है कि विनियोग की दर घरेलू बचत की दर से (कम–से–कम ऋण लेने की समय अवधि तक) अधिक रहे।

लेकिन यदि विनियोग परियोजना ऋण समय अवधि में उत्पादकता में वृद्धि नहीं करती व आय का सृजन नहीं होता तब या तो पुनः एक नए ऋण के लिए प्रयास करना पड़ता है ताकि एक समय अवधि अन्तराल में उत्पादन व आय का स्तर बड़े अन्यथा उधार व ब्याज भुगतान के चक्र विषम होकर जीवन–स्तर में कमी कर देंगे।

विदेश उधार की समर्थता मुख्यतः घटकों पर निर्भर करती है –

1 घरेलू उत्पादकता में वृद्धि की सम्भावनाएँ, यदि ऋण लेने व उसका पुर्नभुगतान करने की अवधि में घरेलू उत्पादन बड़े तो यह एक बेहतर दशा है।
2 प्राप्त होने वाले ऋण पर ली जाने वाली ब्याज की दर।
3 वह समय अवधि जिसके अधीन ऋण प्राप्त हो रहा है तथा वह अतिरिक्त समय जब वास्तविक पुर्नभुगतान किया जाएगा।
4 व्यापार की शर्तों की दशा जो ऋण की समय अवधि में दिखाई दे।
5 अर्थव्यवस्था में बचतों में वृद्धि की जाने की कुशलता जो प्राप्त ऋण के फलस्वरूप उत्पन्न होगी।
6 वृद्धि को बनाए रखने या अनुरक्षित करने हेतु किए जाने वाले नये विनियोग की दर, जबकि ऋण की समय अवधि पूरी हो गई हो।

मौद्रिक नीति के उद्देश्य (Objectives of Monetary Policy)

सार रूप में, मौद्रिक नीति को मौद्रिक क्षेत्र में सरकार की अर्थ नीति के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। अतः मौद्रिक नीति के उद्देश्यों को सरकार द्वारा तय किए गए समूचे आर्थिक उद्देश्यों के सन्दर्भ में देखा जाना आवश्यक है।

मौद्रिक नीति का लक्ष्य विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति से सम्बन्धित होता है जो तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होती है। भारत के सन्दर्भ में मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य आधारभूत रूप से आर्थिक विकास की गति को संगत कीमत स्थायित्व के साथ तीव्र करना रहा है।

लोकनीति का एक पक्ष होने के कारण मौद्रिक नीति विभिन्न व्यापक आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने से सम्बन्धित होती है जबकि द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व मौद्रिक नीति का परम्परागत उद्देश्य सामान्यतः कीमत स्थायित्व एवं विनिमय स्थायित्व तक ही सीमित रहा है।

मेयर एवं बाल्डविन के अनुसार, ''कम विकसित देशों में मौद्रिक नीति साख की लागत एवं पूर्ति को प्रभावित कर, मुद्रा प्रसार के नियन्त्रण एवं भुगतान सन्तुलन के साम्य द्वारा आर्थिक विकास को प्रोत्साहन प्रदान करती है।

जब विकास की गति तीव्र होने लगती है तब व्यापार के विस्तार एवं जनसंख्या वृद्धि की आवश्यकताओं को पूर्ण करने हेतु साख की लोचदार पूर्ति की आवश्यकता होती है जिसके लिए समर्थ मौद्रिक नीति की भी आवश्यकता पड़ती है।

अतः मौद्रिक नीति –

1 बचत व विनियोग हेतु अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने में सहायक हो आर्थिक विकास की गति प्रदान करती है।
2 सस्ती मुद्रा नीति द्वारा इससे साख की लागत को न्यून किया जा सकता है।
3 अनुकूल वित्तीय संस्थाओं की स्थापना द्वारा वह पूंजी निर्माण हेतु संसाधनों को गतिशील करने में सहायक होती है।
4 मुद्रा प्रसारिक दबावों को नियंत्रित कर विनियोग प्रोत्साहन प्रदान करती है। विभेदात्मक ब्याज दरों एवं साख के प्रयोग पर नियन्त्रण द्वारा विनियोग की चाहे जाने वाली राशि प्राप्त करने में सहायक सिद्ध हो सकती है।
5 न्यूनार्थ वित्त प्रबन्धन के द्वारा विकास योजनाओं हेतु चाही जाने वाली धनराशि की गतिशीलता हेतु समर्थ होती है।
6 प्रो० जे०ई० मीड के अनुसार, भुगतान सन्तुलन असमायोजन के निवारण हेतु राजकोषीय नीति के साथ मौद्रिक नीति का संयोग प्रभावकारी होता है जिससे विदेशी विनिमय स्थायित्व सम्भव होता है।

रेडक्लिफ कमेटी ने विकसित देशें के सन्दर्भ में मौद्रिक नीति के निम्न उद्देश्य स्पष्ट किए –

1 रोजगार का एक उच्च एवं स्थायी स्तर।
2 मुद्रा के आन्तरिक मूल्य को उचित कीमत स्थायित्व के द्वारा अनुरक्षित रखना।
3 अविरत आर्थिक वृद्धि, आय का उच्च एवं वृद्धिमान स्तर तथा देश के जीवन स्तर में सुधार।
4 भुगतान सन्तुलन में सुधार।
5 स्थायी विनिमय दरें तथा विदेशी विनिमय कोषों का सुदृढ़ीकरण।

ब्रिटेन में 1959 में प्रस्तुत रेडक्लिफ कमेटी की रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया गया है कि मौद्रिक क्रिया वित्तीय संस्थाओं, फर्मो व वास्तविक संसाधनों पर व्यय करने वाले लोगों की तरलता में परिवर्तन कर कुल माँग पर प्रभाव डालती है।

वह घटक जिससे मौद्रिक नीति को प्रभावित या नियन्त्रित किया जा सकता है मुद्रा की पूर्ति से कुछ हट कर है। इसलिए मौद्रिक अधिकारियों को मौद्रिक प्रणाली के केन्द्रीय कल व्याप्त दरों की संरचना को ध्यान में रखना चाहिए न कि केवल मुद्रा पूर्ति को।

व्यावसायिक गतिविधियों एवं वर्तमान मौद्रिक स्थिति में सबसे महत्वपूर्ण श्रृंखला आय या मुद्रा की मात्रा नहीं है बल्कि कुल तरलता है जिसमें ब्याज की दरी में परिवर्तन के कारण विवर्तन होता है। इसलिए मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य मुद्रा की मात्रा के नियन्त्रण पर न होकर अर्थव्यवस्था की कुल तरलता की दशा के नियंत्रण पर होना चाहिए।

तरलता की दशाओं में आर०एस० सेयर्ज ने सैद्धान्तिक पक्ष प्रस्तुत किये। इसलिए मुद्रा की तरलता पर रैडक्लिफ – सेयर्ज थीसिस महत्पूर्ण बनी।

मौद्रिक नीति का क्रियान्वयन

- तरलता नियंत्रण हेतु प्रबन्ध इसलिए कठिन हो जाता है, क्योंकि सभी वित्तीय संस्थाओं पर केन्द्रीय बैंक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीके से नियन्त्रण स्थापित नहीं कर पाता। यदि नई–नई गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाएँ सामने आती रहें और केन्द्रीय बैंक इन पर प्रभावी प्रबन्ध के द्वारा नियंत्रण कर ले तब कोई समस्या नहीं।
- तरलता प्रभाव के द्वारा नियन्त्रण ब्याज की दर में परिवर्तनों से सम्भव हो सकता है। अन्ततः रैडक्लिफ कमेटी ने यह सुझाव दिया कि सामान्य परिस्थितियों में मौद्रिक नीति को राजकोषीय नीति के साथ सयोजित किया जाये। गुरले व शॉ तरलता के सम्बन्ध में मौद्रिक नीति को राजकोषीय नीति के अधीन नहीं मानते।

उन्होंने स्पष्ट किया कि आर्थिक वृद्धि होने पर बैंक व वित्त संस्थाएँ तेजी से बढ़ती है। इससे अधिक परिसम्पत्तियाँ सृजित होती हैं व तरलता बढ़ती है। यदि वित्तीय संस्थाओं को केन्द्रीय बैंक के नियन्त्रण से बाहर रखा जाएगा तो संकट बढ़ेगा। अतः मौद्रिक अधिकारी गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थों पर विनिमयन रखें।

मौद्रिक नीति के लक्ष्य (Targets of Monetary Policy)

मौद्रिक नीति के यंत्र मौद्रिक नीतियों के उद्देश्यों के अनुरूप तब समर्थ रूप से क्रियाशील नहीं हो पाते जब मौद्रिक अविकारी अनिश्चितता के कारण यह अनुमान नहीं लगा पाते कि समस्या का वास्तविक कारण क्या है और इसके समाधान हेतु व किस यन्त्र उपकरणों को चुनें।

जो यन्त्र चुने जाते है आवश्यक नहीं कि वह तुरन्त प्रभाव दिखाएँ। फिर मुद्रा बाजार से सम्बन्धित सूचनाओं को एकत्रित करने, उनके निदान हेतु प्रभावी उपकरण चुनने में भी विलम्ब होता है।

इसे सूचना अन्तराल की संज्ञा दी जाती है। सामान्यीकरण पर आधारित उद्देश्य अर्थव्यवस्था में कार्यरत चरों व प्राचलों के साथ गैर नीति घटकों से प्रभावित होते हैं। इन्हें एक–दूसरे से पृथक् करना मुश्किल होता है। इन कठिन दशाओं में बहुधा नीतियों के निर्माण से सम्बन्धित उद्देश्य चरों के स्थान पर कुछ कृत्रिम चरों का प्रयोग किया जाता है।

बहुधा लक्ष चरों को प्रचालन अथवा कार्यकारी तथा मध्यवर्ती लक्ष्यों में वर्गीकृत करते है। प्रचालन लक्ष्य मौद्रिक नीति के रोजाना व्यवहार में प्रयुक्त होते है। इनमें ब्याज की दर, बैंक रिजर्व व मौद्रिक आधार को सम्मिलित करते हैं।

मध्यवर्ती चर वह है जो मौद्रिक नीति के रोजाना व्यवहार में समायोजन करने व शुद्धता लाने हेतु निर्देशित किए जाते है। प्रमुखतः मध्यवर्ती लक्ष्य मुद्रा की पूर्ति एवं ब्याज की दर में होने वाले परिवर्तन हैं।

संक्षेप में मौद्रिक पूर्ति के लक्ष्य (1) मुद्रा की पूर्ति, (2) बैंक साख व (3) दीर्घकालिक ब्याज की दरें हैं।

एक बेहतर व कारगर मौद्रिक नीति, अपने लक्ष्यों में निम्न गुणों का समावेश करती है –

- मौद्रिक नीति के उद्देश्य के साथ मात्रात्मक सम्बन्ध हो जिससे पड़ने वाले प्रभाव के बारे में असमंजस व अनिश्चितता न रहे।
- यह शीघ्रता से एक अथवा एक से अधिक नीति उपकरणों से प्रभावित हो।
- इसको निर्दिष्ट किया जा सके। यह समय अवधि अन्तराल या पश्चता के बिना माप की जाने योग्य हो।
- इसे मौद्रिक क्रिया के द्वारा नियन्त्रित किया जा सके।

उपर्युक्त लक्ष्यों में मौद्रिक पूर्ति व बैंक साख का अधिक बेहतर प्रभाव पड़ता है। सापेक्षिक रूप से मौद्रिक पूर्ति को बैंक साख से अच्छा लक्ष्य चर माना जाता है।

इसका कारण यह है कि –

- मौद्रिक पूर्ति मौद्रिक यंत्रों उपकरणों से शीघ्र प्रभावित होती है।
- ब्याज की दर पर गैर नीतिगत प्रभाव कम पड़ते हैं, जबकि ब्याज की दर पर मौद्रिक नीति का प्रभाव अधिक होता है।
- ब्याज दर के सापेक्ष मौद्रिक पूर्ति के परिवर्तनों व मुद्रा व्यय में सम्बन्ध अधिक स्थायी व मापनीय होते हैं। संक्षेप में ब्याज दर की तुलना में मौद्रिक पूर्ति बेहतर चर मानी जा सकती है।

मौद्रिक पूर्ति के प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन में परेशानी यह है कि –

- M_1, M_2 व M_3 में से किसको मुद्रा पूर्ति का उचित माप माना जाये।
- मुद्रा पूर्ति भी बर्हिजात घटकों से प्रभावित होती है।
- प्रायः मौद्रिक अधिकारी द्वारा मुद्रा पूर्ति की उपयुक्त मात्रा का निर्धारण किया जाना सम्भव नहीं होता।
- मुद्रा पूर्ति से सम्बन्धित मात्रात्मक समंकों की शुद्धता के बारे में सन्देह प्रकट किया जाता है।

जहाँ तक ब्याज की दरों को बेहतर लक्ष चर मानने के तर्क है उनमें – (1) यह स्पष्ट रूप से अनुभव की जा सकती है। (2) इसमें मौद्रिक नीति के यन्त्रों का तत्काल प्रभाव पड़ता है, (3) यह उत्पादकता एवं आय को साख की उपलब्धता, विनियोग श्रृंखला के प्रभावों, मूल्यांकन व लागत प्रभाव की दृष्टि से प्रत्युतर देती है।

वस्तुतः नीतिगत उपाय की तरह ब्याज की दर भी सीमाओं से परे नहीं हैं। जैसे –

1 यह बताना कठिन है कि नीतिगत उद्देश्यों पर ब्याज की दर का क्या प्रभाव पड़ेगा।
2 ब्याज की दर पर बर्हिजात तत्वो का शीघ्र प्रभाव पड़ता है।
3 ब्याज की दरें भिन्न–भिन्न होती हैं अतः किस दर का क्या प्रभाव पड़ेगा यह निर्धारित कर पाना कठिन है। अतः मुद्रा की पूर्ति एवं ब्याज की दर को एक विशेष लक्ष्य के सापेक्ष लक्ष्यों के संयोग से सम्बन्धित करना मौद्रिक अधिकारी हेतु बेहतर होगा साथ ही वह चुने लक्ष के सापेक्ष लक्ष्यों की सीमा को निर्धारित करें।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- लॉग टर्म फिस्कल पॉलिसी, गर्वनमेंट ऑफ इण्डिया द्वारा प्रकाशित, 1985
- इन जैन, रिसोर्स मोबीलाईनेशन एण्ड फिस्कल पॉलिसी ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, दीप एण्ड दीप, 1988
- सी० रंगाराजन, भारत, मौद्रिक नीति, वित्तीय स्थिरता और अन्य निबन्ध, एकडिमिक फांउडेशन, 2009
- प्रथा राय, मोट्रिक नीति, ऑक्सफोर्ड, 2013

कुछ प्रश्न

- मौद्रिक नीति की परिभाषा दो। इसके उद्देश्य तथा यन्त्र बताए।
- मौद्रिक नीति के प्रकार तथा लक्ष्य बताए।

अध्याय – 2

राजकोषीय : अर्थ, उद्देश्य, तकनीक तथा सीमाएँ

(Fiscal Policy : Meaning, Objectives, Techniques and Limitation)

रूपरेखा

- राजकोषीय नीति का अर्थ
- उद्देश्य
- तकनीके
- सीमाएं
- सारांश
- कुछ उपयोगी पुस्तकें
- कुछ संभावित प्रश्न

भूमिका (Introduction)

विगत दशकों में, विशेषकर, 1930 की महामंदी के बाद से राजकोषीय नीति, सरकार की आर्थिक नीति का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गई है। इसका अभिप्राय एक अर्थव्यवस्था में सरकार की कराधान व्यय तथा ऋण सम्बन्धी नीति से है। 19वीं शताब्दी के अन्त तक सरकार की गतिविधियाँ मुख्य रूप से देश के जनसाधारण के आर्थिक जीवन तक सीमित थी। एक राजनीतिक संस्था होने के नाते सरकार सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में केवल उन्हीं क्रियाओं को कर सकती थी जो उसके राजनीतिक कर्त्तव्यों के पालन में सहायक होती थी। यह केवल पिछली शताब्दी के आरम्भ होने के बाद ही संभव हो सका कि इन प्रतिबन्धों में ढील आई और 1930 की मंदी के बाद सरकार लोगों के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन के नियमन में एक सक्रिय भूमिका अदा कर सकी। उसी समय से सरकार ने राजकोषीय नीति का, कीमत स्तर की स्थिरता को प्राप्त करने और रोजगार के उच्च स्तर को बनाए रखने के लिए जानबूझ कर आर्थिक क्षेत्र में उपयोग करना आरम्भ किया। इसके कई कारण थे – (1) महामदी के कारण अत्यधिक बेरोजगारी को रोकने में मौद्रिक नीति की प्रभावहीनता, (2) कीन्स का 'नवीन अर्थशास्त्र' जिसने समस्त मांग की भूमिका पर जोर दिया और (3) उत्पाद तथा रोजगार के स्तर को प्रभावित करने और आय वितरण की प्रणाली को बदलने के लिए सरकारी व्यय तथा करों का बढ़ता हुआ महत्त्व। इन सब कारणों से आज राजकोषीय नीति आर्थिक स्थिरता को प्राप्त करने का एक प्रमुख माध्यम बन गई है। जिस प्रकार परम्परागत अर्थशास्त्री मुद्रा तटस्थता में विश्वास करते थे उसी प्रकार उनका यह भी विश्वास था कि सरकार को समाज के आर्थिक जीवन में किसी प्रकार का भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। दूसरे, उन्होंने इस पर भी बल दिया कि सरकार का बजट छोटा तथा संतुलित होना चाहिए अर्थात् केवल इतना, जो उसको राजनीतिक दायित्वों को पूरा करने के लिए काफी हो और यह काफी स्पष्ट भी था क्योंकि से (Say) के बाजार के नियम, जिस पर सभी परम्परागत आर्थिक सिद्धान्त आधारित थे, की

धारणा थी कि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार अस्थित रहता ही है। फिर भी 19वीं शताब्दी में मार्शल तथा पीगू ने सामाजिक कल्याण को उच्चतम सीमा तक ले जाने के लिए आर्थिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप का पक्ष लिया क्योंकि उनका विचार था कि अबंध आर्थिक नीतियों से समाज के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन पर अत्यन्त हानिकारक प्रभाव उत्पन्न हुए हैं। इन अर्थशास्त्रियों ने लोगों के आर्थिक जीवन में सरकार को एक सक्रिय भूमिका सौंपी, केवल उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए ही नहीं वरन् समाज में सामाजिक–आर्थिक असमानताओं को न्यूनतम करने के लिए भी और इस तरह उन्होंने एक बढ़े हुए सरकार बजट का पक्ष लिया। पिछली शताब्दी में कीन्स, परम्परागत आर्थिक नीतियों का सबसे बड़ा आलोचक था। उसकी पुस्तक 'सामान्य सिद्धांत' इसका प्रमाण है कि उसने इन नीतियों के प्रभुत्व का किस प्रकार समापन किया। कीन्स ने मंदी तथा संकुचन की अवस्था में एक असंतुलित बजट पर भी जोर दिया क्योंकि उसके अनुसार, अर्थव्यवस्था में यह अवस्था मुख्यतया समस्त मांग में कमी होने के कारण उत्पन्न होती है। बाद में, लर्नर ने कीन्स का अनुसरण करते हुए कहा कि सरकार को कभी भी एक संतुलित बजट नहीं बनाना चाहिए। तेजी और समृद्धि की अवस्था में बजट में आधिक्य होना चाहिए और मंदी के दौरान घाटा होना चाहिए। उसने यह भी तर्क दिया कि राजकोषीय नीति का स्वभाव चक्र विरोधी होना चाहिए और उसका निर्माण अर्थव्यवस्था में आर्थिक स्थिरता को लाने के लिए किया जाना चाहिए।

राजकोषीय नीति के उद्देश्य (Objectives of Fiscal Policy)

राजकोषीय नीति सम्बन्धी विवेचना के लिए हम समस्त मांग में वैयक्तिक उपभोग, घरेलू निवेश और अन्तिम उत्पाद पर सरकारी व्यय और आय के समस्त प्रवाह, जो न केवल उपभोग व्ययों और निजी बचतों के लिए ही वरन् कुछ अंश में करों के लिए भी आबंटित होता है, को सम्मिलित करेंगे। सरकार वस्तुओं तथा सेवाओं की खरीद पर कुछ खर्चा करती है और इस प्रकार वह निजी व्यय में वृद्धि करती है। किसी भी अवधि में इस व्यय को बढ़ाने से सरकार समस्त मांग के स्तर को ऊपर उठा सकती है और इस व्यय को कम करने से उसको नीचा कर सकती है। पूर्वोक्त स्थिति में वह कराधान द्वारा निजी व्यय की धारा में से अधिक राशि का विपथन कर सकती है। अवरोक्त स्थिति में सरकार अपनी निवल कर वसूली के माध्यम से निजी व्यय की धारा में से कम राशि का विपथन कर सकती है। सरकारी खर्च तथा कराधान का समस्त मांग पर जो प्रभाव उत्पन्न होता है वह इस पर निर्भर करता है कि अपने व्यय के द्वारा राष्ट्रीय खर्च की धारा में कितनी राशि डालती है और अपनी कर वसूली द्वारा उसमें से कितनी राशि निकालती है। क्योंकि आय का स्तर समस्त मांग पर निर्भर करता है इसलिए सरकार उसको अपनी व्यय तथा कराधान नीति द्वारा प्रभावित कर सकती है। इसी को ''राजकोषीय नीति'' कहते हैं।

अब लगभग सभी यह स्वीकार करने लगे हैं कि कुछ आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए राजकोषीय नीति का उपयोग करना ही चाहिए। ये उद्देश्य इस प्रकार हैं : प्रथम, रोजगार तथा उत्पाद के ऊंचे स्तरों पर आर्थिक क्रिया के स्थिरीकरण को आगे बढ़ाने के लिए राजकोषीय नीति को एक चक्र विरोधी ढ़ंग से कार्य करना चाहिए। यदि अर्थव्यवस्था एक ऐसे स्तर पर परिचालित है कि साधनों का पूर्ण उपयोग लगभग संभव है तब सरकार को विस्तार की नीति लागू करनी चाहिए। यदि अर्थव्यवस्था रोजगार तथा उत्पाद के एक ऐसे स्तर पर कार्य कर रही है जहाँ साधनों का पूर्ण उपयोग केवल संभव ही नहीं है वरन् कीमतों पर ऊर्ध्वमुखी दबाव पड़ रहा है तब सरकार को संकुचन की नीति लागू करनी चाहिए। दूसरे, राजकोषीय नीति का आर्थिक संवृद्धि की दर को तीव्र करने का लक्ष्य होना चाहिए। तीसरे, राजकोषीय नीति को आय तथा धन के वितरण में समानता स्थापित करने का लक्ष्य करना चाहिए। चौथे, राजकोषीय नीति का लक्ष्य लोगों के आर्थिक कल्याण को उच्चतम सीमा तक पहुँचाना होना चाहिए। स्पष्ट ही है कि ये लक्ष्य प्रतियोगी भी हैं और सम्पूरक भी और कुछ–कुछ एक दूसरे को ढाँक भी लेते हैं। इसलिए

लक्ष्यों की विविधता से उत्पन्न होने वाली जटिलता से बचने के लिए हम आर्थिक क्रिया के स्थिरीकरण को ही राजकोषीय नीति का लक्ष्य मान लेते हैं।

एक अल्पविकसित देश के लिए निर्मित राजकोषीय नीति का स्वभाव एवं उद्देश्य विकसित अर्थव्यवस्था के लिए निर्मित राजकोषीय नीति की अपेक्षा भिन्न होना स्वाभाविक है। एक उन्नत तथा अत्यन्त औद्योगिक देश में अर्थव्यवस्था को विकसित करने की समस्या इतनी नहीं है जितनी आर्थिक स्थिरता को प्राप्त करने की होती है। ऐसे देश में स्थिरता को क्षतिपूरक राजकोषीय नीति के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है जिसका अर्थ यह है कि अर्थव्यवस्था में निजी व्यय में परिवर्तनों के अनुसार सार्वजनिक व्यय में क्षतिपूरक परिवर्तन होते रहने चाहिए। यह सर्वविदित है कि मंदी काल में उपभोग तथा निवेश, दोनों पर निजी व्यय में कमी होती है जिसके कारण समस्त प्रभावी मांग स्तर भी गिर जाता है। ऐसी अवधि के दौरान सरकार को घाटे के बजट बनाने चाहिए और अर्थव्यवस्था को मंदी की प्रावस्था से बाहर निकालने का प्रयत्न करना चाहिए। स्फीति के दौरान क्योंकि निजी व्यय पहले ही अत्यधिक होता है, सरकार के आधिक्य के बजट बनाकर अपने व्यय में भारी कटौती करनी चाहिए। परन्तु ऐसी नीति, एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के लिए सहायक नहीं होगी क्योंकि प्रमुख उद्देश्य आर्थिक विकास को तेजी से आगे बढ़ाना होता है। तदनुसार राजकोषीय नीति के लक्ष्य ऐसी अर्थव्यवस्था के लिए भिन्न होंगे। संक्षेप में, ये उद्देश्य इस प्रकार हो सकते हैं : (अ) अर्थव्यवस्था में समस्त उपभोग के स्तर में कमी करके समस्त बचतों के स्तर को बढ़ाना; (ब) पूंजी निर्माण की दर को अधिकतम करना; (स) अर्थव्यवस्था के साधनों को कम उत्पादक उपयोगों से निकाल कर अधिक उत्पादक उपयोगों में और सामाजिक दृष्टि से अधिक वाछनीय उपयोगों को पुर्नावंटित करना। इस उद्देश्य को निम्न प्राथमिकता वाले क्षेत्रों से उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को विपथन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है; (द) अर्थव्यवस्था की स्फीति तथा अतिस्फीति, जो संवृद्धि की प्रक्रिया के आवश्यक परिणाम हैं, के विरुद्ध सुरक्षा करना; (ध) क्षेत्रीय तथा खण्डीय असमानताओं को दूर करना; और (ड़) समाज में आर्थिक असमानताओं को कम करना। संक्षेप में एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की सरकार को दोनों लक्ष्यों को ध्यान में रखना चाहिए, अर्थात् आर्थिक संवृद्धि की दर को तीव्र करना एवं आर्थिक असमानताओं का उन्मूलन तथा सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना।

राजकोषीय नीति के नियम (Rules of Fiscal Policy)

निम्नलिखित को राजकोषीय नीति के नियम कहा जा सकता है –

1 गिरते हुए रोजगार की अवधि के दौरान सरकार को, स्पष्ट ही है, समस्त मांग के स्तर को पूर्ण रोजगार के स्तर की ओर ऊपर उठाने में रुचि लेनी चाहिए। इसको सरकार या तो वस्तुओं तथा सेवाओं की खरीद पर अपने व्यय को बढ़ा कर या अन्तरण अदायगियों में अपने व्यय को बढ़ा कर या करों में कटौती करके या इनमें से किसी भी संयोग द्वारा या संतुलित बजट के विस्तार द्वारा प्राप्त कर सकती है।

2 यदि अत्यधिक मांग के कारण उत्पन्न होने वाली स्फीति की समस्या है तो सरकार को अत्यधिक मांग को कम करने के लिए समस्त मांग के स्तर को घटाना चाहिए जिसको सरकार या तो करों में वृद्धि द्वारा या वस्तुओं तथा सेवाओं पर सरकारी व्यय में कटौती करके या अन्तरण अदायगियों को कम करके या इनके किसी भी संयोग द्वारा प्राप्त कर सकती है।

3 यदि अर्थव्यवस्था में रोजगार तथा उत्पाद का स्तर बहुत ऊँचा है, तो सरकार को निरन्तर जारी रहने वाले पूर्ण रोजगार तथा कीमत स्थिरता को प्राप्त करने के लिए आवश्यक, आर्थिक संवृद्धि की दर को प्राप्त करना चाहिए।

राजकोषीय नीति के घटक (Components of Fiscal Policy)

वर्तमान समय में स्फीति को कम करने और स्थिरता को प्राप्त करने के लिए राजकोषीय नीति को सरकार के हाथों में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अस्त्र समझा जाता है। स्फीतिकारी अवस्था से निपटने के लिए राजकोषीय नीति के अन्तर्गत सरकार की व्यय नीति, कराधान नीति और सार्वजनिक ऋण तथा ऋण प्रबन्ध नीतियों को सम्मिलित किा जाता है। हम निम्न में राजकोषीय नीति के इन घटकों की व्याख्या करते है –

1 **स्फीति के दौरान राजकोषीय नीति (आधिक्य बजट की नीति) (Fiscal Policy during Inflation : Surplus Budget Policy)** : स्फीति के दौरान अनियमित तथा अविवेकी निजी व्यय के कारण प्रभावी मांग में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है जिसका अर्थ यह है कि अर्थव्यवस्था में मुद्रा की कुल आपूर्ति अधिक हो जाती है और वस्तुओं तथा सेवाओं की आपूर्ति कम हो जाती है। ऐसी स्थिति में सरकार को अपने व्यय को कम करना चाहिए और देश में कराधान के स्तर को ऊँचा करना चाहिए ताकि लोगों की प्रयोज्य आय कम हो जाए। इस सम्बन्ध में यह बता देना उचित होगा कि सरकारी व्यय में कटौती करने की भी कुछ सीमाएँ होती है। उदाहरण के लिए, किसी भी समय बिन्दु पर सरकार, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति की दृष्टि से देश की सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं के अनुरूप अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को अनदेखा नहीं कर सकती। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति में अनिश्चिता होने के कारण सरकार का सैन्य आवश्यकताओं पर व्यय अधिक होना स्वाभाविक है और उसमें काफी कमी करना सरकार के लिए कठिन होगा। फिर, यदि सरकार ने आर्थिक विकास के लिए नियोजन की नीति को लागू कर रखा है तब उसके लिए अपने व्यय के स्तर को घटाना कठिन होगा क्योंकि जो परियोजनाएं उसने आरम्भ कर रखी हैं उनको अधूरा नहीं छोड़ा जा सकता और उन्हें पूरा करना ही पड़ेगा। इसलिए लोगों के पास से उनकी प्रयोज्य आय को कम करने की एकमात्र विधि यही है कि नए करों को आरोपित किया जाए और चालू करों की दरों को बढ़ाया जाए। उस अर्थव्यवस्था में, जो पूरी तौर से पूर्ण रोजगार या लगभग पूर्ण रोजगार स्तर पर परिचालित है, सरकार को उपभोग तथा सट्टा निवेश को नियंत्रित करने के लिए अतिरिक्त उपायों को लागू करना चाहिए। ऐसी स्थिति में कराधान नीति का उद्देश्य समाज के उन वर्गों पर अधिक दबाव डालकर जिनके उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति ऊँची है, समस्त मांग को कम करना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि अप्रत्यक्ष कराधान को बढ़ाना होगा और वैयक्तिक आय कराधान में प्रतिगमन (regression) के तत्व को बढ़ाना होगा। परन्तु कराधान के क्षेत्र में सरकार की भी कुछ सीमाएं होती है। कराधान में वृद्धि करने के साथ– साथ सरकार बढ़ी हुई मात्रा में ऋण लेने की नीति को भी लागू कर सकती है क्योंकि वह भी लोगों की अतिरिक्त प्रयोज्य आय को निकालकर स्फीतिकारी दबावों को कम करने में सहायता करती है। सार्वजनिक ऋण नीति को एक अत्यधिक बड़े पैमाने पर लागू करना चाहिए। ब्याज दर को बढ़ाना चाहिए और लोगों को बचत करने के लिए बाध्य करना चाहिए। सरकार ब्याज दरों में वृद्धि करके लोगों को स्वेच्छा से बचत करने के लिए प्रेरित कर सकती है। परन्तु अनुभव यह रहा है कि यह नीति सही दिशा में कार्य नहीं करती ओर सरकार को उतनी राशियां उपलब्ध नहीं होती जो कीमतों के स्तर को प्रभावित कर सकें। ऐसी अवस्था में सरकार को अनिवार्य बचज नीति और 'स्थगित भुगतान' योजना को लागू करना चाहिए। इस योजना में सरकार मजदूरी तथा वेतन में से, अनिवार्य रूप से, एक निश्चित प्रतिशत को जबरदस्ती काट ले और कर्मचारी के खाते में जमा कर दे और उसका भुगतान पूर्व घोषित अवधि के बाद कर्मचारी को कर दिया जाए। इस उपाय से निश्चय ही कीमत स्तर पर दबाव कम होगा। अनिवार्य बचत योजना को दूसरे महायुद्ध

में यू०के० में लागू किया गया था। ऐसे ही उपाय सरकार ने दूसरे युद्ध में लागू किए थे और विगत वर्षों में भी सरकार ने अनिवार्य बचत योजना को लागू किया था। स्फीति के दौरान ऋण प्रबन्ध नीति का स्वरूप भी बदल जाता है। सरकार को बजट अतिरेकों में से व्यापारिक बैंकों द्वारा धारण सरकारी प्रतिभूतियों के एक निश्चित अनुपात का शोधन करना पड़ेगा ताकि साख के विस्तार के लिए इन प्रतिभूतियों को नकदी में बदल कर वे अपने रिजर्वों में वृद्धि न कर पाएँ। परन्तु समस्या यह है कि स्फीति के दौरान अपने व्यय में अत्यधिक वृद्धि के कारण सरकार को बजट अतिरेक उपलब्ध होना भी कठिन होता है और वास्तव में उसके बजट में घाटा रहता है। यदि ऐसा है तो सरकार उन बाँड़ों को जो बैंकों के लिए अनुपयुक्त हैं गैर–वित्तीय संस्थाओं और व्यक्तियों को बेचकर ऋण शोधन की नीति अपना सकती है।

2 **मंदी के दौरान राजकोषीय नीति (घाटे की बजट नीति) (Fiscal Policy during Depression : Deficit Budget Policy)** : मंदी के दौरान अर्थव्यवस्था में समस्त व्यय का स्तर अपनी निम्नतम सीमा पर होता है। साधन अप्रयुक्त रहते हैं और उत्पाद का स्तर बहुत नीचा होता है। परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में मुद्रा आपूर्ति की अपेक्षा वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा कहीं अधिक होती है। ऐसी स्थिति में सरकार को घाटे के बजटों की नीति को निर्मित करना होगा और या तो प्रत्यक्ष भागीदारी द्वारा अपने खर्चे को बढ़ाना होगा या अप्रत्यक्ष तौर पर लोगों को अधिक खर्च करने के लिए प्रेरित करना होगा। सरकार बहुत बड़े पैमाने पर सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमों को लागू कर सकती है और अपने व्यय को बेरोजगारी लाभों को प्रदान करने और ऐसी परियोजनाओं पर कर सकती है जिनसे अर्थव्यवस्था में मुद्रा आपूर्ति का अंतःक्षेप हो। लोगों तथा व्यवसायिक फर्मो के पास अधिक प्रयोज्य आय उपलब्ध कराने के लिए सरकार कराधान दर को भी घटा सकती है। बिक्री कर का उन्मूलन किया जा सकता है और अप्रत्यक्ष कराधान की मात्रा एवं दर दोनों को घटाया जा सकता है। संक्षेप में, सरकार को वे सब उपाय करने चाहिए जिनसे समाज पर कराधान का सामान्य भार कम हो। निगम कराधान में कटौती लोगों को निवेश बढ़ाने के लिए प्रेरित करेगी। सरकार पुनर्वितरणात्मक कराधान नीति को भी लागू कर सकती है अर्थात् समाज के धनी वर्गों के लिए प्रगतिशील आय कर की नीति को लागू करके आय प्राप्त करे और निर्धन व्यक्तियों को उपभोग बढ़ाने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करे। जहाँ तक प्रत्यक्ष भागीदारी की बात है सरकार को एक विशाल सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम चालू करना चाहिए। ऐसी नीति या तो समुद्दीपन (Pump Priming) या क्षतिपूरक व्यय (Compensatory Spending) या दोनों प्रकार की हो सकती हैं। समुद्दीपन प्रक्रिया द्वारा सरकार का उद्देश्य अर्थव्यवस्था के उन क्षेत्रों में जहाँ आर्थिक क्रिया पूर्णतया मंद है स्फूर्ति लाना होना चाहिए। अर्थव्यवस्था में नई क्रय–शक्ति के अंतःक्षेप द्वारा निजी निवेश के स्तर को ऊपर उठाने का लक्ष्य होना चाहिए। निजी व्यय के स्तर को ऊपर करने के लिए क्षतिपूरक व्यय की नीति को लागू करना चाहिए। इन सबका उद्देश्य अर्थव्यवस्था में रोजगार के स्तर पर सीधे दबाव डालना होना चाहिए और उस समय तक उनको चालू रखना चाहिए जब तक निजी निवेश अपने सामान्य स्तर पर नहीं आ जाता। क्षतिपूरक व्यय या तो नए सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमों या नए सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों को लागू करने के लिए किया जाना चाहिए। यह आवश्यक है कि जैसे ही निजी निवेश क्रिया में स्फूर्ति आए और वह सामान्य स्तर पर पहुँच जाए वैसे ही सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर व्यय को रोक देना चाहिए, क्योंकि सार्वजनिक निवेश का उद्देश्य निजी निवेश के साथ प्रतियोगिता करना नहीं है वरन् उसको सामान्य स्तर पर वापिस आने के लिए सहायता प्रदान करना है। तथापि इस नीति की कुछ सीमाएं हैं। प्रथम, सरकार के लिए यह पता लगाना कठिन होगा कि कब मंदी आरम्भ होगी और इसलिए वांछित परिणामों को प्राप्त करने के लिए संभव है कि

सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम को सही समय पर चालू न किया जा सके। दूसरे, सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमों की गर्भावधि काफी लम्बी होती है इसलिए उनके तुरन्त परिणाम प्राप्त होना कठिन होता है। तीसरे, एक बार आरम्भ करने के बाद सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमों को अधभर में छोड़ना सरल नहीं होता और इसलिए इन कार्यक्रमों को अर्थव्यवस्था के पुनरुत्थान के बाद भी चालू रखना पड़ेगा। चौथे, कुछ सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम ऐसे होते है जो अर्थव्यवस्था में मंदी न होने पर भी आवश्यक तौर से लागू किए जाते हैं जैसे स्कूलों, अस्पतालों इत्यादि के लिए भवन निर्माण या आवश्यक सामग्री की खरीदारी और अंत में, इन सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमों के वित्त प्रबन्ध के लिए सरकार को सार्वजनिक ऋण जुटाने होंगे जिनसे जनता का ऋण भार बढ़ेगा। इन्हीं सीमाओं के कारण अनेक अर्थशास्त्रियों ने बेरोजगारी बीमा, सामाजिक सुरक्षा लाभों, सहायकियों इत्यादि जैसे सामाजिक सुरक्षा उपायों के लिए अपना अधिमान व्यक्त किया है। तथापि एक आदर्श स्थिति वह होगी जिसमें सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमों और मंदी विरोधी नीति के तौर पर सामाजिक सुरक्षा उपायों को भी साथ में लागू किया जाए।

3 **चक्र विरोधी नीति (क्षतिपूरक राजकोषीय नीति) (A Contracyclical Policy : Compensatory Fiscal Policy)** : एक चक्र विरोधी राजकोषीय नीति को आवश्यक तौर पर आर्थिक स्थिरता को प्राप्त करने के लिए लागू किया जाता है। मंदी प्रावस्था के दौरान सरकार रोजगार, आय तथा उत्पाद के स्तरों को ऊँचा करने के लिए अपनी चालू आय की अपेक्षा अधिक खर्च द्वारा सार्वजनिक व्यय को बढ़ा सकती है और उत्कर्ष की प्रावस्था में करों तथा दूसरे उपायों द्वारा लोगों से धन एकत्रित करके रोजगार, आय तथा उत्पाद के स्तरों को कम कर सकती है। ऐसी नीति का अभिप्राय यह होगा कि सरकार को खर्च करने तथा आय जुटाने के समयानुपात तथा गति दोनों को नियमित करना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सरकार आर्थिक स्थिरीकरण के लिए सभी परिस्थितियों में संतुलित बजट की नीति को लागू नहीं कर सकती। नीति का लचीला होना जरूरी है अर्थात् मंदी के दौरान बजट में घाटे की नीति और समृद्धि काल में बजट में अतिरेक की नीति को लागू करना चाहिए। क्योंकि सरकार के लिए अपनी बजट नीति में तुरन्त परिवर्तन करना संभव नहीं होता इसलिए यह आवश्यक है कि उसकी राजकोषीय नीति में लचीलेपन का तत्त्व निहित होना चाहिए और उसको स्वचालित होना चाहिए। उसमें निहित स्थिरक हों जो स्वचालित हों और सफलता इन उपकरणों के उपयुक्त रूप से चयन एवं प्रयोग पर आर्थिक होती है। अतः आर्थिक नीति की सफलता हेतु यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन उपकरणों को अत्यन्त सावधानी एवं सजगतापूर्वक प्रयुक्त किया जाये तथा विभिन्न स्थलों पर जहाँ इनके प्रयोग की आवश्यकता अनुभव की जाये, वहाँ ये उपयुक्त मात्रा में प्रयुक्त किये जायें। सामान्यतः आर्थिक नीति के सन्दर्भ में जिन उपकरणों को प्रयुक्त किया जाता है, उन्हें निम्नांकित शीर्षकों एवं उप–शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है।

राजकोषीय उपकरण (Fiscal Instruments)

आर्थिक नीति के राजकोषीय उपकरण के अन्तर्गत सरकार द्वारा वित्त एकत्रित करने और उसको व्यय करने से सम्बन्धित क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। सरकार सामाजिक कल्याणार्थ किस प्रकार धन एकत्रित करती है तथा किस प्रकार उसका उपयोग करती है, यह आर्थिक नीति के राजकोषीय उपकरण का क्षेत्र है। सामाजिक कल्याण में वृद्धि हेतु सरकार को नवीन सुविधाओं के विकास अथवा विस्तार की योजनाओं का निर्माण, शिक्षा, चिकित्सा, सुरक्षा, प्रदूषण नियन्त्रण, सफाई आदि कार्यों का संचालन करना पड़ता है। आर्थिक विकास को त्वरित करने के लिए औद्योगिक एवं वित्तीय इकाइयों की स्थापना करना भी परम आवश्यक होता है। इन सभी कार्यों के

सफलतापूर्वक एवं निर्बाध संचालन हेतु सरकार को अधिकाधिक धन की आवश्यकता पड़ेगी। सरकार द्वारा वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति प्रमुखतः निम्न साधनों से की जाती है –

1 **करारोपण (Taxation) :** आधुनिक युग में 'कर' राजकीय आय का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा वसूल किया जाने वाला यह एक अनिवार्य भुगतान कहलाता है। सरकार कल्याणकारी कार्यों को संचालित करने तथा आर्थिक विकास हेतु साधनों के संग्रहण हेतु करारोपण का सहारा लेती है। करारोपण का उद्देश्य आय प्राप्त करना तो है ही, साथ ही इसकी सहायता से वितरण व्यवस्था को भी न्यायोचित बनाने का प्रयास किया जाता है। मुद्रा–प्रसार पर रोक, अर्थव्यवस्था में स्थायित्व प्राप्त करने तथा अनावश्यक वस्तुओं के उपभोग तथा उत्पादन में कमी करने का भी करारोपण एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है।

2 **सार्वजनिक ऋण (Public Debt) :** व्यक्ति के समान ही असामान्य परिस्थितियों में सरकार द्वारा ऋण प्राप्त करना वर्तमान युग की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। सार्वजनिक ऋण का आशय सरकार द्वारा प्राप्त किये जाने वाले सरकारी ऋण से है। विगत वर्षों में सार्वजनिक ऋण न केवल सरकार की प्राप्तियों का एक स्रोत बना है वरन् राजकीय वित्त व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण भाग भी बन गया है। आधुनिक सरकारें केवल असामान्य परिस्थितियों में ही नहीं वरन् नियमित आय–व्यय में घाटे की पूर्ति तथा दीर्घकालीन विकास परियोजनाओं को पूरा करने के लिए भी सार्वजनिक ऋण लेती है।

3 **हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit Financing) :** हीनार्थ प्रबन्धन अथवा घाटे की वित्त व्यवस्था का किसी राष्ट्र के वित्तीय साधनों में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। जब किसी राष्ट्र की सरकार का खर्च आय से अधिक बढ़ जाता है और उस खर्च को अन्य साधनों द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता तब सरकार इस प्रकार बजट में उत्पन्न घाटे की पूर्ति नये नोट छापकर पूरा करती है। विकासशील देशों में तो हीनार्थ प्रबन्धन वित्तीय साधनों की एक अनिवार्य विशेषता है, किन्तु विकसित देशों में भी यदा–कदा इसका उपयोग किया जाता है। सामान्यतः हीनार्थ प्रबन्धन को उपयुक्त नहीं समझा जाता है, क्योंकि इससे अनावश्यक मूल्यों में वृद्धि होने की सम्भावना रहती है। किन्तु जब सरकार अधिक कर लगाना उचित नहीं समझती तथा सार्वजनिक ऋणों का प्रबन्ध असुविधाजनक तथा अवांछनीय हो तो प्रायः हीनार्थ प्रबन्धन की नीति को अपनाना उपयुक्त समझा जाता है।

मौद्रिक उपकरण (Monetary Instruments)

मौद्रिक उपकरणों का प्रयोग अर्थव्यवस्था में मुद्रा व साख की मात्रा को नियन्त्रित करने के उद्देश्य से किया जाता है। किसी देश की सरकार द्वारा केन्द्रीय बैंक के सहयोग से अर्थव्यवस्था में किसी विशेष आर्थिक उद्देश्य की प्राप्ति, यथा – मूल्य स्थायित्व विदेशी विनिमय दर स्थिरता, पूर्ण रोजगार अथवा आर्थिक विकास हेतु प्रचलन में मुद्रा व साख की मात्रा के प्रसार तथा संकुचन के प्रबन्ध हेतु मौलिक उपकरण प्रयुक्त किये जाते हैं, आर्थिक नीति के संचालन एवं सफलता के लिए जिन प्रमुख मौद्रिक उपकरणों को प्रयुक्त किया जाता है, वे निम्नांकित हैं –

1 **साख नियन्त्रण (Credit Control) :** साख नियन्त्रण का आशय साख की मात्रा को देश की आवश्यकताओं के अनुरूप समायोजित करने से है। उसे अनुकूल स्तर पर बनाये रखने के लिये किये गए प्रयत्नों को साख नियमन कहा जाता है। साख नियमन रीतियों का प्रमुख उद्देश्य सामान्य मूल्य स्तर में स्थायित्व बनाये रखना है। विकासशील राष्ट्रों में आर्थिक नीति की सफलता के लिए प्रायः सरकार द्वारा कुछ क्षेत्रों को प्राथमिकता क्षेत्र (Priority Sectors) घोषित कर दिया जाता है। इन क्षेत्रों में तीव्र गति से विकास हेतु इन्हें बैंकों से

प्राथमिकता के आधार पर ऋण दिलवाने की व्यवस्था की जाती है। साख नियमन अग्र दो प्रकार से किया जाता है –

- **परिमाणात्मक (Quantiative)** : परिमाणात्मक साख नियन्त्रण के अन्तर्गत किसी देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा साख के कुछ परिमाण (मात्रा) को प्रभावित करके साख को नियन्त्रित करने का प्रयास किया जाता है।
- **गुणात्मक (Qualitative)** : गुणात्मक साख नियन्त्रण का आशय विभिन्न उद्देश्यों के बीच साख का नियन्त्रण किये जाने से है। इसके अन्तर्गत साख के प्रयोग तथा व्यवहार को नियन्त्रित किया जाता है।

2 **ब्याज दर (Rate of Interest)** : विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की सफलता के लिए बैंक विभिन्न प्रकार के निक्षेपों (Deposits) तथा ऋणों के लिए भिन्न– भिन्न ब्याज की दरों को निर्धारित करती है। ब्याज की दर ऊँची अथवा नीची निर्धारित की जाती है। जिन जमाओं पर ऊँची ब्याज की दरें निश्चित की जाती है, उनमें अधिक धन जमा होने की सम्भावना रहती है। ऊँची ब्याज दरों के निर्धारण का उद्देश्य ही विशिष्ट वर्गों की बचत को प्रोत्साहित करना होता है। यदि ब्याज की दरें नीची निर्धारित की जाती हैं तो ऋण लेने के लिए विशिष्ट वर्ग प्रोत्साहित होता है। विभिन्न प्रकार की ब्याज दरों का उद्देश्य ही जमाओं अथवा ऋणों को प्रोत्साहित या निरुत्साहित करना होता है।

3 **विनिमय दर (Exchange Rate)** : मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य विनिमय दर में स्थिरता बनाये रखना है। विनिमय दर की स्थिरता का आशय विनिमय दर को स्थायी बनाये रखने अथवा बाह्य सन्तुलन बनाये रखने से है। विनिमय दर में स्थायित्व, उद्योग, व्यापार, रोजगार तथा आर्थिक प्रगति के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

4 **बैंकिंग विकास (Banking Development)** : वर्तमान आर्थिक जगत में बैंकें आर्थिक नीतियों के क्रियान्वयन में महत्त्वपूर्ण माध्यम सिद्ध हुई हैं। बैंकों के रूप तक ही सीमित न रहकर मित्र, दार्शनिक एवं मार्गदर्शक के रूप में उभरकर दृष्टिगत हुई है। इस भूमिका में बैंकें सरकारी परियोजनाओं के सफल संचालन में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान कर रही है। वर्तमान बैंकिंग व्यवस्था के एक बड़े भाग पर सरकार का नियन्त्रण है तथा इनकी शाखा विस्तार सम्बन्धी नीति तथा ऋण नीतियों के निर्धारण में सरकारी इच्छा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इससे सरकार सुगमतापूर्वक नये उपक्रमों की स्थापना को प्रेरणा प्रदान कर सकती है तथा सम्बन्धित क्षेत्रों में कार्यशील उपक्रमों के विस्तार को प्रोत्साहित कर सकती है।

5 **बचतों को प्रोत्साहन (Encouragement to Savings)** : बैंकिंग विकास की उपयुक्त नीति अपनाकर समाज की अतिरिक्त आय को बचत के रूप में बैंकों में जमा किया जा सकता है। इससे सरकार को आर्थिक नीति के निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप धन की प्राप्ति हो जाती है। इससे बैंकों के लिए केवल आर्थिक साधनों का संकेन्द्रन किया जाना ही नहीं वरन् उन्हें पुनः लाभदायक क्षेत्रों में विनियोजन करना भी सम्भव होता है।

व्यापारिक उपकरण (Trade Instruments)

प्राचीनकाल से ही व्यापार को आर्थिक सम्पन्नता का प्रतीक माना जाता रहा है। अतः आर्थिक नीति में व्यापार के विकास को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त विगत वर्षों के दौरान व्यापार की प्रकृति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। इसके अतिरिक्त विश्व के अनेक राष्ट्र विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में क्षेत्र एवं वस्तु सम्बन्धी अनेक प्राथमिकताओं का पालन भी करते हैं। आर्थिक नीति में व्यापारिक उपकरणों की भूमिका को निम्न प्रकार किया जा सकता है।

1 **मुक्त एवं प्रतिबन्धित व्यापार (Free and Restricted Trade)** : वर्तमान विश्व के सभी राष्ट्रों में मुक्त व्यापार का लगभग लोप हो गया है और इसके स्थान पर नियन्त्रित व्यापार को अधिक महत्त्व प्रदान किया

जाता है। अर्थव्यवस्था के सुव्यवस्थित विकास हेतु प्रतिबन्धित व्यापार के अन्तर्गत 'आर्थिक नियन्त्रणों' (Economic Control) का विशेष महत्त्व होता है। किसी भी आर्थिक नीति की सफलता में आर्थिक नियन्त्रणों का विशेष योगदान होता है।

2 **राष्ट्रानुसार प्रातमिकतायें (Priorities According to Nations)** : वर्तमान राष्ट्रों की आर्थिक नीति में व्यापारिक नियन्त्रणों की सफलता हेतु विदेशी व्यापार में राष्ट्रानुसार प्राथमिकता की नीति को अपनाया जाता है। इसके अन्तर्गत सरकार प्राथमिकता के क्रम में इस बात का निर्णय करती है कि किन–किन देशों से आयात किया जायेगा तथा किन–किन देशों को निर्यात किया जायेगा। यह निर्णय करके ही सरकार अपनी व्यापारिक नीति में तद्नुसार व्यवस्था करती है। यदि किसी देश के साथ व्यापार की शर्तें अनुकूल नहीं होती हैं तो आर्थिक नीति में आवश्यक परिवर्तन किये जाते हैं।

3 **वस्तुनुसार प्राथमिकता (Priorities According to Commodities)** : विदेशी एवं स्वदेशी व्यापार में परिस्थिति के अनुसार माँग तथा पूर्ति में समायोजन करना पड़ता है। इस समायोजन की सफलता के लिए आर्थिक नीति में वस्तुनुसार प्राथमिकता का क्रम निर्धारित किया जाता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि स्वदेशी एवं विदेशी बाजारों के सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध हो। आर्थिक नीति की सफलता उपयुक्त वस्तुनुसार प्राथमिकता पर भी निर्भर करती है।

नियन्त्रण (Control)

आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक नियन्त्रणों का विशेष महत्त्व है। नियन्त्रण के अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है, जिसका सम्बन्ध उपभोग उत्पादन, विनिमय तथा वितरण आदि से हो सकता है। आर्थिक नियन्त्रणों की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि आर्थिक क्रियाओं का एक–दूसरे से सम्बन्ध होने के कारण एक क्षेत्र की नियन्त्रण व्यवस्था की सफलता के लिए उससे सम्बन्धित अन्य क्षेत्रों पर भी नियन्त्रण लगाने आवश्यक हों। इसके लिए विभिन्न आर्थिक नीतियों में तदुनुसार परिवर्तन करने आवश्यक होते हैं। आर्थिक नीति की सफलता हेतु प्रमुख रूप से निम्नांकित आर्थिक नियन्त्रणों का महत्त्व होता है –

1 **निवेश नियन्त्रण (Investment Control)** : आर्थिक विकास के कार्यक्रमों में तीव्र औद्योगिकरण तथा पूर्ण रोजगार की प्राप्ति के लिए पूँजी निवेश नियन्त्रण का विशेष महत्त्व है। सरकार अपनी आर्थिक नीति के अन्तर्गत निर्धारित सिद्धान्तों के अनुरूप ही उद्योगों का केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीकरण करती है। पूँजी निवेश नियन्त्रण से विशिष्ट उद्योगों की विशिष्ट स्थानों पर स्थापना एवं उनका विकास सम्भव होता है। निवेश नियन्त्रण की सहायता से विभिन्न उद्योगों के मध्य व्याप्त प्रतियोगिता को समाप्त अथवा नियन्त्रित किया जा सकता है।

2 **मूल्य नियन्त्रण (Price Control)** : वर्तमान समय में विश्व के लगभग सभी राष्ट्र मूल्य वृद्धि की समस्या से पीड़ित हैं। अतः आर्थिक कार्यक्रमों की सफलता के लिए मूल्य पर नियन्त्रण रखना अतिआवश्यक होता है। आर्थिक नीति के मूल्य नियन्त्रण सम्बन्धी उपकरणों का प्रमुख उद्देश्य उपभोक्ता के हितों की रक्षा करना होता है। मूल्यों पर नियन्त्रण किस प्रकार होंगे, किस हद तक होंगे तथा कितने समय के लिए होंगे आदि निर्णयों का आर्थिक नीति की सफलता में विशेष महत्त्व होता है।

3 **सार्वजनिक वितरण व्यवस्था (Public Distribution System)** : सार्वजनिक वितरण प्रणाली का आशय अत्यधिक उपभोग की वस्तुओं के वितरण की सरकारी स्तर पर व्यवस्था से है। एक प्रभावी सार्वजनिक

वितरण प्रणाली हेतु उत्पादन अधिप्राप्ति (Procurement), परिवहन, भण्डारण तथा कुछ चयनित वस्तुओं के वितरण के सम्बन्ध में सम्पर्क प्रथम आवश्यकता है।

4 **लाइसेंसिंग व्यवस्था (Licensing System) :** लाइसेंसिंग व्यवस्था द्वारा उत्पादित वस्तुओं, लागत साधनों तथा पद्धति पर नियन्त्रण रखा जाता है। लाइसेंसिंग नीति से ही निजी, सार्वजनिक तथा संयुक्त उपक्रमों का क्षेत्र निर्धारित होता है। लाइसेंस व्यवस्था आर्थिक नीति का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है, जिसकी सहायता से उत्पादन को नियन्त्रित किया जा सकता है।

आर्थिक नीति के संघटक (Components of Economic Policy)

प्रत्येक राष्ट्र की आर्थिक समस्याएँ भिन्न होती हैं। विकसित अर्थव्यवस्था की अपेक्षा अर्द्ध–विकसित अर्थव्यवस्था की समस्याएँ आर्थिक ज्वलन्त एवं जटिल होती हैं। अतः विकसित तथा अर्द्ध–विकसित देशों द्वारा अपनाई जाने वाली आर्थिक नीतियाँ भी भिन्न होती हैं। किसी भी राष्ट्र में आर्थिक नीति की सफलता उसके संघटकों पर आश्रित होती हैं। सामान्यतः निम्न नीतियों का प्रयोग आर्थिक नीति के संघटकों के रूप में किया जाता है।

1. औद्योगिक नीति (Industrial Policy)

औद्योगिक नीति से आशय सरकार द्वारा की जाने वाली ऐसी औपचारिक घोषणा से है, जिसके द्वारा सरकार उद्योगों के प्रति अपनाई जाने वाली सामान्य नीतियों का उल्लेख करती है। इसमें ऐसे सभी राजकीय सिद्धान्तों, नियमों और नीतियों को सम्मिलित किया जाता है, जिससे उस देश के उद्योग प्रभावित होते हैं। प्रमुख रूप से नीति की घोषणा में सरकार भविष्य में उद्योगों की स्थापना, प्रबन्ध एवं विकास के सम्बन्ध में अपनी नीति स्पष्ट करती है। किसी देश विशेष की औद्योगिक नीति उस देश में प्रचलित आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक वातावरण, विकास संसाधनों की उपलब्धि एवं सरकार के दृष्टिकोण पर निर्भर करती है।

2. मौद्रिक नीति (Monetary Policy)

अर्थव्यवस्था में उद्देश्यों (जैसे – मूल्य एवं वेतन नियन्त्रण, आयातों में कमी तथा निर्यातों में वृद्धि कर भुगतान शेष को अनुकूल बनाने, बेरोजगारी को समाप्त करने सम्बन्धित प्रयासों) की पूर्ति में उपयुक्त मौद्रिक नीति का विशिष्ट स्थान होता है। साधारणतया मौद्रिक नीति का अभिप्राय केन्द्रीय बैंक द्वारा अपनाई गई उस नियन्त्रण नीति से होता है, जिसके अन्तर्गत कुछ विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मुद्रा की मात्रा, उसकी लागत (अर्थात् ब्याज दर) तथा उसके प्रयोग को नियन्त्रित करने के उपायों को सम्मिलित किया जाता है। वर्तमान समय में मौद्रिक प्रबन्धन तथा मौद्रिक नीति के संचालन से सम्बन्धित दायित्वों को केन्द्रीय बैंकों (भारत में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया) के सुपुर्द किया गया है। अतः स्पष्ट शब्दों में मौद्रिक नीति का अर्थ बताते हुए यह कहा जा सकता है कि मौद्रिक नीति का अभिप्राय केन्द्रीय बैंक की साख नियन्त्रण नीति से है तथा इसके अन्तर्गत वे सब मौद्रिक निर्णय तथा उपाय सम्मिलित किये जाते हैं, जिसका उद्देश्य मौद्रिक प्रणाली पर प्रभाव डालना होता है।

मौद्रिक नीति के उद्देश्य (Objectives of Monetary Policy)

प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में साख एवं मुद्रा प्रसार पर प्रभावी नियन्त्रण हेतु मौद्रिक नीति का विशिष्ट उद्देश्य होता है। मौद्रिक कठिनाइयों को दूर करने तथा साख नियन्त्रण हेतु राष्ट्र की मौद्रिक नीति महत्त्वपूर्ण उपकरण है। अविकसित राष्ट्रों में तो पूँजी निर्माण को प्रोत्साहित करने हेतु मौद्रिक नीति के विशिष्ट उद्देश्य है। मौद्रिक नीति के उद्देश्यों में प्रमुख रूप से अग्रलिखित उद्देश्यों को सम्मिलित किया जाता है –

1 **आर्थिक स्थायित्व को बनाये रखना (For Maintenance of Economic Stability)** : विकसित राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति का उद्देश्य आर्थिक स्थायित्व को बनाये रखना होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए परिमाणिक मुद्रा सिद्धांत (Quantity Theory of Money) का सहारा लिया जाता है। अर्थव्यवस्था के विकास के साथ–साथ मुद्रा की माँग भी बढ़ती जाती है। अतः मौद्रिक नीति की सहायता से मौद्रिक अधिकारी राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि के अनुरूप मुद्रा की पूर्ति को समायोजित करने का प्रयास करते हैं।

2 **पूर्ण रोजगार की प्राप्ति (Attainment of Full Employment)** : मौद्रिक नीति देश में पूर्ण रोजगार की प्राप्ति हेतु भी सहयोग प्रदान करती है। मौद्रिक नीति की सहायता से बचत एवं विनियोग के मध्य समन्वय स्थापित करके पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त किया जाना सम्भव है। मौद्रिक नीति की सहायता से नवीन उद्योगों की स्थापना को अधिक से अधिक प्रोत्साहित किया जा सकता है। इससे राष्ट्र के नागरिकों हेतु रोजगार के अधिक से अधिक अवसर सुलभ होंगे।

3 **बचत व विनियोग में सहयोग (Help in Saving and Investment)** : मौद्रिक नीति का राष्ट्र के नागरिकों की बचत को प्रोत्साहित करने तथा अर्थव्यवस्था में विनियोग के अवसर बढ़ाने के लिए भी विशेष उद्देश्य हैं। बचत को प्रोत्साहित करने हेतु मौद्रिक नीति के अन्तर्गत राष्ट्र के नागरिकों की आय बढ़ाकर मुद्रा बाजार की अपूर्णताओं को दूर करने का प्रयास किया जाता है। मौद्रिक नीति के अन्तर्गत ही औद्योगिक विकास के लिए उचित वातावरण का निर्माण करके उद्योगपतियों को विनियोग करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है।

4 **साख निर्माण (Credit Creation)** : खास निर्माण को प्रोत्साहित तथा हतोत्साहित करने में यद्यपि बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, किन्तु वास्तविक रूप से इसका उत्तरदायित्व मौद्रिक नीति पर ही होता है। इस प्रकार मुद्रा प्रसार के प्रभावों को नियन्त्रित रखने हेतु उपयुक्त मौद्रिक नीति का अनुसरण किया जाता है। साख प्रसार को मुद्रा प्रसार के प्रभाव से बचाये रखना आवश्यक होता है। अतः यह आवश्यक है कि विनियोग प्रक्रियाओं का उपयुक्त दिशाओं में संचालन हो।

5 **आर्थिक विकास में वृद्धि (Increase in Economic Growth)** : मौद्रिक नीति की सहायता से मूल्यों को स्थिर रखा जा सकता है। अतः मौद्रिक नीति की सहायता से आर्थिक विकास एवं विकास के सन्तुलन को अधिकतम बनाये रखा जा सकता है। मौद्रिक नीति की सहायता से मुद्रा की चलन (Circulation) में मात्रा को स्थिर रखा जा सकता है तथा वृद्धि द्वारा भुगतान प्रक्रिया की कार्यक्षमता में वृद्धि की जा सकती है। मुद्रा प्रसार तथा उसके प्रभावों को नियन्त्रित रखा जा सकता है। इसके द्वारा निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र की आर्थिक योजनाओं में अनिश्चितताओं को कम किया जा सकता है तथा विकास प्रक्रिया में सामाजिक मनमुटाव व वित्तीय कमियों को दूर करके सहयोग का वातावरण उत्पन्न किया जा सकता है।

6 **मूल्य स्थिरता (Price Stability)** : विनियोग में वृद्धि के फलस्वरूप हुई मूल्यों में वृद्धि एक निश्चित सीमा के पश्चात् आर्थिक विकास में बाधक सिद्ध होती है। नियोजित अर्थव्यवस्था में असाधारण विनियोग के कारण हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit Financing) तथा अन्य कारणों से मूल्यों में वृद्धि सम्भव होती है। मौद्रिक नीति का उद्देश्य कतिपय उपायों के सहयोग से मूल्य वृद्धि को नियन्त्रित रखना होता है। देश का केन्द्रीय बैंक इसके लिए मौद्रिक नीति की सहायता से आवश्यक उपाय सुझाता है।

7 **विनिमय स्थिरता (Exchange Stability)** : जिन राष्ट्रों में विदेशी व्यापार का अर्थव्यवस्था में विशेष स्थान होता है, वहाँ मूल्यों पर आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटकों का प्रभाव पड़ता है। इन घटकों के फलस्वरूप

मूल्यों में होने वाले उतार –चढ़ाव से विनिमय दर की रक्षा करना आवश्यक होता है। अतः मौद्रिक नीति का उद्देश्य मूल्यों में होने वाले उतार–चढ़व को रोकना होता है।

8 **मुद्रा के मूल्यों में स्थायित्व (Stability in Value of Money) :** आधुनिक अर्थशास्त्रियों का विचार है कि रोजगार इत्यादि के साधनों में वृद्धि के दृष्टिकोण से मुद्रा के मूल्य (अर्थात् क्रय शक्ति) में कमी तथा वस्तुओं के मूल्यों में स्थायित्व लाना आवश्यक होता है। मौद्रिक नीति निजी विनियोजकों तथा उद्योगपतियों द्वारा कीमतों के दुरुपयोग पर निगरानी रखकर मुद्रा के मूल्य में स्थिरता बनाये रखती है।

9 **आर्थिक स्थिरता (Economic Stability) :** मौद्रिक नीति की सहायता से आवश्यकतानुसार मुद्रा की चलन में मात्रा को घटाकर अथवा बढ़ाकर आर्थिक स्थिरता बनाये रखी जा सकती है। मन्दी की दशा में मौद्रिक नीति की सहायता से ही विनियोग बढ़ाया जाना सम्भव है। विनियोग की मात्रा बढ़ाकर ही उत्पादन एवं रोजगार की मात्रा में वृद्धि सम्भव है। अत्यधिक मुद्रा प्रसार पर भी मौद्रिक नीति की सहायता से नियन्त्रण किया जा सकता है। अतः मौद्रिक नीति आर्थिक स्थिरता बनाये रखने हेतु एक प्रभावी उपाय है।

10 **आर्थिक विकास की व्यवस्था (Arrangement of Economic Growth) :** आर्थिक विकास में मौद्रिक साधनों की समय पर उपलब्धता का विशेष महत्त्व होता है। अर्द्ध–विकसित राष्ट्रों में मुद्रा की पूर्ति बढ़ाकर मौद्रिक साधनों की व्यवस्था की जाती है। विनियोग तथा नव–प्रवर्तनों में साख–निर्माण का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। अतः मौद्रिक नीति का उद्देश्य मौद्रिक उपलब्धि एवं साख व्यवस्था का अनुकूल विकास करके आर्थिक विकास की व्यवस्था करना होता है।

3. मूल्य नीति (Price Policy)

आर्थिक विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत अधिकांश विनियोग पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन तथा आर्थिक संरचना अर्थात् परिवहन, सिंचाई, प्राविधिक, बन्दरगाहों तथा शिक्षा पर किया जाता है। इन कार्यों का आकार बड़ा होने के कारण इन पर काम करने के पश्चात् उत्पादन में वृद्धि का क्रम देर से प्रारम्भ होता है, किन्तु बड़े पैमाने पर विनियोग के कारण विभिन्न वर्गों की आय में वृद्धि के कारण वस्तुओं तथा सेवाओं की माँग बढ़ जाती है। इस प्रकार माँग के बढ़ने और उत्पादन के उतने न बढ़ने के कारण कीमतों के बढ़ने की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। किसी भी राष्ट्र में विकास की उपयुक्त दर बनाये रखने के दृष्टिकोण से मूल्यों में एक निश्चित सीमा से अधिक वृद्धि या गिरावट उचित नहीं होती। मूल्यों के परिवर्तन से देश की सामान्य आर्थिक स्थिति का सहज ही आभास होता है। इससे हमें यह पता चलता है कि मुद्रा का मूल्य कितना और समाज के विभिन्न वर्गों पर इसका क्या और कैसा प्रभाव पड़ रहा है। इस प्रकार मूल्य के सम्बन्ध में सुव्यवस्थित नीति का निर्धारण आवश्यक हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1 जी०आर० रेड्डी, इंडियन फिस्कल फैडरलीजम, दिल्ली, ऑक्सफज़ेर्ड, 2018
2 प्रवीन झा, परोग्रेसिव फिस्कल पोलिसी इन इंडिया, नई दिल्ली, सेज, 2010
3 एल० चक्रवर्ती, इंडियन फिस्कल फेडरलिजम एट करोसरोडज, लेवी इकोनोमिक इन्सटिच्यूट, 2019

कुछ प्रश्न

- राजकोषीय नीति का अर्थ, उद्देश्य तथा सीमाओं का वर्णन करो।
- राजकोषीय नीति का महत्त्व तथा तकनीकों का वर्णन करो।

अध्याय – 3

भारत में विनिवेश नीति : अर्थ, उद्देश्य, महत्त्व तथा विशेषताएँ

(Disinvestment Policy in India : Meaning, Objectives, Importance and Features)

रूपरेखा

- विनिवेश नीति का अर्थ
- उद्देश्य
- महत्त्व
- विशेषताएँ
- वर्तमान विनिवेश
- प्रवृत्तियाँ
- सारांश
- कुछ उपयोगी पुस्तकें
- कुछ संभावित प्रश्न

भारत में विनिवेश नीति (Disinvestment Policy of India)

नीति आयोग ने कुछ राज्य अधिकृत बीमार कंपनियों की रणनीतिक बिक्री के लिये पहले सिफारिश की थी। उस सिफारिश पर मुहर लगाते हुए कैबिनेट ने कुछ सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों की रणनीतिक बिक्री के लिये स्वीकृति दे दी। इसके पहले विनिवेश विभाग का नामकरण 'निवेश और लोक परिसंपत्ति प्रबंधन विभाग' के रूप में दोबारा किया गया, जिसमें परिसंपत्ति की गुणवत्ता व सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों के कौशल में सुधार करने का स्पष्ट निहित है।

रणनीतिक बिक्री क्या है ?

- किसी कंपनी की रणनीतिक बिक्री के तहत किसी रणनीतिक सहभागी को शेयरों के ब्लॉक का हस्तांतरण किया जाता है तथा प्रबंधन नियंत्रण का हस्तांतरण भी किया जाता है। सामान्यतः रणनीतिक बिक्रियों से सरकार की शेयर होल्डिंग क्षमता को 51 प्रतिशत से कम कर दिया जाता है।
- यह विशेष रूप से विनिवेश का मामला है जो कि शेयरों के हस्तांतरण के माध्यम से सरकार को न केवल बेहतर राजस्व उपलब्ध करवाता है बल्कि कौशल सुधार के द्वारा कंपनी की वृद्धि दर को प्रोत्साहित करने के लिये अनुभवी कॉरपोरेट्स को कंपनी का प्रबंधन नियंत्रण सौंपता है।

रणनीतिक बिक्री क्यों ?

किसी रणनीतिक निवेशक को कंपनी की इक्विटी के शेयरों से प्राप्त होने वाली आय को आवश्यक अवसंरचनाओं के निर्माण में अधिक लाभप्रद तरीके से परिनियोजित किया जा सकता है। यह सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों को प्रतिस्पर्द्धात्मक रूप से सक्षम बनाते समय सार्वजनिक ऋण में कमी करने में भी सहायता करेगा तथा ऋण– जीडीपी अनुपात को भी कम करेगा।

भारत में विनिवेश

- भारत में विनिवेश की शुरूआत सबसे पहले वर्ष 1991 में हुई जब सरकार ने कुछ चुनी हुई सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों का 20 प्रतिशत हिस्सा बेचने का निर्णय लिया था। वर्ष 1993 में रंगराजन समिति ने सार्वजनिक क्षेत्र के लिये आरक्षित सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों में से 49 प्रतिशत के विनिवेश तथा अन्य सभी सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के लिये 74 प्रतिशत के विनिवेश का प्रस्ताव दिया था। हालाँकि ये सिफारिशें लागू नहीं हो सकीं।
- वर्ष 1996 में जी०वी० रामकृष्णा के नेतृत्व में एक गैर–सांविधिक व सलाहकारी प्रकृति का विनिवेश आयोग स्थापित किया गया तथा वित्त मंत्रालय के अंतर्गत वर्ष 1999 में एक बड़े कदम के रूप में विनिवेश विभाग स्थापित किया गया। वर्ष 2004 में तत्कालीन सरकार ने एक 'साझे न्यूनतम कार्यक्रम' के साथ ही बीमार सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों को पुनजीवित करने व उन्हें वाणिज्यिक स्वायत्तता प्रदान करने की घोषणा की। इसके बाद वर्ष 2005 में राष्ट्रीय निवेश कोष स्थापित किया गया, जिसके माध्यम से विनिवेश की प्रक्रिया आयोजित की जाती थी।
- वर्ष 2014 में नई विनिवेश नीति का सूत्रपात हुआ और विनिवेश के संबंध में सिफारिशी शक्तियाँ नीति आयोग में अधिकृत की गई।

नई विनिवेश नीति, 2014

इस नीति की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ

- केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (CPSES) के सार्वजनिक स्वामित्व को प्रोत्साहन देना। अधिसूचित CPSES में अल्पांश की बिक्री को जारी रखते हुए सरकार के बहुलांश हिस्से को बरकरार रखना। चिह्नित CPSES में सरकारी हिस्सेदारी के प्रभावी हिस्से (50 प्रतिशत या अधिक) की बिक्री के साथ ही प्रबंधन नियंत्रण के हस्तांतरण के द्वारा रणनीतिक विनिवेश।

- इस नीति का उद्देश्य CPSES में निवेश के कुशल प्रबंधन द्वारा निवेशकों, कर्मचारियों, सरकार और कंपनी के लिये CPSES की कीमत उजागर करना, निर्णय निर्माण प्रक्रिया की तर्कसम्मत व्याख्या तथा निवेशकों के भरोसे में सुधार करने के लिये उपयुक्त प्रबंधन रणनीतियों को अंगीकार करना।

- इस नीति में निवेश और लोक परिसंपत्ति प्रबंधन विभाग (DIPAM) को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह संबंधित प्रशासकीय मंत्रालयों से परामर्श के बाद सरकार के शेयरों की बिक्री के लिये CPSES को चिह्नित करे।

- रणनीतिक विनिवेश के लिये CPSES को चिह्नित करने, बिक्री के तरीके के बारे में सुझाव देने, बिक्री शेयरों का प्रतिशत तय करने तथा CPSES के मूल्य निर्धारित के तरीके को निश्चित करने के लिये नीति आयोग को अधिकृत किया गया है।

आगे का रास्ता

- बढ़ती हुई प्रतिस्पर्द्धा के इस नए माहौल में सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों के कर्मचारियों को अपने अधिकारों की (कल्याणकारी राज्य के अंतर्गत) हिफाजत करते हुए देखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में कर्मचारियों को मिलने वाले संरक्षण तथा किसी भी रणनीतिक सहयोगी को कंपनी चलाने के लिये मिलने वाली संभावित छूट के बीच एक समझौते की जरूरत है।
- रणनीतिक सहभागियों द्वारा परिसंपत्तियों को अलग करना (जैसे कि कंपनियों की परिसंपत्तियों का निपटान), उससे लाभ कमाना और अंततः संबंधित उद्योग का दोहन करने के पश्चात् उसे छोड़ देना सरकार के लिये चिंता का विषय है। इसलिये सरकार के पास ऐसी स्थितियों से निपटने के लिये कानून होना चाहिये।

यद्यपि सरकार ने इक्विटी में बिक्री के लिये CPSES को चिह्नित करने वाली एक व्यवस्थित मूल्यांकन प्रक्रिया को सुनिश्चित किया है। अतः इसका पूरी पारदर्शिता के साथ सभी मामलों में पालन किया जाना चाहिये।

कार्य (Functions)

मौजूदा कार्य आबंटन नियमावली के अनुसार विभाग हेतु शासनादेश इस प्रकार है –

1 निम्नलिखित –

(क) केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र में इक्विटी के विनिवेश सहित इक्विटी में केन्द्र सरकार के निवेश के प्रबंधन से संबंधित सभी मामले।

(ख) केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के पूर्ववर्ती उपक्रमों में बिक्री की पेशकश या निजी नियोजन या किसी अन्य पद्धति के माध्यम से केन्द्र सरकार की इक्विटी की बिक्री से संबंधित सभी मामले;

केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के पूर्ववर्ती उपक्रमों में सामरिक भागीदार द्वारा क्रय विकल्प का उपयोग करने से संबंधित और उससे उत्पन्न मामलों सहित विनिवेश के बाद के अन्य सभी मामलों पर जहाँ आवश्यक हो, निवेश और लोक परिसंपत्ति प्रबंधन विभाग (दीपम) के परामर्श से, संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय या विभाग द्वारा कार्यवाही की जाती रहेगी।

2 सामरिक विनिवेश सहित विनिवेश के लिए प्रशासनिक मंत्रालयों, नीति आयोग आदि की सिफारिशों पर निर्णय लेना।

3 विनिवेश तथा लोक परिसंपत्ति प्रबंधन के लिए स्वतंत्र बाह्य मॉनीटर / मानीटरों से संबंधित सभी मामले।

4 निम्नलिखित

(क) इक्विटी में सरकारी निवेश के प्रयोजन हेतु केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों के संबंध में निर्णय लेना जैसे कि पूंजी पुनर्गठन, बोनस, लाभांश, सरकारी इक्विटी का विनिवेश तथा अन्य संबंधित मुद्दे।

(ख) केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उद्यमों के वित्तीय पुनर्गठन के मामलों में तथा पूंजी बाजारों के माध्यम से निवेश आकर्षित करने के लिए सरकार को सलाह देना।

5 भारतीय यूनिट ट्रस्ट अधिनियम, 1963 (1963 का 52) के साथ–साथ भारतीय यूनिट ट्रस्ट के विनिर्दिष्ट उपक्रम (एसयूयूटीआई) से संबंधित विषय।

दृष्टिकोण

1 विनिवेश के माध्यम से केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उद्यमों की समृद्धि में हिस्सेदारी के लिए उनमें जनस्वामित्व को बढ़ावा देना।
2 आर्थिक विकास में तेजी लाने और उच्चतर व्यय हेतु सरकारी संसाधनों में वृद्धि करने के लिए सीपीएसईस में सरकारी निवेश का दक्ष प्रबंधन।
3 केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उद्यमों को स्टॉफ एक्सचेंजों में सूचीबद्ध करना ताकि सार्वजनिक भागीदारी के माध्यम से जन–स्वामित्व को बढ़ावा मिल सके और अपने शेयर धारकों के प्रति जवाबदेही के माध्यम से सीपीएसई की दक्षता में सुधार हो सके।
4 सामरिक विनिवेश के माध्यम से सीपीएसईस में संचालनात्मक दक्षता लाना ताकि अर्थव्यवस्था में उनका अधिक योगदान सुनिश्चित हो सके।
5 राष्ट्रीय हित में सीपीएसईस के वित्तीय प्रबंधन और सीपीएसईस के स्वामित्व में सार्वजनिक भागीदारी में विस्तार पर लक्षित विनिवेश हेतु एक पेशेवर दृष्टिकोण अपनाना।

संगठनात्मक ढांचा

श्री अतनु चक्रवर्ती ने 21 मई, 2018 को सचिव, निवेश और लोक परिसंपत्ति प्रबंधन विभाग (दीपम) का पदभार ग्रहण किया। सचिव की एक अपर सचिव, 3 संयुक्त सचिवों और एक आर्थिक सलाहकार द्वारा सहायता की जाती है। विभाग डेस्क अधिकारी पद्धति पर कार्य करता है और विनिवेश संबंधी कार्य संयुक्त सचिव, निदेशक/उप सचिव और अवर सचिव स्तरों पर किया जाता है।

विभाग का संगठनात्मक ढांचा परिशिष्ट–1 में दिया गया है।

सीपीएसईस के विनिवेश से संबंधित नीति तथा कार्य पद्धति

मौजूदा नीति में केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उद्यमों (सीपीएसईस) में जन–स्वामित्व के विकास की परिकल्पना की गई है ताकि जनता उनकी संपदा और समृद्धि में हिस्सेदारी कर सके और साथ–साथ यह सुनिश्चित किया जा सके कि सरकारी इक्विटी 51 प्रतिशत से कम न होने पाए और प्रबंधन नियंत्रण सरकार के पास रहे।

सीपीएसईस के विनिवेश से संबंधित मौजूदा नीति की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार है –

1 सरकारी क्षेत्र के उपक्रम राष्ट्र की संपत्ति है और यह सुनिश्चित करने के लिए कि यह संपत्ति आम जनमानस के हाथों में रहे, सीपीएसईस में जन–स्वामित्व को बढ़ावा दिया जाए।

2 सूचीबद्ध सीपीएसईस में अल्पांश हिस्सेदारी की बिक्री के माध्यम से विनिवेश करते समय सरकार अधिकांश अर्थात् कम से कम 51 प्रतिशत शेयरधारिता और सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों का प्रबंधन नियंत्रण अपने पास रखेगी।

3 अभिज्ञात सीपीएसईस में सरकारी शेयरधारिता में से 50 प्रतिशत या उससे अधिक एक सार्थक हिस्से की बिक्री के जरिए सामरिक विनिवेश के साथ प्रबंधन नियंत्रण का हस्तांतरण।

4 उच्चतर आर्थिक विकास पर समग्र ध्यान केन्द्रित करने के साथ सीपीएसईस में भारत सरकार के निवेश का दक्ष प्रबंधन।

विनिवेश हेतु कार्यपद्धति

(क) अल्पांश हिस्सेदारी की बिक्री के माध्यम से विनिवेश

05 नवंबर, 2009 को सरकार ने लाभ अर्जित करने वाली सरकारी कंपनियों में विनिवेश करने के लिए निम्नलिखित कार्य योजना अनुमोदित की थी –

1 ओएफएस : केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के पहले से ही सूचीबद्ध लाभ अर्जित करने वाले उद्यम, (जो अनिवार्य 10 प्रतिशत, जिसे संशोधित कर अब 25 प्रतिशत कर दिया गया है, कि सार्वजनिक शेयरधारिता की शर्त को पूरा नहीं करते), उनको सरकार द्वारा बिक्री की पेशकश या केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उद्यमों द्वारा शेयरों के नए निर्गम या दोनों के संयोजन से इस शर्त का अनुपालक बनाया जाएगा;

2 आईपीओ : केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के वे असूचीबद्ध उद्यम जिनका संचित घाटा नहीं है तथा जिन्होंने पिछले तीन वर्षों में लगातार लाभ अर्जित किया है, उन्हें आईपीओ के माध्यम से सूचीबद्ध किया जाएगा;

3 केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उद्यमों की पूंजी निवेश संबंधी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उनमें अनुवर्ती सार्वजनिक पेशकशों पर मामला दर मामला आधार पर विचार किया जाएगा और सरकार इसके साथ–साथ या स्वतंत्र रूप से अपनी इक्विटी शेयरधारिता के एक हिस्से की पेशकश कर सकती है;

4 विनिवेश के सभी मामलों पर मामला दर मामला आधार पर निर्णय लिया जाएगा;

5 निवेश और लोक परिसंपत्ति प्रबंधन विभाग संबंधित प्रशासनिक मंत्रालयों के परामर्श से केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उद्यमों की पहचान करेगा और जिन मामलों में सरकारी इक्विटी की बिक्री की पेशकश आवश्यक हो, उनके प्रस्ताव सरकार को प्रस्तुत करेगा।

6 एक्सचेंज ट्रेडिड फंड (ईटीएफ) : ईटीएफ शेयरों की एक बास्केट होती है जो एक सूचकांक की संरचना को परिलक्षित करती है जैसे कि निफ्टी 50। ईटीएफ का ट्रेडिंग मूल्य उसके निहित उन शेयरों के निवल परिसंपत्ति मूल्य पर आधारित होता है जिनका यह प्रतिनिधित्व करता है। नियमित ओपन एंडेड म्युचुअल फंडों के विपरीत, ईटीएफ किसी अन्य शेयर की तरह पूरे व्यापारिक दिवस को खरीदा और बेचा जा सकता है।

सरकार दो ईटीएसएस का संचालन करती है – (1) सीपीएसई–ईटीएफ जिसमें 11 सीपीएसईस के शेयर शामिल हैं और (2) भारत– 22 ईटीएफ जिसमें 16 सीपीएसईस के शेयर, 03 पीएसयू बैंकों के शेयर और 03 निजी क्षेत्र के शेयर (आईटीसी, एल एंड टी और एक्सिस बैंक) शामिल हैं।

दो अन्य ईटीएफ भी हैं जो काल्पनिक चरण पर हैं –

1 ऋण ईटीएफ

2 वित्तीय क्षेत्र ईटीएफ

(ख) सामरिक विनिवेश

1 नीति आयोग सहित विभिन्न मंत्रालयों/विभागों के साथ एक परामर्शी प्रक्रिया के माध्यम से किया जाएगा।

2 नीति आयोग सामरिक विनिवेश के लिए सीपीएसईस की पहचान करेगा और बिक्री की पद्धति, सीपीएसईस के बिक्री किए जाने वाले शेयरों की प्रतिशतता और सीपीएसईस के मूल्यांकन की पद्धतियों के संबंध में सलाह देगा।

3 विनिवेश संबंधी सचिवों के प्रमुख दल (सीजीडी) द्वारा नीति आयोग की सिफारिशों पर विचार किया जाएगा ताकि सामरिक विनिवेश के संबंध में आर्थिक कार्य संबंधी मंत्रिमंडल समिति (सीसीईए) द्वारा निर्णय लेने में सुविधा हो और कार्यान्वयन की प्रक्रिया का पर्यवेक्षण / निगरानी हो सके।

(ग) सीपीएसईएस में भारत सरकार के निवेश का व्यापक प्रबंधन

1 आर्थिक विकास में तेजी लाने के लिए सरकार सीपीएसईएस में अपने निवेश को एक महत्त्वपूर्ण परिसंपत्ति मानती है और ईष्टतम प्रतिफल की प्राप्ति हेतु इन संसाधनों के दक्ष उपयोग के प्रतिबद्ध है।

2 सरकार, महत्त्वपूर्ण परस्पर संबंधित मुद्दों जैसे कि नया निवेश आकर्षित करने के लिए परिसंपत्तियों में वृद्धि पूंजीगत पुनर्गठन, वित्तीय पुनर्गठन आदि का समाधान करने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाकर इन उद्देश्यों को प्राप्त करेगी।

3 सीपीएसईएस में निवेशकों के भरोसे में सुधार करने के लिए उपयुक्त निवेश प्रबंधन रणनीति अपनाने और उनके बाजार पूंजीकरण को समर्थन देने हेतु, जो उनके विस्तार और विकास के लिए पूंजी बाजार से नया निवेश जुटाने के लिए आवश्यक होता है, विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन किया जाता है।

4 सीपीएसईएस में निवेश का दक्ष प्रबंधन, सभी संबंधित मुद्दों के लिए निर्णय लेने की प्रक्रिया को तर्कसंगत बनाकर और मामले में सुचारू अंतर–विभागीय समन्वय के माध्यम से सुनिश्चित किया जाता है।

नीतिगत पहल और कार्यनिष्पादन

''विनिवेश'' से ''निवेश'' प्रबंधन दृष्टिकोण

- इस समय सरकार का मुख्य जोर सीपीएसईएस में भारत सरकार के निवेश के दक्ष प्रबंधन की ओर है जिसमें पूरा ध्यान सुसंगत दीर्घकालिक नीतियों के साथ –साथ दक्ष और प्रभावी संसाधन आबंटन के माध्यम से उच्चतर आर्थिक विकास पर केन्द्रित है।

- इस दर्शन पर आधारित बजट 2016–17 में सीपीएसईएस के लिए 'विनिवेश आधारित दृष्टिकोण' से 'निवेश आधारित दृष्टिकोण' को अपनाने की आवश्यकता पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। तद्नुसार, विस्तारित अधिदेश के साथ विभाग का नाम बदलकर दीपम करना सीपीएसईएस में अपने निवेश के प्रबंधन के लिए अपनी रणनीति के संबंध में सरकार की सोच में एक परिवर्तन का उदाहरण है।

- उपयुक्त रणनीतियां अपनाकर सीपीएसईएस में भारत सरकार के निवेश के दक्ष प्रबंधन का लक्ष्य निवेश प्रबंधन में पेशेवर दृष्टिकोण लाना, सीपीएसईएस में निवेशकों के भरोसे में सुधार करना और उनके बाजार पूंजीकरण का समर्थन करना है जो उनके विस्तार और विकास के लिए नया निवेश जुटाने के लिए आवश्यक होता है।

हाल ही में विनिवेश में प्रवृत्तियाँ

तालिका 1 : हाल ही के वर्षों में विनिवेश सौदों में प्रवृत्तियाँ

वर्ष	संशोधित अनु० (रूपये करोड़)	प्राप्तियाँ (रूपये करोड़)	सौंदों की सं०
2014–15	26,353	24,349	8
2015–16	25,313	23,997	9
2016–17	40,000	46,247	24
2017–18	1,00,000	1,00,057	36
2018–19	80,000	84,972	28
कुल	**–**	**2,79,622**	**105**

वर्ष 2004–14 के दौरान प्रतिवर्ष संपन्न किए गए सौंदों की औसत संख्या 04 थी जबकि वर्ष 2015–19 के दौराानन औसतन 21 सौदे प्रतिवर्ष संपन्न किए गए।

उपर्युक्त तालिका विनिवेश के प्रति और अधिक प्रभावशाली प्रयासों की ओर संकेत करती है जिसके परिणामस्वरूप प्राप्तियों में वृद्धि हुई और संपन्न सौदों की संख्या में वृद्धि हुई।

(क) हाल ही के वर्षों में आईपीओस/ईटीएफ में बृहत्त फुटकर भागीदारी

(i) आईपीओस

वर्ष 2017–18 के दौरान, 06 आईपीओस में फुटकर भागीदारी 17.9 प्रतिशत थी जिसमें रूपये 24,040 करोड़ की कुल सब्सक्रिप्शन में से रूपये 4304 करोड़ का आबंटन किया गया था। फुटकर आबंटियों की संख्या 18.32 लाख थी।

इसकी तुलना में वर्ष 2018–19 के दौरान आरंभ की गई 05 आईपीओस में रूपये 1914 करोड़ के कुल अर्थागम में से रूपये 449 करोड़ में किया गया फुटकर आबंटन का हिस्सा 23.4 प्रतिशत था। फुटकर आबंटियों की संख्या 2.94 लाख थी।

वर्ष 2014–15 से 2016–17 के दौरान कोई आईपीओ आरंभ नहीं की गई थी।

(ii) ईटीएफ

वर्ष 2018–19 में ईटीएफ की 04 खेपों में विनिवेश प्राप्ति के रूप में रूपये 45,080 करोड़ की धनराशि प्राप्त हुई जिसमें फुटकर निवेशकों का हिस्सा रूपये 9800 करोड़ (21.7 प्रतिशत) था। फुटकर आबंटियों की संख्या 6.34 लाख थी।

वर्ष 2017–18में ईटीएफ की केवल एक पेशकश की गई थी। जिससे विनिवेश प्राप्ति के रूप में रूपये 14,500 करोड़ की धनराशि प्राप्त हुई जिसमें फुटकर निवेशकों का हिस्सा रूपये 2,712 करोड़ (18.7 प्रतिशत) था। फुटकर आबंटियों की संख्या 3.26 लाख थी।

वर्ष 2016–17 में ईटीएफ की दो पेशकशों में रूपये 8,500 करोड़ की प्राप्ति हुई जिसमें 4.33 लाख फुटकर आबंटियों को किया गया फुटकर आबंटन रूपये 3766 करोड़ (44.3 प्रतिशत) था।

(ख) विनिवेश सौदों में सरकारी वित्तीय संस्थानों का योगदान

विनिवेश सौदों में सरकारी वित्तीय संस्थानों (एलआईसी, जीआईसी, एसबीआई) के संयुक्त योगदान का विश्लेषण हाल ही के वर्षों में एक घटती हुई प्रवृत्ति दर्शाता है। आईपीओस/ओएफएस/ईटीएफ में सरकारी वित्तीय संस्थानों को किया गया औसतन आबंटन इस प्रकार है :

वर्ष 2018–19 : रूपये 3,326 करोड़ और

वर्ष 2017–18 : रूपये 25,009 करोड़

(ग) पिछले 05 वर्षों के दौरान सूचीबद्ध सीपीएसईएस के बाजार पूंजीकरण में सुधार

मई, 2014 की स्थिति के अनुसार 47 सीपीएसईएस सूचीबद्ध थे। मई, 2019 में सूचीबद्ध सीपीएसईएस की संख्या (सरकारी क्षेत्र की दो बीमा कंपनियों सहित) बढ़कर 59 हो गई।

बाजार पूंजीकरण के आंकड़ों के विश्लेषण की 01 मई, 2014 और 06 मई, 2019 की स्थिति के अनुसार तुलना की गई थी, जो प्राइम डाटाबेस द्वारा प्रस्तुत जानकारी पर आधारित थी और जिसने नेशनल स्टॉक एक्सचेंज से प्राप्त आंकड़ों का उपयोग किया और जिससे यह पता चलता है कि जो 39 सीपीएसईएस 01 मई, 2014 और 06 मई, 2019 को सूचीबद्ध थे, उनका समग्र बाजार पूंजीकरण रूपये 11,10,458.25 करोड़ से बढ़कर रूपये 12,82,918. 94 करोड़ हो गया है जो 15.53 प्रतिशत वृद्धि दर्शाता है।

इन 05 वर्षों की अवधि के दौरान की गई विनिवेश संबंधी कार्यवाही के बावजूद इन 39 सीपीएसईएस में से 15 में भारत सरकार की इक्विटी धारिता के बाजार पूंजीकरण में वृद्धि हुई है।

वर्ष 2018–19 के दौरान विनिवेश की मुख्य बातें

चालू वित्त वर्ष 2018–19 में विनिवेश के रूपये 80,000 करोड़ के संशोधित अनुमान के विरुद्ध कुछ रूपये 84,972 करोड़ की धनराशि प्राप्त हुई।

वर्ष 2018–19 में पद्धति–वार विनिवेश का कार्य निष्पादन

(i) एक्सचेंज ट्रेडेड फंड (ईटीएफएस)

वित्त वर्ष 2018–19 के दौरान फुटकर भागीदारी अैर कुल प्राप्तियों के संबंध में ईटीएफ सर्वाधिक सफल पद्धति / माध्यम साबित हुआ है। ईटीएफ एफएफओ की 4 खेप संपन्न की गई जो इस प्रकार हैं :

ईटीएफ का नाम	महीना	प्राप्तियां (रूपये करोड़ में)
भारत – 22	जून, 2018	8,325
सीपीएसई – ईटीएफ	नवबंर, 2018	17,000
भारत–22 ईटीएफ	फरवरी, 2019	10,405
सीपीएसई–ईटीएफ	मार्च, 2019	9,350
	कुल	**45,080**

(क) वर्ष 2018–19 में कुल मिलाकर ईटीएफ का योगदान कुल प्राप्तियों का लगभग 53.1 प्रतिशत रहा।

(ख) विनिवेश के इतिहास में नवंबर, 2018 में संपन्न की गई सीपीएसई ईटीएफ एफएफओ प्राप्तियों (रूपये 17,000 करोड़) के संबंध में ईटीएफ की सबसे बड़ी खेप थी।

(ग) इसी प्रकार फरवरी, 2019 में शुरू किये गये भारत–22 ईटीएफ से रूपये 3500 करोड़ की आधार पेशकश के विरुद्ध रूपये 50,000 करोड़ से अधिक प्राप्त हुए। सरकार द्वारा केवल रूपये 10,405 करोड़ रखे गए।

(ii) आईपीओ

(क) वर्ष 2018–19 में पांच आईपीओस की शुरूआत की गई थी अर्थात् मिधानी, राइटस, इरकॉन, जीआरएसई और एमएसटीसी। इससे कुल रूपये 1914 करोड़ की धनराशि प्राप्त हुई।

(ख) 05 सीपीएसईस का सूचीकरण होने से मार्च, 2019 के अंत तक सूचीबद्ध सीपीएसईस की संख्या 58 हो गई।

(iii) ओएफएस

चालू वित्त वर्ष में केवल 01 अर्थात् कोल इंडिया का ओएफएस सौदा संपन्न किया गया जिससे रूपये 5218.30 करोड़ की प्राप्ति हुई। सीआईएल कर्मचारी ओएफएस से रूपये 17.33 करोड़ प्राप्त हुए।

(iv) वापस खरीद

वर्ष 2018–19 में सीपीएसईस के शेयरों की वापस खरीद में सरकार की हिस्सेदारी विनिवेश की एक सफल पद्धति थी। वापस खरीद के 11 मामलों में विनिवेश प्राप्तियां इस प्रकार है :

क्र०सं०	सीपीएसई का नाम	वापस खरीद प्राप्तियां (रूपये करोड़ में)
1.	केआईओसीएल	205
2.	नालको	260
3.	एनएलसी	990
4.	कोचीन शिपयार्ड	137
5.	भेल	992
6.	एनएचपीसी	398
7.	इंडियन ऑयल	2647
8.	ओएनजीसी	2510
9.	एनएमडीसी	769
10.	ऑयल इंडिया	721
11.	कोल इंडिया	1040
	कुल	**10,669**

(v) सामरिक विनिवेश

(क) सरकार द्वारा अनुमोदित सामरिक विनिवेश के 28 मामलों के संबंध में महत्वपूर्ण प्रगति की गई और ये विभिन्न चरणों में हैं और इनमें से वित्त वर्ष 2018–19 के दौरान 03 कंपनियों नामत : (i) हॉस्पिटल सर्विसेस कंसल्टेंसी कार्पो, लि० (एचएससीसी लि०), (ii) ड्रेजिंग कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लि० (डीसीआईएल) और (iii) नेशनल प्रोजेक्ट्स कंस्ट्रक्शन कार्पो, लि० (एनपीसीसी लि०) की सामरिक बिक्री की जा चुकी है।

(ख) एचएससीसी को रूपये 285 करोड़ में एनबीसीसी इंडिया द्वारा अधिग्रहित किया गया था जबकि 04 पतनों के संघ द्वारा रूपये 1049 करोड़ में ड्रेजिंग कार्पोरेशन का अधिग्रहण किया गया।

(ग) वैपकोस द्वारा एनपीसीसी का अधिग्रहण रूपये 79.80 करोड़ में किया गया।

(घ) रूरल इलैक्ट्रिफिकेशन कार्पो, लि० (आरईसी) में भारत सरकार की इक्विटी का एक मुख्य सामरिक अधिग्रहण सौदा पावर फाइनेंस कार्पो, लि० (पीएफसी) द्वारा रूपये 14,500 करोड़ के बदले में संपन्न किया गया।

(ड़) हिंदुस्तान फ्लोरोकार्बन्स लि० (एचएफएल) और हिंदुस्तान प्रीफेब लि० (एचपीएल) के 'बंदीकरण' के लिए सक्षम प्राधिकारी का निर्णय प्राप्त किया गया था।

(vi) अन्य सौदे

(क) एसयूयूटीआई के अधीन भारत सरकार द्वारा धारित शेयरों में से वर्ष 2018–19 के दौरान एक्सिस बैंक के शेयरों का विक्रय कर रूपये 5379 करोड़ जुटाए गए।

(ख) पहली बार वर्ष 2018–19 के दौरान भारत के शुत्र संपत्ति अभिरक्षक के अधीन शेयरों का दैनिक आधार पर एक सुनियोजित ड्रिबलिंग तंत्र के माध्यम से विक्रय किया गया जिससे रूपये 79 करोड़ जुटाए गए। यह सौदा अगले वित्त वर्ष में भी जारी रहा।

2018–19 के दौरान दीपम की नई पहलकदमियां :

1. परिसंपत्ति मुद्रीकरण पर ध्यान – नीति और प्रक्रिया

(i) संस्थागत ढांचा दिनांक 08.03.2019 को अधिसूचित किया गया था जिसमें निम्नलिखित शामिल हैं :

(क) सामरिक विनिवेश के अधीन सीपीएसईएस की अभिज्ञात महत्वपूर्ण परिसंपत्तियां।

(ख) सीईपीआई, एमएचए की अभिरक्षा के अधीन सूत्र अचल संपत्तियां

(ग) रूग्ण/घाटे में चलने वाले सीपीएसईएस सहित केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के उद्यमों / सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों / अन्य सरकारी संगठनों की परिसंपत्तियां।

(ii) प्रक्रिया की निम्न प्रकार शुरूआत की गई :

(क) वैकल्पिक तंत्र (एएम), (सीजीएएम), अंतर मंत्रालय दल (आईएमजी) और परामर्शदायी समूहों को अधिसूचित किया गया है।

(ख) परिसंपत्ति मुद्रीकरण कोष्ठ के लिए मध्यस्थों की नियुक्ति आरंभ की गई।

(ग) पदों के सृजन के लिए प्रस्ताव व्यय विभाग को भेजा गया।

(घ) मुद्रीकृत की जाने वाली संभावित परिसंपत्तियों की सूची को अंतिम रूप दिया जा रहा है।

(iii) वर्ष 2019–20 के दौरान संभावित मुद्रीकरण के लिए सामरिक विनिवेश के अधीन सीपीएसईएस की प्रस्तावित परिसंपत्तियों की सूची :

(क) ब्रिज एवं रूफ कंपनी (इंडिया) लि० के 32 फ्लैट।

(ख) स्कूटर्स इंडिया लि० की 90 एकड़ भूमि।

(ग) भारत पंप्स एंड कम्प्रेसर्स लि० के 07 फ्लैट।

(घ) एमटीएनएल के मोबाइल टावर।

(ड़) गृह मंत्रालय द्वारा भेजी गई लगभग 11 सूत्र अचल संपत्तियां।

2. ऋण ईटीएफ

वित्त मंत्री के फरवरी, 2018 के बजट भाषण की एक घोषणा के अनुसरण में दीपम भी ऋण ईटीएफ के सृजन की प्रक्रिया में है ताकि सीपीएसईएस अपने कुल सामर्थ्य को बढ़ाकर आंशिक रूप से अपनी पूंजीगत व्यय की आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु ऋण / बॉण्ड बाजार तक पहुँच बनाने में सक्षम हो सकें। इस ऋण ईटीएफ के लिए सलाहकार, विधिक सलाहकार और परिसंपत्ति प्रबंधन कंपनी (एएमसी) की नियुक्ति की जा चुकी है।

3. वर्ष 2019–20 के लिए योजना

वर्ष 2019–20 के लिए विनिवेश का बजट अनुमान रूपये 90,000 करोड़ निर्धारित किया गया है। इसकी प्राप्ति के लिए, दीपम वित्त वर्ष 2019–20 के लिए विनिवेश की पारम्परिक पद्धतियों जैसे कि आईपीओ / ओएफएस आदि से भिन्न निम्नलिखित महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित कर रहा है :

(i) परिसंपत्ति मुद्रीकरण;

(ii) सामरिक विनिवेश और

(iii) बैंक ईटीएफ सहित थीम आधारित ईटीएसएस।

अशक्त व्यक्तियों, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्गों के व्यक्तियों के लिए की गई पहल

अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अशक्त व्यक्तियों तथा अन्य पिछड़ा वर्गों के प्रतिनिधित्व के साथ विभाग के कर्मचारियों की संख्या अनुबंध–I और II में दी गई है।

जेण्डर बजटिंग और महिला सशक्तिकरण से संबंधित पहल

विभाग को आबंटित कार्य की प्रकृति में जेण्डर बजटिंग और महिला सशक्तिकरण की कोई गुंजाइश नहीं है।

राजभाषा नीति

राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के लिए विभाग में एक सम्पूर्ण राजभाषा इकाई है। विभाग की वेबसाइट द्विभाषी है।

ई–गवर्नेन्स

सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग के माध्यम से अच्छे प्रशासन एक भाग के रूप में निम्नलिखित पहल की गई हैं –

(i) **ई–फाइलिंग :** यह विभाग ऐसी फाइलों पर कार्यवाही करता है जो प्रकृति में बहुत संवेदनशील हैं क्योंकि अधिकतर फाइलें विनिवेश सौदों और संबंधित मामलों से संबंधित हैं। इसके बावजूद विभाग ने ई–ऑफिस

के कार्यान्वयन के लिए सघन प्रयास किए हैं और इसके परिणामस्वरूप विभाग में ई–फाइलों का प्रतिशत दिनांक 04.01.2019 को 35.08 प्रतिशत से बढ़कर 23.05.2019 को 45.90 प्रतिशत हो गया है।

(ii) विभाग की वेबसाइट (www.dipam.gov.in) को नियमित आधार पर हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में अद्यतित किया जाता है। वेबसाइट को भारतीय सरकारी वेबसाइटों हेतु दिशा–निर्देशों (जीआईजीडब्ल्यू) का अनुपालक बनाया गया है।

(iii) पेरोल पैकेज का रखरखाव

(iv) फाइल ट्रेकिंग सिस्टम सॉफ्टवेयर का रखरखाव

(v) निम्नलिखित वेब आधारित मॉनिटरिंग प्रणालियाँ कार्यरत हैं :

1 राज्य सभा प्रश्न, उत्तर मॉनिटरिंग सिस्टम

2 लोक शिकायत सूचना प्रणाली

3 केंद्रीकृत निविदा / प्रक्योरमेंट मॉनिटरिंग प्रणाली : निविदाएं नियमित आधार पर वेबसाइट पर डाली जाती हैं और ई–प्रक्योरमेंट पोर्टल में ई–प्रकाशन नियमित आधार पर किया जाता है।

4 भारत सरकार के पदों और सेवाओं में आरक्षित श्रेणियों के प्रतिनिधित्व की मॉनिटरिंग प्रणाली (आरआरसीपीएस) (अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति आयोग पोर्टल)

5 आईएएस अधिकारियों (संयुक्त सचिव स्तर एवं उससे ऊपर), सीएसएस / सीएसएसएस अधिकारियों (अवर सचिव स्तर एवं उससे ऊपर) के लिए एपीएआर मॉनिटरिंग प्रणाली।

6 संवर्ग प्रबंधन प्रणाली (सीएसएस अधिकारियों के लिए)

7 पेंशन पोर्टल

8 आरटीआई वार्षिक विवरण सूचना प्रणाली

9 त्रै–मासिक रोलिंग प्लान

10 डाटा पोर्टल (data.gov.in)

लोक शिकायतों का निवारण

विभाग, केन्द्रीकृत लोक शिकायत निवारण और निगरानी प्रणाली (सीपीजीआर– एएमएस) का उपयोग कर रहा है। विभाग की वेबसाइट में आम जनता से शिकायतें प्राप्त करने का एक अंतर्निर्मित तंत्र भी है। इस प्रयोजन हेतु एक संयुक्त सचिव स्तर के अधिकारी को लोक शिकायत निदेशक के रूप में पदनामित किया गया है।

महिला कर्मचारियों के यौन उत्पीड़न के संबंध में आन्तरिक शिकायत समिति

कार्य स्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न की रोकथाम के संबंध में विशाखा मामले में मानवीय उच्चतम न्यायालय के दिनांक 13 अगस्त, 1997 के निर्णय के अनुपालन में, निवेश और लोक परिसंपत्ति प्रबंधन विभाग में, महिला कर्मचारियों के यौन उत्पीड़न की शिकायतों पर विचार करने के लिए एक आन्तरिक शिकायत समिति का गठन किया गया है।

सतर्कता तंत्र

विभाग में एक संयुक्त सचिव स्तर के अधिकारी को अंशकालिक मुख्य सर्तकता अधिकारी के रूप में पदनामित किया गया है।

सूचना का अधिकार, अधिनियम, 2005

सूचना का अधिकार, अधिनियम 2005 के उपबंधों के अधीन सूचना के प्रसार को सुविधाजनक बनाने के लिए विभाग द्वारा निम्नलिखित पहलकदमियां की गई हैं –

(i) एक आरटीआई कोष्ठ स्थापित किया गया है जो आरटीआई अधिनियम, 2005 के अधीन आवेदन एकत्रित करेगा, संबंधित केंद्रीय लोक सूचना अधिकारियों / लोक प्राधिकरणों को आवेदन हस्तांतरित करेगा और आरटीआई आवेदनों / अपीलों की प्राप्ति तथा निपटान का त्रैमासिक विवरण केंद्रीय सूचना आयोग को प्रस्तुत करेगा।

(ii) सूचना का अधिकार अधिनियम के खण्ड 4(1) (बी) के अनुपालन में, विभाग के कार्यों के साथ–साथ उनके निष्पादकों से संबंधित विवरण विभाग की वेबसाइट पर डाल दिया गया है और इसको समय–समय पर अद्यतित किया जाता है।

(iii) अधिनियम के खण्ड 5(1) के अधीन एक अवर सचिव को नोडल केंद्रीय लोक सूचना अधिकारी और एक उप निदेशक तथा आठ अन्य अवर सचिवों को, उनके द्वारा निष्पादित किए जाने वाले मामलों के संबंध में केंद्रीय लोक सूचना अधिकारियों के रूप में नामित किया गया है।

(iv) संयुक्त सचिव स्तर के अधिकारियों को उनके प्रभाग से संबंधित सभी मामलों के लिए अधिनियम की धारा 19(1) के अनुसार प्रथम अपील प्राधिकारियों के रूप में पदनामित किया गया है।

बेहतर प्रशासन के लिए पहलकदमियां

भारत सरकार की (कार्य–आबंटन) नियमावली, 1961 द्वारा प्रदान किए गए शासनादेश के अनुसार विभाग किसी भी प्रकार की लोक सेवाएं करने में शामिल नहीं होता और इस प्रकार इसका नागरिकों अथवा बड़े पैमाने पर जनता के साथ सीधा सम्पर्क नहीं होता है। तथापि, विभाग ने बेहतर प्रशासन के एक भाग के रूप में निम्नलिखित उपाय किए हैं –

- विलम्ब और भ्रष्टाचार की किसी गुंजाइश से बचने के लिए तथा बेहतर प्रशासन को बढ़ावा देने के लिए सौदा संबंधी बिलों के निपटाने के लिए समय–सीमाएं निर्धारित की गई है।

अनुबन्ध – I

निवेश और लोक परिसंपत्ति प्रबंधन विभाग के संबंध में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्गों का प्रतिनिधित्व

समूह	कर्मचारियों की संख्या				पिछले कलेंडर वर्ष के दौरान की गई नियुक्तियों की संख्या									
	(31.03.2019 के अनुसार)				सीधी भर्ती द्वारा				पदोन्नति द्वारा			प्रतिनियुक्ति द्वारा		
	कुल	अ. जा.	अ. ज. जा.	ओबीसी	कुल	अ. जा.	अ. ज. जा.	ओबीसी	कुल	अ. जा.	अ. ज. जा.	कुल	अ. जा.	अ. ज. जा.
क	27	4	1	2	0	0	0	0	0	0	0	1	0	0
ख	22	4	1	1	0	0	0	0	0	0	0	1	0	0
ग	12	5	0	5	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
कुल	61	13	2	8	0	0	0	0	0	0	0	2	0	0

अनुबन्ध – II

निवेश और लोक परिसंपत्ति प्रबंधन विभाग अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अशक्त व्यक्तियों तथा अन्य पिछड़ा वर्गों का दिनांक 31.03.2019 की तिथि के अनुसार प्रतिनिधित्व

समूह	कर्मचारियों की संख्या					पिछले कलेंडर वर्ष के दौरान की गई नियुक्तियों की संख्या														
	(13.03.2019 के अनुसार)					सीधी भर्ती द्वारा					पदोन्नति द्वारा					अन्य पद्धतियों द्वारा (प्रतिनियुक्ति)				
	कुल	अ. जा.	अ. ज. जा.	अ. व्य.	ओ बी सी	कुल	अ. जा.	अ. ज. जा.	अ. व्य.	ओ बी सी	कुल	अ. जा.	अ. ज. जा.	अ. व्य.	ओ बी सी	कुल	अ. जा.	अ. ज. जा.	अ. व्य.	ओ बी सी
क	27	4	1	0	2	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	1	0	0	0	0
ख	22	4	1	0	1	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	1	0	0	0	0
ग	12	5	0	0	5	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
कुल	61	13	2	0	8	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	2	0	0	0	0

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- संजय तिवारी, डिसइनवैस्टमेन्ट प्रोग्राम इन इंडिया, नई दिल्ली, सरूप एण्ड सन्सज, 2006
- सुधीर नायब, डिसइनवैस्टमेन्ट इन इंडिया : पोलिसिज, प्रोसिजरज, प्रकेटिसज, नई दिल्ली, सेज, 2004
- वी०एस० यादव और पूनम अग्रवाल, डिसइनवैस्टमेन्ट ऑफ पब्लिक सैक्टर इन इंडिया, नई दिल्ली, श्री पब्लिसरज, 2006

कुछ प्रश्न

- विनिवेश नीति की परिभाषा दो। इसकी विशेषताएं बताए।
- विनिवेश नीति के उद्देश्य तथा महत्त्व का वर्णन करो।

संगठनात्मक ढांचा
निवेश और लोक परिसंपत्ति प्रबंधन विभाग

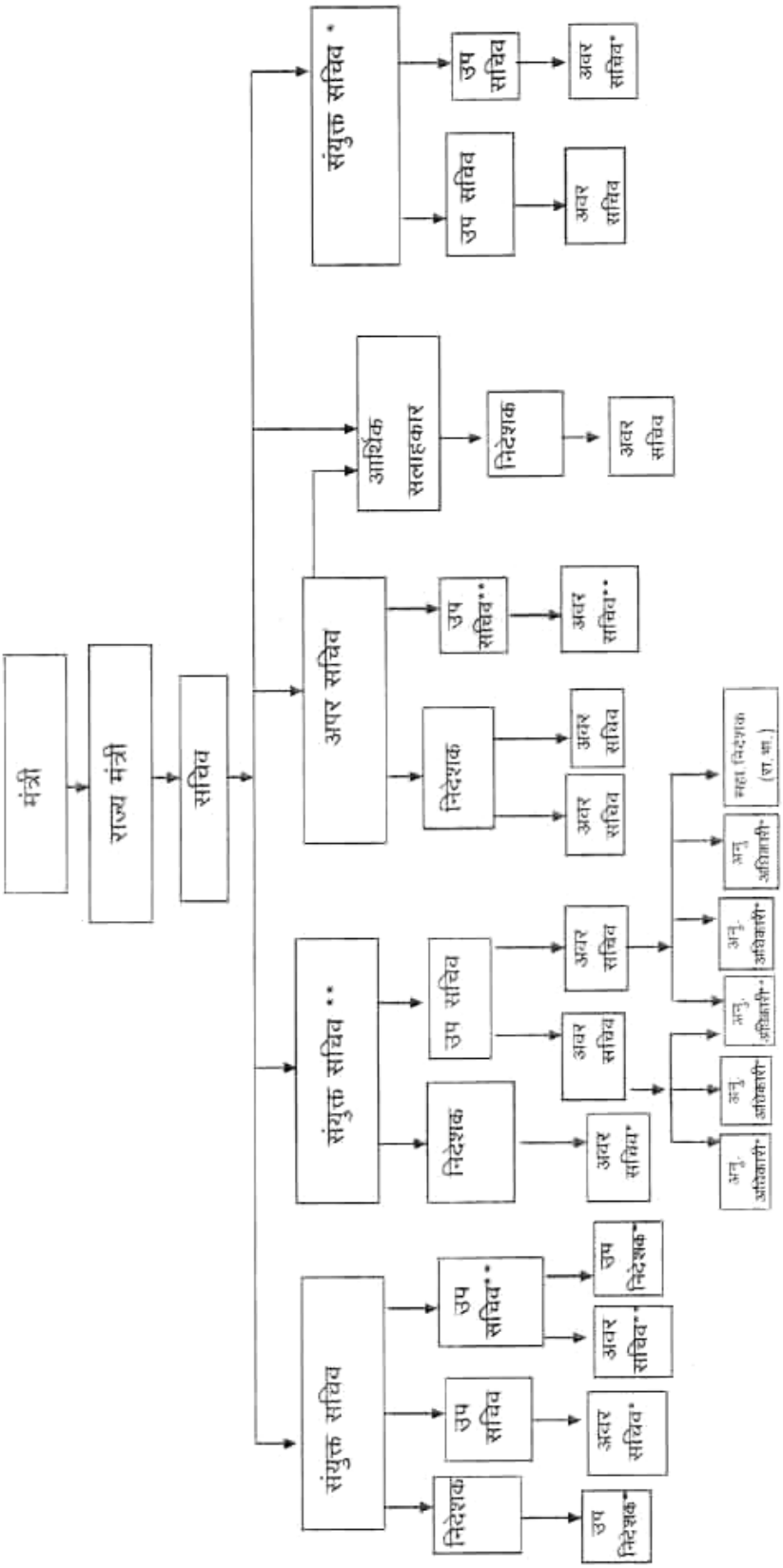

* रिक्त पद
** अधिकारी जिनके पास अतिरिक्त प्रभार है

अध्याय – 4

अर्न्तराष्ट्रीय मुद्राकोष की भूमिका

(Role of International Monetary Fund)

रूपरेखा

- स्थापना तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- कार्य
- आई०एम०एफ० और विश्व बैंक
- सारांश
- कुछ उपयोगी पुस्तकें
- कुछ संभावित प्रश्न

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की भूमिका

(Role of International Monetary Fund)

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष 189 सदस्य देशों वाला एक संगठन है जिनमें से प्रत्येक देश का इसके वित्तीय महत्त्व के अनुपात में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कार्यकारी बोर्ड में प्रतिनिधित्व हैं। इस प्रकार वैश्विक अर्थव्यवस्था में जो देश अधिक शक्तिशाली है उस देश के पास अधिक मताधिकार है।

उद्देश्य (Objectives)

- वैश्विक मौद्रिक सहयोग को बढ़ावा देना।
- वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित करना।
- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और सतत् आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देना।
- दुनिया भर में गरीबी को कम करना।

इतिहास (History)

- अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की अभिकल्पना जुलाई 1944 में संयुक्त राज्य के 'न्यू हैम्पशायर' में संयुक्त राष्ट्र के ब्रेटन वुड्स सम्मेलन में की गई थी।
- उक्त सम्मेलन में 44 देशों ने एक साथ मिलकर आर्थिक – सहयोग हेतु एक फ्रेमवर्क के निर्माण की बात की ताकि प्रतिस्पर्द्धा अवमूल्यन की पुनरावृत्ति से बचा जा सके जिसके कारण वर्ष 1930 के दशक में आए विश्वव्यापी महामंदी जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई थी।

- जब तक कोई देश अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का सदस्य नहीं बनता, तब तक उसे विश्व बैंक की शाखा अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (International Bank for Reconstruction and Development - IBRD) में सदस्यता नहीं मिलती है।

- ब्रेटन वुड्स समझौते के अनुरूप अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय सहयोग को प्रोत्साहित करने के लिये IMF ने निश्चित विनिमय दरों पर मुद्रा परिवर्तन की एक प्रणाली स्थापित की और आधिकारिक भंडार के लिये सोने को यू०एस० डॉलर (प्रति औंस गोल्ड पर 35 यूएस डॉलर) से प्रतिस्थापित किया।

- वर्ष 1971 में ब्रेटन वुड्स प्रणाली (स्थायी विनिम दरों की प्रणाली) के समाप्त हो जाने के पश्चात् IMF ने अस्थायी विनिमय दरों की प्रणाली को प्रोत्साहित किया है। देश अपनी विनिमय व्यवस्था को चुनने के लिये स्वतंत्र हैं जिसका अर्थ है कि बाजार की शक्तियाँ एक दूसरे के सापेक्ष मुद्रा के मूल्यों को निर्धारित करती है। यह प्रणाली आज भी जारी है।

- वर्ष 1973 के तेल संकट के दौरान वर्ष 1973 और 1977 के बीच तेल–आयात करने में 100 विकासशील देशों के विदेशी ऋण में 150 प्रतिशत तक की वृद्धि हो गई जिसने आगे दुनिया भर में अस्थायी विनिमय दरों को लागू करना कठिन बना दिया। IMF ने वर्ष 1974–1976 के दौरान एक न्यू लेंडिंग प्रोग्राम (New Lending Program) की शुरूआत की जिसे 'तेल सुविधा' (Oil Facility) कहते हैं। यह सुविधा तेल आयातक राष्ट्रों एवं अन्य उधारदाताओं (Lenders) द्वारा वित्तपोषित है।

- उन राष्ट्रों के लिये उपलब्ध है जो तेल की कीमतों में बढ़ोतरी के कारण व्यापार –संतुलन (Balance of Trade) बनाए रखने में समस्याओं से गुजर रहे हो।

- IMF, अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रणाली संगठनों में से एक है। IMF की संरचना अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवाद के पुनर्निर्माण को राष्ट्रीय आर्थिक संप्रभुता एवं मानव कल्याण के उच्चतम मूल्यांकन (Maximisation) के साथ संतुलित करने में सुविधा प्रदान करती है। इस प्रणाली को सन्निहित उदारवाद (Eembedded Liberalism) कहते हैं।

- IMF ने पूर्व सोवियत ब्लॉक के देशों की केंद्रीय योजना आधारित अर्थव्यवस्था को बाजार संचालित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करने में प्रमुख भूमिका निभाई है।

- वर्ष 1997 के दौरान पूर्व एशिया में थाइलैंड से लेकर इंडोनेशिया और कोरिया तक एक वित्तीय संकट ने दस्तक दी थी। IMF ने इस संकट से प्रभावित अर्थव्यवस्थाओं के लिये एक राहत पैकेज श्रृंखला की शुखला की ताकि उन्हें डिफॉल्ट से बचने, बैंकिंग एवं वित्तीय व्यवस्था में सुधार के लिये सक्षम बनाया जा सके।

- वैश्विक आर्थिक संकट (2008) : IMF ने वैश्वीकरण एवं पूरी दुनिया को आर्थिक तौर पर जोड़ने तथा निगरानी तंत्र को मज़बूत करने हेतु प्रमुख पहलें की हैं। इन पहलों में स्पिल–ओवर (जब किसी एक देश की आर्थिक नीतियाँ किसी अन्य देशों को प्रभावित कर सकती हो) को कवर करने, वित्तीय प्रणाली एवं जोखिमों के विश्लेषण की निगरानी हेतु कानूनी ढाँचे का पुनर्निर्माण करना, आदि शामिल था।

कार्य (Functions)

- **वित्तीय सहयोग प्रदान करना :** भुगतान संतुलन की समस्याओं से जूझ रहे सदस्य देशों को वित्तीय सहयोग प्रदान करना और अंतर्राष्ट्रीय भंडार की भरपाई करने, मुद्रा विनिमय को स्थिर करने और आर्थिक विकास के लिये ऋण वितरण करना।
- **IMF निगरानी तंत्र :** यह अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली का निरीक्षण करता है एवं अपने 189 सदस्य देशों की आर्थिक और वित्तीय नीतियों की निगरानी करता है। इस प्रक्रिया के एक भाग के रूप में यह निगरानी किसी एक देश के साथ–साथ वैश्विक स्तर पर भी की जाती है। IMF आर्थिक स्थिरता के संबंध में संभावित जोखिमों पर प्रकाश डालने के साथ ही आवश्यक नीति समायोजन (Needed Policy Adjustments) पर भी सलाह देता है।
- **क्षमता विकास :** यह केंद्रीय बैंकों, वित्त मंत्रालयों, कर अधिकारियों एवं अन्य आर्थिक संस्थानों को प्रौद्योगिकी सहयोग और प्रशिक्षण प्रदान करता है। यह राष्ट्रों के सार्वजनिक राजस्व को बढ़ाने बैंकिंग प्रणाली का आधुनिकीकरण करने, मजबूत कानूनी ढाँचे का विकास करने, शासन में सुधार करने में सहयोग करता है और वित्तीय आँकड़ों एवं व्यापक आर्थिक रिपोर्टिंग को प्रोत्साहित करता है। यह राष्ट्रों को सतत् विकास लक्ष्य (SDG) की ओर प्रगति करने में भी सहयोग करता है।

प्रशासन (Administration)

- **बोर्ड ऑफ गवर्नर :** इसमें एक गवर्नर एवं प्रत्येक सदस्य देश के लिये एक वैकल्पिक गवर्नर होते है। प्रत्येक सदस्य देश अपने दो गवर्नर नियुक्त करते है।
- यह कार्यकारी बोर्ड के लिये कार्यकारी निदेशकों के चयन या नियुक्ति के लिये उत्तरदायी है।
- कोटा (Quota) वृद्धि, विशेष आहरण अधिकार के आबंटन का अनुमोदन करना।
- नये सदस्यों का प्रवेश, सदस्य की अनिवार्य वापसी।
- समझौते के अनुच्छेदों एवं उप–नियमों की शर्तों में संशोधन।
- मंत्री स्तरीय समिति, अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक एवं वित्तीय समिति (IMFC) और विकास समिति बोर्ड ऑफ गवर्नर को सलाह देती हैं।
- सामान्यतः IMF एवं विश्व बैंक समूह के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स की वर्ष में एक बार बैठक होती हैं, बैठक के दौरान उनके संबंधित संस्थानों के कार्यों पर चर्चा की जाती है।
- **मंत्रालय–संबंधी समितियाँ :** दो मंत्री स्तरीय समितियों द्वारा बोर्ड ऑफ गवर्नर को सलाह दी जाती है।
- **अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक एवं वित्तीय समिति (IMFC) :** IMFC में 24 सदस्य होते हैं जिन्हें 189 गवर्नर में से चुना जाता है और ये सभी सदस्य देशों का प्रतिनिधित्व करते हैं।
  - ❖ यह समिति अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक एवं वित्तीय समिति (IMFC) के प्रबंधन पर चर्चा करती है।
  - ❖ यह समझौते के अनुच्छेदों में संशोधन के प्रस्ताव पर भी चर्चा करती है।
  - ❖ इसके साथ ही वैश्विक अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने वाले अन्य सामान्य मुद्दों पर भी चर्चा की जाती है।

- **विकास समिति :** विकास समिति IMF के बोर्ड ऑफ गवर्नर एवं विश्व बैंक के 25 सदस्यों वाली एक संयुक्त समिति है। इस समिति का कार्य विकासशील देशों, उभरते बाज़ार एवं आर्थिक विकास के संबंधित मुद्दों पर IMF और विश्व बैंक के बोर्ड ऑफ गवर्नर को सलाह देना है।
  - ❖ यह विकास के महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर अंतर–सरकारी सहमति स्थापित करने के लिये एक मंच के रूप में कार्य करता है।
- **कार्यकारी बोर्ड (Executive Board) :** यह 24 सदस्यों वाला एक बोर्ड है जिनका चुनाव बोर्ड ऑफ गवर्नर द्वारा किया जाता है।
  - ❖ यह IMF के दैनिक कार्यों का संचालन करता है और बोर्ड ऑफ गवर्नर द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करता हैं।
  - ❖ यह IMF स्टॉफ के सदस्य देशों की अर्थव्यवस्था की वार्षिक स्थिति की जाँच से लेकर वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिये प्रासंगिक नीतिगत मुद्दों तक IMF के कार्यों (Fund's Work) के सभी पहलुओं पर चर्चा करता है।
  - ❖ सामान्यतः बोर्ड सहमति के आधार पर निर्णय लेता है, लेकिन कभी–कभी औपचारिक मतदान भी किया जाता है।
  - ❖ प्रत्येक सदस्य का वोट बेसिक वोट एवं कोटा आधारित वोट के जोड़ के बराबर होता है। एक सदस्य का कोटा उसकी मतदान शक्ति को निर्धारित करता है।
- **IMF प्रबंधन :** IMF के प्रबंधन निदेशक IMF के कार्यकारी बोर्ड का अध्यक्ष एवं IMF का प्रमुख दोनों होता है। प्रबंधन निदेशक की नियुक्ति कार्यकारी बोर्ड द्वारा वोटिंग या सहमति के माध्यम से की जाती है।
- **IMF सदस्यता :** कोई अन्य देश चाहे वह UN का सदस्य हो या न हो, वह बोर्ड ऑफ गवर्नर द्वारा निर्धारित शर्तों एवं IMF की अनुबंध शर्तों को अपनाकर इसका सदस्य बन सकता है।
  - ❖ IMF की सदस्यता अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (International Bank for Reconstruction and Development - IBRD) की सदस्यता के लिये एक शर्त है।
  - ❖ **कोटा सदस्यता हेतु भुगतान :** प्रत्येक सदस्य देश IMF से जुड़ने पर कुछ मुद्रा का योगदान करता है जिसे कोटा सदस्यता (Quota Subscription) कहते हैं जो देश की संपदा एवं आर्थिक प्रदर्शन पर आधारित होती है। जहाँ संयुक्त राष्ट्र महासभा में सभी सदस्यों को एक वोट का अधिकार मिलता है वहीं IMF में यह अधिकार एक कोटे के रूप में प्रदान किया जाता है जो कि एक सदस्य एक वोट के बजाय कुछ कम या ज्यादा भी हो सकता है यह कोटा या मतदान अधिकार निम्नलिखित सूत्र से निर्धारित किया जाता है –
    - यह जीडीपी का भारित औसत है। (50 प्रतिशत भारांक)
    - जीडीपी खुलापन (आर्थिक नीतियों में उदारीकरण)। (30 प्रतिशत भारांक)
    - आर्थिक परिवर्तनशीलता। (15 प्रतिशत भारांक)
    - अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा भंडार। (15 प्रतिशत भारांक)

- सदस्य देशों की जीडीपी का मापन बाजार आधाति विनिमय दरों (60 प्रतिशत भारांक) एवं पीपीपी विनिमय दरों (40 प्रतिशत भारांक) पर आधारित मिश्रित जीडीपी के माध्यम से किया जाता है।

  ❖ विशेष आहरण अधिकार (SDRs) IMF खाता की एक इकाई है न कि एक मुद्रा।

    - SDR की मुद्रा कीमत का निर्धारण यूएस डॉलर में मूल्यों को जोड़कर किया जाता है, जो बाजार विनिमय दर, मुद्राओं की एक SDR बॉस्केट पर आधारित होता है।
    - मुद्राओं की SDR बॉस्केट में यूएस डॉलर, यूरो, जापानी येन, पौंड स्टर्लिंग एवं चीनी रॅन्मिन्बी (वर्ष 2016 में शामिल) हैं।
    - SDR मुद्रा के मूल्यों का दैनिक मूल्यांकन (अवकाश को छोड़कर या जिस दिन IMF व्यावसायिक गतिविधियों के लिये बंद हो) होता है एवं मूल्यांकन बास्केट की समीक्षा तथा इसका समायोजन प्रत्येक 5 वर्ष के अंतराल पर किया जाता है। कोटा (Quotas) को SDRs में इंगित किया गया है।
    - सदस्य देशों का मतदान अधिकार सीधे उनके कोटे से संबंधित होता है।
    - IMF प्रत्येक सदस्य देशों को अपनी मुद्रा के विनिमय मूल्य की निर्धारित प्रक्रिया को चुनने की अनुमति देता है। इसके लिये आवश्यक है कि सदस्य देश अपनी मुद्रा की कीमतों का आधार स्वर्ण से तय न करते हो और अन्य सदस्यों को मुद्रा कीमतों के निर्धारण की सूचना विधि पूर्वक करते हो।

भारत और IMF

- मुद्रा के क्षेत्र में IMF द्वारा विनियमित अंतर्राष्ट्रीय विनियमन ने भारतीय अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विस्तार में निश्चित रूप से सहयोग किया है। भारत इन लाभदायक परिणामों से इस हद तक लाभान्वित हुआ है।
- स्वतंत्रता और विभाजन के बाद की अवधि में भारत में अत्यधिक संकटपूर्ण आर्थिक स्थिति थी जिससे भारत में गंभीर भुगतान संतुलन घाटे की स्थिति उत्पन्न हुई। भारत का भुगतान घाटा विशेष तौर कठोर विनिमय दर वाले देशों के साथ अधिक गंभीर स्थिति में था। इसके अतिरिक्त वर्ष 1965 एवं 1971 के भारत–पाकिस्तान संघर्ष के बाद उत्पन्न वित्तीय कठिनाईयों से निपटने में IMF ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।
- इन परिस्थितियों में भारत को अपने आयात, खाद्य, तेल एवं उर्वरक के कीमतों में तेजी से वृद्धि के मद्देनजर IMF से कर्ज लेना पड़ा था। उदाहरणस्वरुप IMF की स्थापना से 31 मार्च, 1971 तक भारत ने 817.5 करोड़ रूपए के मूल्यों की विदेशी मुद्रा का सहयोग कर्ज के रूप में प्राप्त कर उसका भुगतान किया गया।
- स्वतंत्रता के पश्चात् तीव्र और समावेशी आर्थिक विकास के लिये भारत को संचार विकास, भूमि सुधार योजनाओं एवं अपने विभिन्न नदी परियोजनाओं के लिये अधिक विदेशी पूंजी की जरूरत थी। बड़े पैमाने पर आवश्यक पूंजी की प्राप्ति निजी विदेशी निवेशकों से संभव नहीं थी ऐसी परिस्थितियों में भारत द्वारा आवश्यक पूंजी की प्राप्ति अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (अर्थात् विश्व बैंक) से कर्ज के रूप में की गई थी।

- उपरोक्त आर्थिक संकट की स्थिति के अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा वर्ष 1981 में भुगतान–संतुलन के चालू खाते की स्थिति में भी बड़े पैमाने पर लगभग 5000 करोड़ रूपए का कर्ज लिया गया था।

- इस प्रकार भारत ने IMF की विशिष्ट सुविधाओं (Services of Specialists of the IMF) का लाभ उठाया जिसका उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था का समावेशी आर्थिक विकास था जिससे आर्थिक विकास के साथ लोगों के सामाजिक स्तर में सुधार कर मानव विकास की स्थिति प्राप्त करना था।

- अक्तूबर 1973 से तेल कीमतों में वृद्धि के कारण भारत के भुगतान–संतुलन की स्थिति असंतुलित हो गई तब इस समस्या से निपटने हेतु IMF द्वारा गठित एक विशेष कोष के माध्यम से तेल की सुविधा का प्रयोग किया गया था।

- वर्ष 1990 के दशक के प्रारंभ में जब भारत में मात्र दो सप्ताह का सुरक्षित विदेशी मुद्रा कोष बचा (आमतौर पर विदेशी मुद्रा कोष का 'सुरक्षित न्यूनतम भंडार' तीन महीने के बराबर होता है), भारत सरकार ने तत्काल प्रतिक्रिया करते हुए जमानत (सुरक्षा) के रूप में भारतीय गोल्ड रिजर्व से 67 टन सोने के प्रयोग से अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से 2.2 बिलियन डॉलर का आपातकालीन ऋण प्राप्त किया।

- भारत ने IMF से आने वाले वर्षों में विभिन्न संरचनात्मक सुधार का वादा किया जैसे – भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन, बजट और राजकोषीय घाटे को कम करना, सरकारी खर्च एवं सब्सिडी में कमी करना, आयात उदारीकरण, औद्योगिक नीति में सुधार, व्यापार नीति में सुधार, बैंकिंग सुधार, वित्तीय क्षेत्र में सुधार, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का निजीकरण आदि।

- वर्तमान में भारत ने कोष के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर में एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार भारत के कोष के नीतियों के निर्धारण में एक विश्वसनीय भूमिका निभाई थी। इसने अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की प्रतिष्ठा को बढ़ावा मिला है।

IMF की आलोचना

- IMF की संरचना एक विवाद का क्षेत्र हैं क्योंकि इसमें यूरोप एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के पास असंतुलित मतदान और कोटा अधिकार है।

- ऋण प्राप्त करने हेतु निर्धारित मानक बहुत ही अंतर्वेधी (Intrusive) है और वे ऋण प्राप्तकर्त्ता देश की आर्थिक एवं राजनीतिक संप्रभुता को प्रभावित करते हैं। मानक से अभिप्राय अधिक सशक्त शर्तों से हैं जो अक्सर ऋण को पॉलिसी टूल (policy tool) में बदल देते हैं। ये राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों, बैंकिंग विनियमन, सरकारी घाटे और पेंशन नीतियों जैसे मुद्दों को शामिल करते हैं। IMF देशों की विशिष्ट विशेषताओं को समझें बिना ही उन पर नीतियों को लागू करते हैं जिससे उपरोक्त देशों द्वारा उन नीतियों को पूरा करना मुश्किल हो जाता है।

- नीतियों को एक उपयुक्त क्रम में लागू करने की बजाय एक ही बार में लागू किया गया। IMF यह मांग करता है कि देश तेजी से सरकारी सेवाओं का निजीकरण करें। इसके परिणामस्वरूप मुक्त बाजार में एक अनुशासनहीनता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

IMF में सुधार

- **IMF में कोटा :** एक सदस्य देश वार्षिक तौर पर अपने कोटा का 200 प्रतिशत तक एवं संचित रूप में 600 प्रतिशत का उधार ले सकता है।

- IMF कोटा का सामान्य अर्थ IMF के अंतर्गत वोट देने के अधिकार एवं ऋण लेने की अनुमति से होता हैं। लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि IMF कोटे को इस प्रकार तैयार किया गया है कि USA का कोटा 17.7 प्रतिशत है जो विभिन्न देशों के संचयी से भी अधिक है। G7 समूह 40 प्रतिशत से अधिक कोटा रखता है हालॉकि IMF में भारत और रूस जैसे देशों के पास केवल 2.5 प्रतिशत का ही कोटा है।

- IMF के साथ असंतोष के कारण, ब्रिक्स देशों ने एक नया संगठन स्थापित किया है जिसे ब्रिक्स बैंक कहते हैं। इसकी स्थापना का उद्देश्य विश्व बैंक एवं IMF के प्रभाव को कम करना एवं विश्व में अपनी स्थिति को मजबूत करना है। ब्रिक्स देश विश्व जीडीपी के 1/5 और विश्व जनसंख्या के 2/5 के लिये जिम्मेदार हैं।

- वर्तमान कोटा प्रणाली में कोई भी सुधार असंभव है क्योंकि इसके लिये कुल वोट के 85 प्रतिशत से अधिक की आवश्यकता है। असंतुलित मतदान अधिकार के कारण सुधार की भी बहुत ही सीमित संभावना है क्योंकि अधिक मतदान क्षमता वाले देशों द्वारा अपने विशेषाधिकारों का सीमित या कम से कम करने का कोई भी व्यावहारिक प्रयास नहीं किया जा रहा है।

- बोर्ड ऑफ गवर्नर द्वारा अनुमोदित कोटा सुधार 2010 को विलंब के साथ वर्ष 2016 में लागू किया गया था जिसका कारण अमेरिकी प्रतिबद्धता का अभाव था।

- IMF का संयुक्त कोटा (या वे देश जो योगदान देते हैं) 238.5 बिलियन SDR (लगभग 329 बिलियन डॉलर) से बढ़कर 477 बिलियन SDR (लगभग 659 बिलियन डॉलर) हो गया है। विकासशील देशों के लिये इसमें 6 प्रतिशत कोटा शेयर की वृद्धि हुई है जिससे विकसित देशों के कोटे में 6 प्रतिशत शेयर में कमी हुई हैं।

- **अधिक प्रतिनिधित्व वाला कार्यकारी बोर्ड :** कोटा सुधार 2010 में अनुबंध की शर्तों हेतु (Articles of Agreement) एक संशोधन भी शामिल किया गया जिसने सभी निर्वाचित कार्यकारी बोर्ड की स्थापना की, जो एक और अधिक प्रतिनिधित्व कार्यकारी बोर्ड की सुविधा देता है।

- 15वें सामान्य कोटा समीक्षा (प्रक्रिया में) कोष के संसाधनों या स्रोत को प्रदान करते हैं और शासन सुधार की प्रक्रिया को जारी रखता है।

IMF और विश्व बैंक की तुलना

- विश्व बैंक नीति सुधार कार्यक्रमों और परियोजनाओं के लिये ऋण देता है, जबकि अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष केवल नीति सुधार कार्यक्रमों के लिये ही ऋण देता है।

- इन दोनों संस्थाओं में एक अंतर यह भी है कि विश्व बैंक केवल विकासशील देशों को ऋण देता है, जबकि अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के संसाधनों का इस्तेमाल निर्धन राष्ट्रों के साथ–साथ धनी देश भी कर सकते हैं।

IMF द्वारा जारी की जाने वाली रिपोर्ट्स

- IMF द्वारा आमतौर पर एक वर्ष में दो बार वर्ल्ड इकॉनोमिक आउटलुक रिपोर्ट प्रकाशित की जाती है। इस रिपोर्ट में समष्टि अर्थशास्त्र के विभिन्न पहलुओं जैसे – आर्थिक गतिविधि, रोजगार मुद्रास्फीति, कीमत, विदेशी मुद्रा और वित्तीय बाजार, बाहरी भुगतान, वित्त पोषण तथा ऋण पर विचार करते हुए अर्थव्यवस्थाओं के विकास का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है।
- ग्लोबल फाइनेंशियल स्टैबिलिटी रिपोर्ट (Global Financial Stability Report - GFSR) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) की एक अर्द्धवार्षिक रिपोर्ट है जो वित्तीय बाजारों की स्थिरता और उभरते बाजारों के वित्तपोषण का आंकलन करती है। सामान्यतः यह रिपोर्ट प्रति वर्ष दो बार अप्रैल और अक्टूबर में जारी की जाती है।
- IMF द्वारा प्रकाशित की जाने वाली राजकोषीय निगरानी रिपोर्ट (Fiscal Monitor Report) वैश्विक वित्तीय संकट के बाद राजकोषीय चुनौतियों से निपटने हेतु मानकों की रूपरेखा तैयार करती है।

IMF पदाधिकारी

- वर्तमान में बुल्गारिया की अर्थशास्त्री क्रिस्टालिना जार्वीवा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) की प्रमुख हैं, यह पहला मौका है जब किसी उभरती अर्थव्यवस्था से IFM के प्रमुख का चयन हुआ है।
- जार्वीवा ने क्रिस्टीन लेगार्ड का स्थान लिया था, जिन्हें अगले पाँच साल के लिये नियुक्त किया गया है वह इससे पहले विश्व बैंक की मुख्य कार्यकारी अधिकारी थीं।

कोविड–19 महामारी के संदर्भ में IMF की भूमिका

- वैश्विक महामारी COVID-19 ने अंतर्राष्ट्रीय ऋण की माँग में वृद्धि करते हुए उसे नए स्तर पर पहुँचा दिया है। वर्ष 2019 के अंत की तुलना में वर्ष 2021 तक उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में ऋण अनुपात सकल घरेलू उत्पाद का 20 प्रतिशत, उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में सकल घरेलू उत्पाद का 10 प्रतिशत और निम्न – आय वाले देशों में लगभग 7 प्रतिशत तक बढ़ने का अनुमान है।

- **विकासशील एवं निम्न आय वाले देशों की स्थिति :**

  ❖ विकासशील और निम्न आय वाले देशों की आबादी कुल वैश्विक आबादी की 70 प्रतिशत है और वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद में इनकी हिस्सेदारी करीब 33 प्रतिशत है। COVID-19 महामारी के कारण वैश्विक गरीबी अपने पाँव पसार रही है।

  ❖ विश्व खाद्य कार्यक्रम के अनुसार, यह महामारी भूख से पीड़ित लोगों की संख्या में करीब दोगुनी वृद्धि (26.5 करोड़) कर सकती है। इसके अलावा आर्थिक सहयोग एवं आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (Organisation for Economic Cooperation and Development - OECD) की नीतिगत रिपोर्ट के अनुसार, इस वैश्विक आर्थिक संकट के चलते वर्ष 2019 के स्तर की तुलना में वर्ष 2020 में विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में बाह्य निजी वित्तपोषण 700 अरब यूएस डॉलर तक सिकुड़ सकता है।

- ❖ अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund - IMF) के अनुसार, विकासशील देशों को महामारी और इसके दुष्प्रभावों से निपटने के लिये तुरंत 2.5 खरब (ट्रिलियन) अमेरिकी डॉलर की आवश्यकता है।

- ❖ अंकटाड (United Nations Conference on Trade and Development - UNCTAD) के महासचिव मुखिसा कित्युई (Mukhisa Kituyi) के अनुसार, विकाशसील देशों पर कर्ज का भुगतान बढ़ रहा है, क्योंकि इन देशों की अर्थव्यवस्थाओं को कोविड–19 महामारी से उत्पन्न वित्तीय कठिनाइयों के कारण भारी नुकसान हुआ है, ऐसे में इस बढ़ते वित्तीय दबाव को दूर करने के लिये अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को तुरंत और कदम उठाने चाहिये।

- **तत्काल कार्यवाही वाले क्षेत्र :**

  - ❖ ऋण सेवा निलंबन पहल (The Debt Service Suspension Initiative) : सर्वप्रथम वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ऋण सेवा निलंबन पहल को वर्ष 2021 तक बढ़ाया जाना चाहिये ताकि अनिश्चित ऋण समस्याओं से निपटने के लिये प्रोत्साहन मिल सके। ऋण सेवा निलंबन पहल में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक को भी शामिल करना चाहिये जिससे ऋण सुभेद्यताओं को कम किया जा सके।

  - ❖ ऋण सुभेद्य देशों का पुनर्गठन : ऋण सुभेद्य देशों में ऋण प्रबंधन और विकास को बहाल करने के उपायों के संयोजन के माध्यम से तत्काल प्रयास करने होंगे। जिन देशों में ऋण प्रबंधन की व्यवस्था अस्थिर है उनका पुनर्गठन किया जाना चाहिये। ऋण प्रबंधन के लिये निजी क्षेत्र के दावों को भी शामिल किया जाना चाहिये।

  - ❖ ऋण का मुद्रीकरण : सभी देशों की सरकारों को प्रत्यक्ष रूप से ऋण का मुद्रीकरण करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से व्यय और वृद्धि की लागत कम करने में मदद मिलेगी। चूँकि माँग में कमी बनी हुई है इसलिये इससे मुद्रास्फीति में वृद्धि नहीं होगी।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- वी० श्रीनिवास, इंडियाज रिलेशनस विध दी इन्टरनेशनल मोनिटरी फन्ड, नई दिल्ली, विज बुक्स, 2019
- जोनाथन ई० स्टेनफोर्ड, इन्टरनेशनल मोनिटरी फण्ड : फगंसन्जस एण्ड रोल इन दी इन्टरनेशनल इकोनोमी, नई दिल्ली, स्कोलर च्योयस, 2015
- जैम्स वीरलेंड, दी आई०एम०एफ० एण्ड इकोनोमिक डवल्पमैन्ट, केम्बिरीज यूनिर्वसिटी प्रैस, 2005

कुछ प्रश्न

- अर्न्तराष्ट्रीय मुद्राकोष के कार्यों तथा भूमिका का वर्णन करो।
- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक में क्या अन्तर है ? वर्णन करो।

अध्याय – 5

भारत में वित्त संघवाद

(Fiscal Federalism in India)

रूपरेखा

- अर्थ
- संवैधानिक प्रावधान
- सरकारिया आयोग रिर्पोट
- केन्द्र तथा राज्य तनाव क्षेत्र
- नए आंबटन फार्मूले की तलाश
- कुछ उपयोगी पुस्तकें
- कुछ संभावित प्रश्न

भारत में वित्त संघवाद (Fiscal Federalism in India)

संघीय शासन–प्रणाली में केन्द्र और राज्यों के बीच न केवल विधायी और प्रशासनिक शक्तियों का विभाजन होता है बल्कि वित्तीय शक्तियों का भी विभाजन होता है। वित्तीय स्त्रोतों के विभाजन को लेकर केन्द्र और राज्यों के बीच मतभेद पैदा होना स्वाभाविक भी है।

26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान के लागू होने के साथ–साथ देश में गणराज्य की स्थापना हुई। इस संविधान के अध्याय 12 में वर्णित अनुच्छेद (264 से 300) में केन्द्र और राज्य के वित्तीय स्त्रोतों का प्रावधान है। संविधान में यह व्यवस्था की गई कि भारत के राष्ट्रपति की आज्ञा से प्रत्येक पांच वर्ष के बाद एक वित्तीय आयोग की स्थापना की जायेगी, जिसका सम्बन्ध पंचवर्षीय योजनाओं से होगा और जो समय–समय पर राज्यों व केन्द्र के मध्य वित्तीय सम्बन्धों पर अपने सुझाव देगा।

संविधान के अन्तर्गत स्त्रोतों के विभाजन की विशेषताएं

(Characteristics of Division of Sources Under Constitution)

यह निश्चय किया गया है कि संघ सरकार व राज्य सरकारों की आय पृथक् – पृथक् संचित कोषों में जमा होगी। संघ सरकार की समस्त आय को भारत के संचित कोष में तथा राज्य की सारी आय को 'राज्य के संचित कोष' में जमा किया जाएगा। संविधान के अन्तर्गत आय के स्त्रोतों के विवरण के संबंध में मुख्य विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :

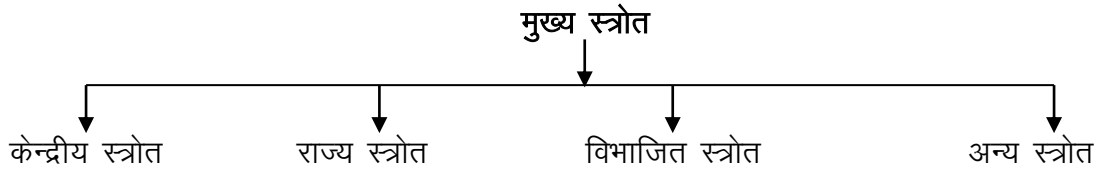

1 **केन्द्रीय स्त्रोत :** केन्द्र अपनी आय के स्त्रोत में पूर्णरूपेण स्वतंत्र है। इसमें उन स्त्रोतों को रखा गया है जिन पर पूण अधिकार केन्द्र सरकार का रहेगा जैसे रेलवे, डाक – तार, प्रसारण, संचार, सीमा कर, निगम कर, कंपनियों की पूँजी पर कर, उत्पादन शुल्क, मुद्रा व विदेशी विनिमय, निगम कर, अंश बाजार के सौदों पर मुद्रांक कर से भिन्न कर, चैक, हुण्डियों आदि पर मुद्रांक कर, सम्पदा पर कर, विदेशी ऋण, संगठित लाटरियाँ, संघ सरकार की सम्पत्ति, डाकखाना बचत बैंक, संघ का लोक ऋण, भारत का रिजर्व बैंक आदि।

2 **राज्य स्त्रोत :** इस स्त्रोत से प्राप्त आय का उपयोग राज्य सरकारों द्वारा ही किया जा सकेगा। इसमें मुख्यतया कृषि आय कर, मालगुजारी, विक्रय कर, मनोरंजन कर, भू–राजस्व, भूमि व भवनों पर कर, खनिज अधिकार पर कर, पूँजी कर, मादक द्रव्य पर उत्पादन कर, विद्युत सामग्री के उपभोग पर कर, विज्ञापनों पर कर, वाहनों पर कर, सड़कों पर यात्रा कर, चुँगी कर, पथ कर आदि प्रमुख हैं।

3 **विभाजित स्त्रोत :** इसमें कर लगाने व वसूल करने के अधिकार प्राप्त होंगे, परन्तु प्राप्त सम्पूर्ण आय वित्त सिफारिशों के आधार पर निर्धारित अनुपात में राज्यों के मध्य विभाजित कर दी जायेगी तथा केन्द्र कुछ भी अंश अपने पास नहीं रखेगा। जैसे गैर–कृषि आय पर लगे कर, उत्पादन कर, भाड़े पर कर, विभाजन पर कर आदि।

4 **केन्द्र द्वारा लगाए व वसूल किए गए, परन्तु राज्यों को विभाजित स्त्रोत :** इसमें वे कर सम्मिलित किये जाते हैं, जो केन्द्र द्वारा वसूल किए जाते हैं, परन्तु उनकी आय राज्यों को विभाजित कर दी जाती है जैसे कि सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर, बिलों, प्रतिज्ञा–पत्रों, चैक व बीमा पॉलिसी पर स्टांप कर, माल व यात्रियों पर सीमांत कर, रेलवे, भाड़े पर कर आदि।

5 **अन्य स्त्रोत :** इसमें निम्न स्त्रोतों को सम्मिलित करते हैं :

- **केन्द्र द्वारा लगाए व राज्य द्वारा वसूली :** कुछ कर केन्द्र द्वारा लगाए जाते हैं, परन्तु उन्हें राज्य सरकारें वसूल करेंगी और यह उन्हीं की आय के स्त्रोत माने जायेंगे। जैसे स्टाम्प कर, सौन्दर्य प्रसाधन पर लगा कर आदि।

- **केन्द्र द्वारा लगाए व वसूल वाली परन्तु विभाजन योग्य मदें :** धारा 270 के अन्तर्गत कुछ करों को लगाने व वसूल करने का अधिकार केन्द्र सरकार को होगा, परन्तु उसकी शुद्ध आय का विभाजन केन्द्र एवं राज्य सरकारों के मध्य वित्तीय आयोग की सिफारिशों के आधार पर होगा। उदाहरणार्थ, आय कर एवं उत्पादन कर।

- **अधिभार (Surcharge) :** केन्द्र सरकार आय कर एवं उत्पादन करों पर अधिभार लगा सकती है जो विभाजनीय नहीं होगा और इसकी समस्त आय पर केन्द्रीय सरकार का अधिकार होगा।

- **व्यवसाय कर :** राज्य सरकार व्यवसाय कर लगा सकती है जिसकी अधिकतम सीमा 850 रूपये वार्षिक तक हो सकती है। व्यवसाय कर व्यक्ति आय के आधार पर भिन्न–भिन्न हो सकता है।

- **राजनीतिक एवं आर्थिक समानता :** संविधान द्वारा विभिन्न राज्यों के मध्य राजनीतिक एवं आर्थिक समानता लाने के प्रयास किये जायेंगे।

- **पिछडे राज्यों का विकास :** संघ सरकार का उद्देश्य पिछड़े राज्यों को आर्थिक विकास के अवसर प्रदान करना है जिससे विषमताएँ समाप्त की जा सकें।

- **अनुदान की व्यवस्था** : संविधान के अनुच्छेद 273 के अनुसार यह व्यवस्था की गयी है कि जूट का निर्यात करने वाले राज्यों को संचित निधि से अनुदान मिलेगा।
- **अनुसूचित जातियों का कल्याण** : जिन राज्यों में अनुसूचित जातियों के कल्याणार्थ योजनाएँ बनायी जाती हैं उनके लिए केन्द्र सरकार से वित्तीय सहायता प्राप्त होगी।
- **राज्य के हितों की सुरक्षा** : संसद द्वारा किसी वित्तीय मामले पर अधिनियम बनाने पर राज्य के हित जुड़े हों तो राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति प्राप्त करनी होगी जिससे राज्य के हितों को सुरक्षित रखा जा सके।
- **प्रशासनिक सुविधा व समन्वय** : राज्य वित्त संबंधी विषयों पर प्रशासनिक सुविधा एवं समन्वय की दृष्टि से संविधान में व्यापक रूप में व्यवस्थाएँ की गई हैं।
- **विशेष व्यवस्थाएँ** : संविधान में कुछ एक विशेष व्यवस्थाएँ की गयी हैं, जिससे केन्द्र सरकार की आय एवं सम्पत्ति पर राज्य सरकारों द्वारा कर नहीं लगाया जा सकता। ऐसा करने से केन्द्र के स्त्रोतों को पूर्ण रुप से सुरक्षित रखने की व्यवस्था की गयी है।
- **वित्त आयोग** : केन्द्र व राज्यों के मध्य वित्तीय संबंधों को मधुर बनाने हेतु प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद वित्त आयोग की स्थापना की जाती है जिसमें एक सभापति के अतिरिक्त चार अन्य सदस्य भी होते हैं। यह आयोग निम्न विषयों पर राष्ट्रपति को सुझाव देता है :
  - करों की आय को केन्द्र व राज्य के मध्य विभाजित करने की व्यवस्था,
  - राज्यों को दिए गए सहायता अनुदानों का निर्धारण करना,
  - वित्त व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने हेतु अन्य मामलों पर परामर्श देना।
- **ऋण** : संविधान की धारा 293(2) के अनुसार केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकारों को ऋण की गारंटी दे सकती है तथा ऋण भी प्रदान कर सकती है। यह ऋण कोष से दिए जाते हैं।
- **वित्तीय आपातकालीन शक्तियाँ** : राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद 360 के अनुसार वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है। इस स्थिति में राष्ट्रपति उस क्षेत्र के सरकारी कर्मचारी और न्यायाधीश के वेतन भत्तों में कमी कर सकता है।

सरकारिया आयोग की रिपोर्ट, 1987

(Report Sarkaria Commission, 1987)

केन्द्र राज्य संबंधों में बढ़ते हुए विवादों, तनावों एवं असन्तुलन के कारण इसकी पुनः समीक्षा करना आवश्यक हो गया था। इसी संदर्भ में श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय के सेवा–निवृत्त न्यायमूर्ति आर०एस० सरकारिया के नेतृत्व में तीन सदस्यीय आयोग की नियुक्ति की घोषणा संसद में की थी। इस आयोग के दो अन्य सदस्य श्री बी० शिवारामन एवं डॉ० एस०एन० सेन थे।

इस आयोग ने सभी राजनीतिक दलों, संविधानशास्त्रियों, राज्य सरकारों एवं विशिष्ट विद्वानों से विचार–विमर्श कर एक सर्वसम्मत रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसी रिपोर्ट को 'सरकारिया आयोग रिपोर्ट' कहा जाता है। संक्षेप में, आयोग ने निम्नलिखित सिफारिशें प्रस्तावित की हैं :

1 आयोग ने केन्द्रीकरण की बढ़ती हुई प्रवृत्ति की निन्दा की है। उसका मत है कि नियोजन प्रक्रिया में विकेन्द्रीकरण हो।

2 आयोग ने शक्तिशाली एवं सुदृढ़ केन्द्र की स्थापना पर बल दिया है। आयोग का मत है कि केन्द्रीय सरकार राज्यों के विशेषाधिकारों का अतिक्रमण कर राज्य –सूची के विषयों को समवर्ती सूची में शामिल कर रहा है।

3 आयोग ने राज्यों में संवैधानिक विफलता की स्थिति में अनुच्छेद 356 के मनमाने ढंग से दुरुपयोग की कड़ी निन्दा की है।

4 आयोग ने राज्य के संबंध में सिफारिशें इस प्रकार की हैं कि :

- राज्यपाल के पद पर केन्द्र में सत्तारुढ़ दल के सक्रिय राजनीतिज्ञों को नियुक्त न किया जाये।
- राज्यपाल की नियुक्ति से पूर्व उस राज्य के मुख्यमंत्री से परामर्श किया जाए। यदि आवश्यक हो तो इसके लिए संविधान के अनुच्छेद 155 को संशोधित किया जाए। आयोग का यह विचार है कि राष्ट्रपति राज्यपाल की नियुक्ति के संबंध में उपराष्ट्रपति एवं लोकसभा के अध्यक्ष से परामर्श कर सकता है।
- राज्यपाल का कार्यकाल, अतिविशिष्ट कारण के अतिरिक्त, राज्य में पाँच वर्ष से अधिक न हो।

5 आयोग ने स्थायी अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना का सुझाव दिया है। इस परिषद् का गठन संविधान के अनुच्छेद 263 के द्वारा राष्ट्रपति कर सकता है।

6 आयोग ने राष्ट्र–निर्माण में राज्यों की भूमिका को सराहा है। अतः उसका मत है कि केन्द्र एवं राज्यों में परस्पर विचार–विमर्श होना चाहिए।

7 आयोग की सिफारिश है कि संविधान में कोई भी मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।

8 अखिल भारतीय सेवाओं के सम्बन्ध में आयोग की सिफारिश है कि यान्त्रिकी, चिकित्सा एवं शिक्षा सेवाओं को अखिल भारतीय सेवा में जोड़ा जाये। आयोग ने इन सेवाओं में सुधार तथा कार्य–कुशलता बढ़ाने के संदर्भ में अनेक सुझाव दिये हैं।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि भारतीय संघीय व्यवस्था में अन्य संघीय देशों की अपेक्षा अधिक केन्द्रीकरण हैं; अर्थात् केन्द्र को अधिक शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। संकट काल में संघीय व्यवस्था एकात्मक शासन का रूप धारण कर लेती है। यह सैद्धान्तिक स्थिति है। व्यवहार में विगत 52 वर्षों के इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया है कि संविधान–निर्माताओं का उपर्युक्त उपबन्धों की व्यवस्था करना बुद्धिमत्तापूर्ण था। देश में विघटनकारी तत्व सक्रिय रहे हैं। अतः इन पर नियंत्रण अपेक्षित था। 52 वर्ष के इस काल में 1964 तक केन्द्रीय शासन काफी शक्तिशाली था। इन वर्षों में केन्द्र एवं राज्यों में कांग्रेस दल के मंत्रिमंडल पदारुढ़ थे। पं० नेहरु का असाधारण चुम्बकीय व्यक्तित्व केन्द्रीय शासन की सत्ता को अक्षुण्ण बनाये रखने में सहायक था। 1964 से 1972 तक केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति उलट गयी थी। राज्य अधिक शक्तिशाली हो गए थे। 1964 में पं० नेहरु के देहावसान के बाद कांग्रेस दल की सत्ता बिखर गयी। केन्द्रीय नेताओं का पहले की तरह एकछत्र नियन्त्रण न रहा। 1964 में श्री लालबहादुर शास्त्री एवं 1966 में श्रीमती गांधी को प्रधानमंत्री बनाने में कुछ राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने निर्णायक भूमिका निभायी थी। 1967 के निर्वाचनों में अनेक राज्यों में गैर–कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों की स्थापना हुई। कांग्रेस मंत्रिमण्डल वाले राज्यों में भी कांग्रेसी नेताओं में परस्पर विवाद थे। 'आया राम गया राम' की राजनीति ने राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न कर दी थी। 1971 में मध्यावधि निर्वाचनों के परिणाम ने इस स्थिति को बदल दिया। श्रीमती इन्दिरा गाँधी के नेतृत्व में

कांग्रेस को लोकसभा में दो–तिहाई बहुमत प्राप्त हुआ। 1972 में राज्यों के निर्वाचनों में कांग्रेस सत्तारुढ़ हुई और श्रीमती गाँधी के रुप में एक सबल एवं योग्य नेता के प्रादुर्भाव ने केन्द्रीय सत्ता को पुनः शक्तिशाली बना दिया।

संघीय शासन से संबंधित विगत वर्षों में परस्पर दो विरोधी शक्तियाँ सक्रिय रही हैं – एकल–प्रबल दलीय पद्धति तथा आर्थिक नियोजन। ये केन्द्रीकरण की दिशा में गतिशील प्रवृत्तियाँ हैं। आर्थिक नियोजन के कारण सम्पूर्ण देश की अर्थव्यवस्था को एक इकाई मानकर देश की योजनाओं का निर्माण किया जाता रहा है। एकल–प्रबल दलीय पद्धति के फलस्वरूप अधिकांशतः केन्द्र एवं राज्यों में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल सत्तारूढ़ रहे हैं; अतः दलीय अनुशासन के माध्यम से विघटनकारी तत्वों एवं प्रवृत्तियों पर प्रतिबन्ध रखा गया। इसमें दलीय नेताओं – नेहरु, लाल बहादुर शास्त्री एवं श्रीमती इन्दिरा गाँधी जैसे सबल एवं दृढ़ नेतृत्व की भूमिका निर्णायक रही। विकेन्द्रीकरण की दिशा में सक्रिय तत्व थे – भाषावाद एवं क्षेत्रीयता। भाषावार प्रान्तों एवं क्षेत्रीयता की प्रबल माँग ने केन्द्रीय शासन की शक्ति पर प्रतिबन्ध का कार्य किया है और केन्द्रीय शासन को बाध्य होकर भाषावार प्रान्तों (यथा – पंजाब, महाराष्ट्र एवं गुजरात आदि) का निर्माण करना पड़ा।

भारत में संघवाद 1950 की अपेक्षा आज कहीं अधिक वास्तविक रूप में है। संयुक्त राज्य अमरीका, कनाड़ा एवं आस्ट्रेलिया को जो विद्वान् संघीय शासन का यथार्थ रुप मानते हैं, उनकी दृष्टि भारत एक अर्द्धसंघीय या एकात्मकता की तरफ झुका हुआ संघ है, लेकिन संघवाद की उपर्युक्त धारणा आज पूर्णतः मान्य नहीं है। संघवाद के स्वरुप में परिवर्तन हुआ है और सभी संघीय देशों में केन्द्रीय शासन स्वयं साध्य नहीं है अपितु सुशासन का एक साधन है। ऐसी स्थिति में संघीय शासन की कोई ऐसी परिभाषा मान्य नहीं हो सकती जो गतिशील न हो। भारतीय संघ आधुनिक संघवाद की सहयोगी प्रवृत्ति पर आधारित है। उसका स्वरूप ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम है। भारत में संघीय एकात्मक तत्वों के समावेश का मूल कारण राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता का अक्षुण्ण रखना है। एपिलबी जैसे अमरीकी विद्वानों की तो यह धारणा है कि भारत में केन्द्रीय शासन कमजोर है और ''कोई भी अन्य महान राष्ट्रीय शासन शासकीय कार्यक्रमों को पूर्ण करने के लिए राज्य–शासनों पर उतना निर्भर नहीं जितना कि भारतीय केन्द्रीय शासन।'' भारत में अमरीकी संघीय जैसे कोई केन्द्रीय सेवा नहीं है। स्पष्ट है कि संविधान–निर्माताओं ने विश्व के सभी प्रमुख संघीय संविधानों के व्यावहारिक रुप से शिक्षा ग्रहण करते हुए एवं राष्ट्रीय एकीकरण को ध्यान में रखकर एकात्मक तत्वों का समावेश किया है। डॉ० अम्बेडकर के अनुसार, ''संविधान में राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं जैसी है।'' संविधान लक्ष्य के प्रतिकूल यह मत भ्रामक धारणा पर आधारित है। विगत 52 वर्षों के इतिहास से यह स्पष्ट है कि केन्द्र को शक्तिशाली न बनाया गया होता तो राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता भंग हो गयी होती। देश की राजनीति में एक ऐसी अन्तःधारा प्रवाहित है जो अखण्डता की पक्षधर है। फिर भी, आवश्यकता इस बात की है कि राज्यों के प्रति जहाँ केन्द्र का दृष्टिकोण उदार एवं विस्तृत होना चाहिए वहीं राज्यों का दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं होना चाहिए तथा उन्हें केन्द्र के सहयोगी के रूप में कार्य करना चाहिए।

केन्द्र व राज्यों के तनाव क्षेत्र (Tension Fields of Centre and State)

संविधान लागू होने से प्रारम्भिक वर्षों में केन्द्र और राज्यों के पारस्परिक संबंध मधुर थे, लेकिन समय के साथ ऐसे अनेक प्रशासनिक मुद्दे उभरे जिन्होंने केन्द्र और राज्यों के मतभेदों को जन्म दिया। 1967 के चतुर्थ आम–चुनाव के पूर्व केन्द्र और राज्यों के पारस्परिक संबंध अत्यन्त सहयोगपूर्ण थे। 1952 से लेकर 1967 तक के काल में देश के राजनीतिक परिदृश्य पर कांग्रेस का प्रभुत्व था। केन्द्र और राज्यों के विवाद को कांग्रेस का अन्दरुनी मामला समझा जाता था। अगर कोई विवाद का विषय उभरता था तो उसे पारिवारिक कलह मानकर हल कर लिया जाता था। नेहरु जैसे अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के नेता के आगे कोई सिर उठाने की कोशिश नहीं कर सकता था। फिर भी राज्यों के

कुछ दबंग और शक्तिशाली मुख्यमंत्री कभी–कभी अपनी बातों पर अड़ जाया करते थे। पश्चिम बंगाल के तात्कालिक मुख्यमंत्री डॉ० बी०सी० राय ने 'दामोदर घाटी कारपोरेशन' के मामले में बहुत सख्त रवैया अख्तियार किया था।

1967 के आम चुनावों ने भारत के स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक इतिहास को एक नया मोड़ दिया। संघीय प्रणाली का क्रियान्वयन 'एक दलीय प्रभुत्व ढांचे' (One Party Dominant Framework) की बजाय 'बहुदलीय प्रतियोगी राजनीति' (Multi Party Competitive Politics) के ढांचे के रूप में होने लगा। 1967 के आम चुनावों के बाद कांग्रेस दल के दीर्घकाल से चले आ रहे राजनीतिक एकाधिकार समाप्त हुए और अनेक राज्यों में गैर–कांग्रेसी दलों की संविद सरकारें बनीं। गैर–कांग्रेसी सरकारें केन्द्र में सत्तारूढ़ कांग्रेस की सरकार को अविश्वास की दृष्टि से देखने लगीं। इसी कालखण्ड में कई क्षेत्रीय दलों का अभ्युदय हुआ। गैर–कांग्रेसी दलों के मुख्यमंत्री को ऐसा महसूस हुआ कि केन्द्र के विरुद्ध शिकायतें दर्ज कराने लगे। परिणामस्वरुप एक ऐसा अविश्वास का वातावरण बना जिसके केन्द्र और राज्यों के बीच तनाव, विवाद और मतभेद के युग का सूत्रपात किया। संक्षेप में, केन्द्र तथा राज्य के बीच टकराव के प्रशासनिक मुद्दे निम्न रहे जो आज भी यथावत हैं।

1 **राज्यपाल का पद :** राज्यपाल राज्य का संवैधानिक कार्यकारी है। 1967 के आम चुनावों के बाद राज्यपालों के अधिकार क्षेत्र, नियुक्ति की प्रक्रिया को लेकर केन्द्र और राज्यों के बीच टकराव की शुरूआत हुई। गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारें बराबर यह आरोप लगाती रहीं कि केन्द्र राज्यपालों के माध्यम से उनकी सरकारों को बर्खास्त करने में लगा हुआ है। गैर–कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों की शिकायत थी कि उनके राज्य में राज्यपालों की नियुक्ति करते समय केन्द्र इस परम्परा का पालन नहीं कर रहा है कि मुख्यमंत्री से परामर्श लिया जाए। कुछ राज्यपालों ने तो लोकतांत्रिक परम्पराओं का भी उल्लंघन किया। उन्होंने केन्द्र सरकार के एजेण्ट की भूमिका का निर्वाह करना ही अपना कर्तव्य समझ लिया। पश्चिम बंगाल के तात्कालिक राज्यपाल धर्मवीर अपनी भूमिका को लेकर इतना विवादास्पद बने कि उन्हें स्थानान्तरित करना पड़ा। राज्यपाल की भूमिका को लेकर आज भी केन्द्र और राज्यों के मध्य टकराव होते रहते हैं। 1993 के मीनी आम चुनावों के दौरान भी राजस्थान के राज्यपाल बलिराम भगत और मुख्यमंत्री भैरों सिंह शेखावत के बीच तनाव हुआ था।

2 **नौकरशाही :** नौकरशाही दूसरा प्रशासनिक विषय है जिस पर केन्द्र तथ राज्यों के बीच मतभेद दिखलायी देते हैं। भारत में अखिल भारतीय सेवाओं के माध्यम से संघ सरकार राज्यों पर नियंत्रण रखती हैं। संविधान में संघ तथा राज्य सरकारों के लिए अलग–अलग सेवाओं की व्यवस्था की गयी है। परन्तु ब्रिटिश शासन से विरासत में हमने एकीकृत उच्च प्रशासनिक सेवाओं की पद्धति भी प्राप्त की है तदनुसार अखिल भारतीय सेवाओं के कर्मचारी संघ तथा राज्य दोनों जगह कार्य करते हैं। संविधान में यह व्यवस्था है कि भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा संघ और राज्यों में समान रुप से कार्य करेंगी। चतुर्थ आम चुनाव के बाद नौकरशाही के संबंध में दो प्रश्न सामने आये : पहला प्रश्न यह था कि नौकरशाही गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारों की नीतियों का क्रियान्वयन उसी उत्साह तथा प्रतिबद्धता से कर पायेगी, जिस उत्साह से अब तक कांग्रेस सरकार की नीतियों का क्रियान्वयन करती थी। यह प्रश्न वस्तुतः सरकारी कर्मचारियों की तटस्थता से जुड़ा हुआ है। कतिपय लोगों के मन में यह धारणा थी कि तीस वर्षों तक कांग्रेस दल के कार्यक्रमों और नीतियों को कार्यान्वित करने वाली नौकरशाही, तमिलनाडु में द्रमुक–अन्नाद्रमुक, केरल में साम्यवादी दल, पश्चिमी बंगाल में मार्क्सवादी–साम्यवादी दल और पंजाब में अकाली दल की नीतियों और कार्यक्रमों का सहजता से कैसे क्रियान्वयन कर पायेगी ? दूसरा सवाल नयी अखिल भारतीय सेवाओं के गठन से संबंधित था। कुछ गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारों ने आरोप लगाया कि अखिल भारतीय सेवाओं के

कर्मचारी केन्द्र के एजेंट होते हैं तथा वे राज्य की नीतियों का सही ढंग से क्रियान्वयन नहीं करते। कई राज्यों ने इन कारणों से अखिल भारतीय सेवाओं का विरोध किया कि अखिल भारतीय सेवाएँ राज्यों की स्वायत्तता को कम करती हैं। इन राज्यों का यह भी कहना रहा है कि अखिल भारतीय सेवाओं के कारण राज्य सेवाओं का विस्तार रुक जाता है तथा स्थानीय लोगों के उच्च सेवाओं में आने के अवसर कम हो जाते हैं। दरअसल, अखिल भारतीय सेवाएँ केन्द्र राज्य संबंधों में कटुता बढ़ाने का कारण इसलिए बन जाती हैं क्योंकि वे उनकी नियुक्ति, पदोन्नति और अनुशासनात्मक कार्यवाहियों के मामलों पर केन्द्रीय सरकार पर ही निर्भर करती हैं और राज्यों में उनके प्रति अपनत्व की भावना नहीं दिखलायी देती है।

3 **कानून–व्यवस्था के मसले पर राज्यों को केन्द्रीय निर्देश :** केन्द्र–राज्यों के प्रशासनिक संबंधों को केन्द्रीय रिजर्व पुलिस (सी०आर०पी०) को कतिपय राज्यों में तैनात किए जाने के सवाल ने विवादग्रस्त बनाया है। साधारणतया राज्य सरकारों के आग्रह पर ही केन्द्रीय सशस्त्र बलों को तैनात किया जाता है। लेकिन कुछ ऐसे भी अवसर आए जब राज्य सरकारों के विरोध किए जाने के बावजूद राष्ट्रीय सम्पत्ति की रक्षा के लिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस को राज्यों में तैनात किया गया। केन्द्रीय सरकार का कहना था कि राष्ट्रीय सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए स्थानीय पुलिस का पर्याप्त सहयोग नहीं मिल रहा है। लेकिन केरल, पश्चिमी बंगाल और तमिलनाडु की गैर–कांग्रेसी सरकारों ने केन्द्र के इस कदम का तीव्र विरोध किया था। 1967 से 1971 तक के कालखंड में केन्द्रीय रिजर्व बल का राज्यों में तैनाती किए जाने के सवाल पर केन्द्र तथा राज्यों के संबंधों में कटुता बढ़ी थी। केरल के तत्कालीन मुख्यमंत्री नम्बूद्रीपाद ने आरोप लगाया था कि राज्य में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस की तैनाती राज्य के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप है। केन्द्र सरकार ने इस स्थिति से निबटने के लिए 1976 में बयालिसवें संवैधानिक संशोधन के द्वारा संविधान में अनुच्छेद 257ए को जोड़ा। इस अनुच्छेद को जोड़ने के पीछे केन्द्र द्वारा यह तर्क दिया गया कि कतिपय राज्य सरकारें केन्द्रीय सम्पत्ति की रक्षा के लिए तैयार नहीं हैं, इसलिए केन्द्र सरकार केन्द्रीय रिजर्व पुलिस की तैनाती किसी भी राज्य में कर सकती है। आपातकाल के बाद जब केन्द्र में जनता पार्टी सत्तारुढ़ हुई तो उसने इस अनुच्छेद को हटा दिया लेकिन केन्द्रीय सम्पत्ति की रक्षा के लिए राज्यों में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस को तैनात किए जाने का केन्द्र सरकार के अधिकार को कायम रखा गया। इस प्रकार, केन्द्र का यह संवैधानिक अधिकार है कि वह राष्ट्रीय सम्पत्ति और केन्द्रीय प्रतिष्ठानों की रक्षा के लिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस को राज्यों में तैनात करे। परन्तु गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारें इस राज्य के आन्तरिक मामलों में केन्द्र का हस्तक्षेप कहकर केन्द्र–राज्य कटुता को जन्म देती है।

4 **आर्थिक नियोजन :** के० सन्थानम के अनुसार, नियोजन व्यवस्था ने नीति और वित्त संबंधी सभी मामलों में राज्यों की स्वायत्तता को एक छाया का रूप प्रदान कर दिया है। वस्तुतः नियोजन का संघवाद पर जो प्रभाव पड़ा है उससे केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन मिला है। भारत में सम्पूर्ण देश केन्द्र एवं राज्यों के लिए योजना निर्माण का कार्य योजना आयोग करता है। यह एक केन्द्रीय अभिकरण है जिसका निर्माण केन्द्रीय मंत्रिमंडल के एक प्रस्ताव के आधार पर हुआ है। इसमें प्रधानमंत्री, कुछ केन्द्रीय मंत्री तथा विशेषज्ञ होते हैं। इसमें राज्यों का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। यह नीतियों की एकरुपता पर बल देता है। यह आयोग समूचे देश के लिए यह मानकर योजना बनाता है कि मोटे तौर से भी राज्यों की परिस्थितियाँ समान हैं। नियोजन का संबंध शासन के समस्त विषयों से है, चाहे वह विषय संघ सूची का हो अथवा राज्य सूची का। राज्य सूची के विषय पर भी योजना आयोग का प्रभुत्व स्थापित हो गया है। परन्तु 1967 और उसके बाद के

राजनीतिक बदलाओं के कारण अब राज्य सरकारें योजना आयोग तथा केन्द्रीय सरकार के निर्णयों को उसी रुप में स्वीकार नहीं करतीं। अब अनेक राज्यों में केन्द्र की कांग्रेस सरकार से भिन्न दल की सरकारें होने के कारण केन्द्र की हर बात पर सहमति की प्रवृत्ति समाप्त हो रही है। परिणामस्वरूप आर्थिक नियोजन विवादास्पद बनता जाएगा। इस बात का आभास राष्ट्रीय विकास परिषद् की पिछली कुछ बैठकों में मिलता है।

वित्तीय तथा योजना संबंधी मामलों में केन्द्र – राज्य तनाव

सैद्धान्तिक दृष्टि से केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विवादों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। (1) संस्थागत विषय : इसके अन्तर्गत राज्यपाल का पद, नौकरशाही की भूमिका और संविधान के स्वरूप आदि मसले को लेकर उत्पन्न होने वाले विवाद। (2) कार्यात्मक विषय : कानून–व्यवस्था के अधिक्षेत्र के सवाल पर विवाद, अन्तर्राज्यीय विवाद; भाषा विवाद, राज्य सूची विषयों पर केन्द्रीय हस्तक्षेप आदि मसले इसमें शामिल हैं। (3) वित्तीय योजना संबंधी मसले : संघीय शासन व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों के मध्य वित्तीय और योजना संबंधी मसलों को लेकर मतभेद होना स्वाभाविक है। सन् 1967 के चतुर्थ आम चुनावों के बाद भारत में केन्द्र तथा राज्यों के बीच निम्नलिखित वित्तीय और योजना संबंधी विषयों को लेकर विवाद उभरे हैं :

1 **वित्तीय संसाधनों के वितरण की प्रचलित व्यवस्था :** वर्तमान में वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा वित्तीय संसाधनों के वितरण की प्रचलित व्यवस्था से अधिकांश राज्य सन्तुष्ट नहीं हैं। प्रचलित व्यवस्था में करों से प्राप्त होने वाली आय का प्रधान भाग केन्द्रीय कोष में जाता है और अपने लोक कल्याण एवं जनविकास संबंधी दायित्वों की वृद्धि के बावजूद भी राज्यों की आय के स्त्रोत अत्यन्त अल्प रखे गए हैं। इसके परिणामस्वरुप राज्यों की योजनाओं की सफलता बहुत कुछ केन्द्रीय अनुदान पर ही निर्भर हो जाती है। सन् 1967 के बाद राज्यों की यह शिकायत रही कि केन्द्र की सरकार उन राज्यों पर न केवल नियंत्रण रखती है बल्कि भेदभाव भी बरतती है।

इसके अतिरिक्त, राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान एवं सहायता बहुत ही कम है और वे अपने बढ़ते हुए दायित्वों का निर्वाह करने में असमर्थ हैं, राज्यों की योजना की आकृति तय करने का कोई निश्चित मानदण्ड नहीं है और वे राज्य; जिनकी आय के स्त्रोत ज्यादा हैं, महत्वाकांक्षी योजनाओं का निर्माण कर लेते हैं जिससे राज्यों की आय में विषमता बढ़ती है। केन्द्रीय सरकार आये दिन अपने कर्मचारियों के मंहगाई भत्तों में वृद्धि करती रहती है जिसका प्रतिकूल प्रभाव राज्यों के कोष पर पड़ता है और उन्हें भी अपने कर्मचारियों के भत्तों में वृद्धि करनी पड़ जाती है। राज्यों को दिए जाने वाले कतिपय अनुदान केन्द्रीय सरकार की स्वविवेकी शक्ति के अन्तर्गत आते हैं और राज्यों को बराबर यह शिकायत रही है कि केन्द्रीय सरकार इन अनुदानों का वितरण करते समय पक्षपातपूर्ण आचरण करती है।

2 **राज्यों का केन्द्र पर वित्तीय निर्भरता :** राज्य सरकारें वित्तीय साधनों के लिए केन्द्र सरकार पर बहुत अधिक निर्भर हो गयी है। राज्यों द्वारा केन्द्र सरकार से 1961 में 20 अरब 14 करोड़ रुपया ऋण लिया गया था। 10 साल बाद 1971 में यह धनराशि 63 अरब 65 करोड़ रुपए हो गयी। 1978 में यह धनराशि बढ़कर 1 ख्रब 11 अरब 69 करोड़ रुपए हो गयी। राज्यों की ऋणग्रस्तता अब इस स्थिति में पहुंच गयी है कि ऋण अदायगी तथा ब्याज की रकम मिलकर नयी केन्द्रीय सहायता से अधिक हो जाती है जिसका अर्थ यह है कि साधनों का वितरण विपरीत दिशा में हो जाता है। ऐसी स्थिति संतुलित केन्द्र–राज्य संबंधों के प्रतिकूल है।

3 **वित्त आयोग की भूमिका :** आलोचना का विषय यह भी है कि केन्द्र से हस्तान्तरित होने वाली राशि का केवल एक–तिहाई भाग ही वित्त आयोग की सिफारिशों पर होता है जबकि दो–तिहाई भाग वित्त आयोग के क्षेत्र से बाहर है। बटवारे की यह पद्धति मनमाने ढ़ंग की है, चाहे वह बंटवारा योजना आयोग द्वारा ही क्यों न किया जाता हो ? फिर केवल योजना आयोग ही ऐसे अनुदान नहीं देता। वित्त आयोग तथा योजना आयोग के क्षेत्र से बाहर के अनुदान प्रथम पंचवर्षीय योजना में दिये अनुदानों का केवल 7.3 प्रतिशत थे, किन्तु बाद की पंचवर्षीय योजनाओं में इनका महत्व बढ़ता गया तथा चौथी योजना में वह बढ़कर लगभग 41 प्रतिशत हो गया। ये अनुदान जिन्हें विवेकानुदान कहा जाता है योजना अनुदानों की अपेक्षा 73 प्रतिशत बढ़ गए। सरकार की इच्छा पर छोड़े गए इन अनुदानों के विरुद्ध सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि वित्तीय संघीय संबंधों में न्याय के सिद्धान्त का उल्लंघन करते हैं। सभी मुख्यमंत्रियों ने सातवें वित्त आयोग के समक्ष अनुच्छेद 282 के अत्यधिक प्रयोग पर जिसके अन्तर्गत ये विवेकानुदान दिए जाते हैं, पुनः विचार करने को कहा।

4 **आर्थिक नियोजन के संबंध में विवाद :** योजना आयोग की भूमिका को लेकर भी केन्द्र और राज्यों के मध्य विवाद उभरे हैं। कुछ राजनीतिक अध्येताओं का मानना है कि योजना आयोग ने संघवाद की प्रकृति और स्वरूप को निरस्त कर दिया है। वस्तुतः योजना आयोग सम्पूर्ण देश की योजना के लिए कुछ आधारभूत विषय निश्चित करता है। लेकिन राज्यों की समस्याएँ अलग–अलग होती हैं। अतः उनकी मूल समस्याओं का निराकरण नहीं हो पाता है। राज्य के पास अपना योजना बोर्ड नहीं है जो राज्य की योजनाओं को तकनीकी दृष्टि से निश्चित कर सके। हाल के कुछ वर्षों में केन्द्रीय सरकार और योजना का राज्य सरकारों द्वारा विरोध करने की प्रवृत्ति उभर रही है। राज्य सरकारों द्वारा यह माँग की जा रही है कि योजना आयोग के कार्यों को सीमित किया जाना चाहिए तथा दिए जाने वाले अनुदान शर्त मुक्त हों।

5 **अन्तर्राज्यीय व्यापार :** संविधान के द्वारा अन्तर्राज्यीय व्यापार का नियमन करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को प्राप्त है। केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय तथा स्थानीय हितों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए कभी–कभी राज्यों के अधिकारों में हस्तक्षेप करती है। इस हस्तक्षेप के कारण केन्द्र–राज्य सम्बन्ध कटु हो जाते हैं।

मई 1979 में मुख्यमंत्रियों के दो दिन के सम्मेलन में केन्द्र के वित्तीय साधनों के बटवारे के सवाल पर तीव्र विवाद पैदा हो गया था। पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु ने इस मामले को सर्वोच्च न्यायालय में ले जाने तक का निर्णय ले लिया था। पश्चिमी बंगाल के तत्कालीन वित्त मंत्री अशोक मित्र ने आरोप लगाया कि कच्ची तम्बाकू, चीनी तथा कपड़ों पर एकत्र करों के बंटवारे के सवाल पर अनेक स्मरण पत्र भेजने के बावजूद केन्द्र ने अपना वायदा पूरा नहीं किया। भारतीय संविधान लागू होने के बाद पहली बार ऐसा हुआ जबकि केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों को लेकर विवाद इतना गहराया कि अदालत में जाने की नौबत आ गयी।

वित्तीय संबंधों का न्यायपूर्ण आबंटन : नये संतुलन की तलाश

केन्द्र राज्यों के वित्तीय संबंधों को मधुर और सहज बनाने के लिए प्रशासनिक सुधार आयोग तथा राजमन्नार समिति ने अपने प्रतिवेदनों में कतिपय सुझाव दिए थे। इसी उद्देश्य से पश्चिमी बंगाल की सरकार ने भी एक विस्तृत मसविदा प्रस्तुत किया था। प्रशासनिक सुधार आयोग ने अनुच्छेद 282 के अन्तर्गत राज्यों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता का सहज रुप प्रस्तुत किया। इस संबंध में आयोग ने निम्नलिखित अनुशंसाएँ की थी –

1 केन्द्र तथा राज्यों को दी जाने वाली सहायता राशि की मात्रा तय की जानी चाहिए। इसके बाद ऋण के रुप में दी जाने वाली धनराशि निश्चित कर लेनी चाहिए।

2 इस सहायता राशि को वितरित करते समय वह धनराशि अलग कर लेनी चाहिए जो राष्ट्रीय महत्व की परियोजनाओं पर खर्च की जाती है। अवशेष धनराशि को ही केन्द्रीय अनुदान के रुप में राज्यों को वितरित किया जाना चाहिए।

3 यदि राज्य सरकार ने किसी परियोजना को पूरा नहीं किया तथा केन्द्रीय अनुदान की अधिक धनराशि व्यय कर दी है तो बाद में केन्द्रीय अनुदान की मात्रा कम की जा सकती है।

राजमन्नार समिति का सुझाव था कि वित्त आयोग स्थायी रूप से स्थापित किया जाए तथा राज्यों के पक्षों में करों का पहले से अधिक वितरण हो ताकि उन्हें केन्द्र पर कम से कम निर्भर रहना पड़े। राज्यों को वित्तीय क्षेत्र में स्वायत्तता प्रदान करना चाहिए। राज्य को निगम कर, निर्यात कर तथा आबकारी कर में से हिस्सा मिलना चाहिए।

राज्य स्वायत्तता की मांग की बिगुल बजाते हुए पश्चिमी बंगाल की वामपंथी सरकार ने अपने मसविदे में कहा है – (i) कुल राजस्व का 75 प्रतिशत भाग राज्य सरकारों को व्यय हेतु प्रदान किया जाए। (ii) योजना आयोग की कार्यप्रणाली में फेर–बदल किया जाए। (iii) संविधान के अनुच्छेद 280(क) को खत्म करना चाहिए। (iv) राज्यों को कर लगाने एवं वसूलने का पूर्ण अधिकार मिलना चाहिए। (v) संविधान के अनुच्छेद 280 की धारा 2 और 7 को समाप्त करना चाहिए। (vi) केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के वाणिज्य संबंधी संविधान के अनुच्छेद 302 में निहित अधिकारों को खत्म करना चाहिए।

उपर्युक्त संवैधानिक प्रावधानों के देखने से ऐसा लगता है कि राज्यों को अधिक मात्रा में वित्तीय साधन तभी उपलब्ध हो सकते हैं जब अधिक साधन एकत्रित किए जाए। वित्त विशेषज्ञों का मानना है कि गत 52 वर्षों में राज्य सरकारों के व्यय में तेजी से बढ़ोत्तरी हुई है लेकिन राज्यों ने इसकी पूर्ति के लिए समुचित विकसित साधन विकसित नहीं किए।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि वित्तीय अधिकारों के मामले में केन्द्र तथा राज्यों के बीच किसी प्रकार के मतभेद या टकराव की गुंजाइश नहीं है। वे एक दूसरे के पूरक बन सकते हैं। दिशानिर्देश देने, समन्वय स्थापित करने तथा साधनों के बंटवारे का काम केन्द्र के जिम्में हो तथा आर्थिक कार्यक्रमों को लागू करने का दायित्व और अधिकार राज्यों के अधिकार क्षेत्र में हो तो विवाद का कोई कारण नहीं हो सकता।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- ए०आर० गौड, सैन्टर स्टेट फाईनेन्शियल रिलेशनस एण्ड फाइनेन्स कमीशन, इलाहाबाद, चुग, 1985
- बी०एन० गुप्ता, इंडियन फैडरल फाइनेन्स एण्ड बजटरी पोलिसी, इलाहाबाद, चैतन्य, 1970
- रिपोर्ट, 15वाँ वित्त आयोग, नई दिल्ली

कुछ प्रश्न

- भारत में वित्तीय संघवाद के मुख्य प्रावधानों का वर्णन करो।
- केन्द्रीय तथा राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्धों को लेकर तनाव क्षेत्रों का वर्णन करो।

अध्याय – 6

वित्तीय शक्तियों का प्रत्यायोजन

(Delegation of Financial Powers)

रूपरेखा

- उद्गम
- प्रत्यायोजन प्रक्रिया
- वित्तीय परामर्श की पद्धति
- प्रत्ययोजन नियमा, 2006
- समस्याएँ
- सारांश
- उपयोगी पुस्तकें
- कुछ प्रश्न

वित्तीय शक्तियों का प्रत्यायोजन (Delegation of Financial Powers)

केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के वित्तीय नियमों के अनुसार जो वित्तीय शक्तियाँ किसी अन्य विभाग अथवा प्राधिकरण को सौंपी नहीं गई होती हैं वे वित्त मन्त्रालय / विभाग में निहित होती हैं। संविधान के अनुच्छेद 77(3) तथा 166(3) के अनुसार राष्ट्रपति तथा राज्यपालों को केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों का कामकाज चलाने के लिए शक्तियाँ प्रदान की गई हैं जो प्रशासनिक विभागों तथा अधीनस्थ प्राधिकरणों को सौंपी गई शक्तियों की पुस्तकों में मिलता है। कामकाज के वर्तमान नियमों के अनुसार, कोई भी विभाग, वित्त मन्त्रालय की पूर्व अनुमति के बिना निम्न प्रकार के आदेश नहीं दे सकता :

(अ) राजस्व के परित्याग अथवा इस प्रकार के व्यय जिनका विनियोजन अधिनियम में कोई प्रावधान न किया गया हो,

(ब) किसी भूमि अथवा राजस्व का समानुदेशन (Assignment) छूट प्रदान करना, खनिज अथवा वनों का पट्टा अथवा अनुज्ञप्ति (Licence) प्रदान करना, पानी अथवा विद्युत पर अधिकार प्रदान करना अथवा इस प्रकार की छूट के सम्बन्ध में कोई विशेषाधिकार प्रदान करना,

(स) पदों की श्रेणी की संख्या, अथवा किसी सेवा की संख्या अथवा सरकारी कर्मचारियों के वेतन, भत्तों सेवा की उन शर्तों से सम्बन्धित हों जिनके आर्थिक प्रभाव हों अथवा

(द) व्यय होने अथवा न होने पर भी जिनके वित्तीय पहलू हों।

उपर्युक्त शक्तियों के वर्णन से वित्त विभाग के नियन्त्रण का पता चलता है। विभाग के बजट के पास जाने के बाद भी वित्त का व्यय पर पूरा नियन्त्रण बना रहता है। इस नियन्त्रण के विरोध तथा पक्ष में बहुत से तर्क दिये जाते हैं। जो विरोध में हैं, उनका कहना है कि यह नियन्त्रण व्यर्थ में रुकावट डालता रहता है तथा इसके विकास कार्यक्रमों की गति बहुत धीमी भी पड़ जाती है जो इस नियन्त्रण के पक्ष में हैं उनका कहना है कि वित्त मन्त्रालय को धन सम्बन्धी सभी प्रबन्ध करने होते हैं, अतः वित्त मन्त्रालय / विभाग का प्रभावशाली नियन्त्रण बहुत आवश्यक है।

ब्रिटेन में सन् 1918 ई० में हालडेने समिति (Haldane Committee) ने वित्त मन्त्रालय के प्रभावशाली नियन्त्रण के पक्ष में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है, ''कुल मिलाकर, अनुभव से यह पता लगता है कि कर दाता के हितों को खर्च करने वाले विभागों पर नहीं छोड़ा जा सकता।'' (On the Whole, experience seems to show that the interest of the taxpayers cannot be left to the spending departments). वित्त मन्त्रालय के इस प्रभावशाली नियन्त्रण तथा अन्य विभागों को व्यय सम्बन्धी दी गई सीमित शक्तियों के बारे में उस समय उतनी आलोचना नहीं थी जब प्रशासन का कार्य केवल कानून तथा व्यवस्था बनाये रखना तथा देश की सुरक्षा करना ही था। जैसे ही प्रशासन ने विकासशील कार्यो को अपने हाथ में लिया, वित्त मन्त्रालय के इस कठोर नियन्त्रण पर बहुत से प्रश्न चिन्ह लगने शुरू हो गये।

गोपाल स्वामी आयंगर ने अपने सरकारी तन्त्र का पुनर्गन (1949) के प्रतिवेदन में वर्तमान वित्तीय परामर्श में विलम्ब तथा कमियों को उद्घाटित करते हुए लिखा है, ''इस पद्धति में इस प्रकार के सुधार लाने की आवश्यकता है जिससे व्यक्तिगत मन्त्रालयों के उत्तरदायित्व बढ़े तथा उनमें नैराश्य (Frustration) की भावना को दूर करें।'' ए०डी० गोरवाल (A.D. Gorwala) ने सुझाव दिया है, ''वित्तीय मामलों में नियन्त्रण की आवश्यकता है न कि छोटे–छोटे मामलों में हस्तक्षेप। इस हस्तक्षेप से प्रशासकीय विभागों में जो कि सरकार का बहुत बड़ा भाग होते हैं, समय और शक्ति का बहुत नाश होता है तथा नैराश्य बढ़ता है। इसे दूर किया जाना चाहिए।'' इसी सम्बन्ध में भारत के प्रसिद्ध भूतपूर्व नियन्त्रक तथा महालेखाकार, अशोक चन्द्रा ने कहा है, ''नियन्त्रण की वर्तमान अवधारणा में तकनीकी ब्यौरा भी शामिल है यद्यपि वित्त विभाग इस प्रयोजन के लिए पूर्ण रूप से सज्जित (Equipped) नहीं होता। परिणाम स्वरूप जो आक्षेप (Objections) उठाई जाती हैं, वे प्रायः प्रारम्भिक तथा अज्ञानी स्वरूप की होती हैं। इससे न केवल गुस्सा ही बढ़ता है, बल्कि समय भी नष्ट होता है। अन्ततः ये आपत्तियाँ प्रायः हट ही जाती हैं, यह अन्तहीन बहस के बाद होता है, नियन्त्रण केवल स्थापना के ही प्रस्तावों पर प्रभावी होता है जो पूर्ण रूप व्यय का एक तुच्छ भाग होता है।''

अमेरिकी विद्वान् डॉ० पाल एपल्बी (Paul Appleby) भारतीय प्रशासन के अत्याधिक केन्द्रित स्वरूप से विस्मित हो गये थे। बहुत मामूली सी बातों को भी उच्चाधिकारी के लिए भेजना उन्हें भारतीय प्रशासन की एक बड़ी कमजोरी लगीं। उन्हीं के शब्दों में ''बजट एक श्रेष्ठ उदाहरण है। वास्तव में जब इसे पारित किया जाता है, तब इसका निर्धारण नहीं किया जाता, किन्तु इसे वर्ष भर में दिन प्रति दिन बनाया जाता है। सामान्य निर्धारण के बाद भी विस्तृत नियन्त्रण से विलम्ब, नैराश्य, यहाँ तक कि सबसे उच्च स्तर पर लिए गए निर्णय भी मलियामेट हो जाते हैं।''

लोक सभा की अनुमान समिति ने अपने नवें प्रतिवेदन। (1953–54) में टिप्पणी करते हुए कहा है कि वर्तमान वित्तीय नियन्त्रण पद्धति योजनाओं के शीघ्र क्रियान्वयन में परेशान करने का एक स्त्रोत है। समिति के अनुसार पुरानी पद्धति की जटिल तथा बोझिल प्रक्रियायें राष्ट्रीय निर्माण के कार्यों में वांछित प्रगति करने में बहुत बाधक हैं। पुरानी पद्धति से प्रतिबन्धित (Conditioned) होने के कारण प्रशासनिक विभाग वित्त मन्त्रालय को एक ऐसे संगठन के रूप

में देखते हैं जिसे उनके लिए निर्णय लेने चाहिए। वित्त मन्त्रालय भी प्रशासनिक विभागों से आए हुए प्रस्तावों के महत्व अथवा आवश्यकता को ध्यान न देते हुए उनकी छानबीन तथा आलोचना करने में आभार अनुभव करता है। समिति ने यह भी अनुभव किया कि वह बीमारी इतनी पुरानी हो गई है कि जिन मामलों का निपटारा करने की अंतिम शक्तियाँ प्रशासनिक विभागों को दे दी गई हैं, उनमें भी वे उत्तरदायित्व से बचने के लिए वित्त मन्त्रालय से परामर्श लेते हैं। अतः प्रशासनिक विभागों को अधिक अधिकार देने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में लोक सभा की अनुमान समिति ने नवें प्रतिवेदन (1953–54) में ''वित्तीय, प्रशासनिक तथा सुधार'' में प्रशासनिक तथा वित्तीय विभागों में समन्वय की आवश्यकता पर जोर डाला तथा प्रशासनिक विभाग को और अधिक वित्तीय शक्तियाँ देने की बात कही। अनुमान समिति के निम्न सुझाव उल्लेखनीय हैं :

(अ) किसी भी योजना के प्रारम्भ करने से पहले उस पर अच्छी तरह से विचार विमर्श किया जाना चाहिये। इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए कि इसके लिए आवश्यक धन उपलब्ध है तथा उचित समय पर मिल सकता है। विस्तृत विवरण तथा अनुमान बनाए जाने चाहिए ताकि वित्त मन्त्रालय उस योजना की स्वीकृति दे सके तथा वित्तीय सहमति प्रदान कर सके।

(ब) वित्त मन्त्रालय के द्वारा वित्तीय पहलु के अनुसार योजना पर सहमति प्राप्त हो जाने के पश्चात् योजना का विस्तृत क्रियान्वयन तथा इस पर व्यय करना प्रशासनिक विभाग का उत्तरदायित्व होना चाहिए। प्रशासनिक विभाग को योजना के उप–शीर्षों में, पूर्ण परिव्यय (Outlay) को प्रभावित किए बिना परिवर्तन करने की शक्ति होनी चाहिए।

वित्त मन्त्रालय तथा प्रशासनिक विभागों में और अधिक अच्छे समन्वय की दुराग्रही (Pressing) आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने प्रशासनिक मन्त्रालयों / विभागों को और अधिक वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन पर सन् 1955 ई० में विचार किया। सन् 1957 में केबिनेट सचिवालय के संगठन एवं प्रणाली संभाग (Organisation and Method Division) ने ''मन्त्रालयों तथा विभागाध्यक्षों को प्रत्यायोजित वित्तीय तथा अन्य सम्बन्धित शक्तियों'' शीर्षक की एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें उन्हें दी गई शक्तियों का वर्णन था।

भारत सरकार ने दिसम्बर 1958 ई० में ''शक्तियों के प्रत्यायोजन के नियम, 1959'' (Delegation of Powers, Rule 1959) बनाए। इन नियमों के अनुसार कुछ सामान्य सीमाओं के अन्तर्गत प्रशासकीय मन्त्रालयों को विस्तृत अधिकार दिए गए। पुनर्विनियोजन सम्बन्धी बहुत अधिकार दिए गए। इसमें यह शर्त थी कि पुनर्विनियोजन करते समय व्यय अनुदान क्षेत्र के भीतर ही होना चाहिए। केन्द्रीय सरकार के विभाग को 50 लाख रूपए तक के सामान को खरीदने का अनुबन्ध करने का अधिकार प्रदान किया। स्थायी और अस्थायी पदों की रचना तथा आकस्मिक और विविध व्यय करने के सम्बन्ध में प्रशासकीय विभागों को पर्याप्त शक्तियाँ दी गई।

भारत सरकार ने 1 जून, 1962 से प्रशासकीय मन्त्रालय / विभागों को और अधिक शक्तियों दीं। इसकी मुख्य विशेषताओं का वर्णन हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं :

(अ) वित्त मन्त्रालय को प्रशासकीय मन्त्रालयों द्वारा बनाई गई योजनाओं को बजट में सम्मिलित करने से पहले उचित छानबीन करनी चाहिए। इसलिए प्रशासकीय मन्त्रालयों की अपनी योजनाओं को जहाँ तक सम्भव हो सके विस्तृत तथा सूक्ष्म रूप में बनाकर बहुत महीने पहले जुलाई मास के आरम्भ में वित्त मन्त्रालय के पास पहुँचा देना चाहिए।

(ब) महालेखाकार से प्रशासकीय विभागों को नियमित तथा समय पर लेखा सम्बन्धी आँकड़ें पहुँचाने के प्रबन्ध किए गए ताकि वे विनियोजन सम्बन्ध में हुए व्यय को जान सकें।

(स) जो योजनायें विस्तृत रूप से तैयार न हों उनके बारे में भी एक मुश्त प्रावधान किया जा सकता है। परन्तु उन प्रावधानों के सम्बन्ध में स्वीकृति वित्त विभाग द्वारा स्वीकृति के पश्चात् ही मिल सकती है।

(द) प्रशासनिक मन्त्रालयों को प्रारम्भिक इकाइयों में पुनर्विनियोजन की शक्तियाँ दी गई।

(ज) प्रशासनिक मन्त्रालयों को 3000 रुपए प्रतिमास तक के वेतनमानों के पदों को सृजन करने का अधिकार दिया गया।

(च) प्रशासनिक मन्त्रालयों को विशेष परिस्थितियों में किसी योजना पर दस प्रतिशत या एक करोड़ रुपए जो भी कम हो खर्च करने का अधिकार दिया गया।

1962 ई० के चीनी आक्रमण के कारण इन शक्तियों पर निम्न दो अंकुश लगाए गए –

(अ) सुरक्षा तथा योजना के उद्देश्यों के लिए आवश्यक पदों के अतिरिक्त बाकी सभी पदों का सृजन गृह मन्त्रालय तथा वित्त मन्त्रालय की सहमति से ही हो सकता है।

(ब) नए निर्माण के लिए प्रस्ताव भले ही बजट द्वारा स्वीकृत हो, केवल वित्त मन्त्रालय की सहमति से ही स्वीकृत हो सकते हैं।

जून 1962 ई० की प्रत्यायोजन योजना (Delegation Scheme) की 1967 ई० में समीक्षा की गई। इस समीक्षा के आधार पर अक्तूबर, 1968 से एक नई योजना प्रारम्भ की गई। इसमें भी ऐसे प्रबन्ध किए गए कि वित्त मन्त्रालय नई योजनाओं को बजट में सम्मिलित करने से पहले अच्छी तरह से छानबीन कर ले। प्रशासनिक मन्त्रालयों को अनुदान के भीतर पुनर्विनियोजन की पूर्ण शक्तियाँ प्रदान की गई किन्तु योजना के लिए निश्चित धन को गैर योजना कार्यों के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। प्रशासकीय व्ययों (वेतन, भत्तों तथा अन्य प्रभारों) में एक ही अनुदान के अधीन वृद्धि नहीं की जा सकती। प्रशासकीय मन्त्रालयों को वित्तीय परामर्श के प्रबन्ध किए जाने चाहिए। मन्त्रालयों को वित्त मन्त्रालय की परामर्श से बनाए गए नियमों के अनुसार अनुदान तथा ऋण देने की पूर्ण शक्तियों प्रदान की गई।

सन् 1968 ई० की वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन की योजना 1962 ई० की योजना पर निश्चित रूप से एक सुधार थी। सन् 1973 ई० में इस योजना पर पुनर्विचार किया गया तथा अप्रैल 1975 में एक और नई योजना बनाई गई जिसकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(अ) मन्त्रालयों को अपने अधीनस्थ प्राधिकरणों के पदों के सृजन घाटों को बट्टे खाते में डालने (Write off) तथा मौलिक बजट के प्रावधानों के 10 प्रतिशत से अधिक राशि के लिए पुनर्विनियोजन की शक्ति के सिवा अपनी सभी शक्तियों का पुनः प्रत्यायोजन कर सकते हैं।

(ब) मन्त्रालय किसी भी अधिकारी को जो निर्धारित मानदण्ड के अनुसार हो, विभागाध्यक्ष घोषित कर सकते हैं।

(स) ये बढ़ी हुई शक्तियाँ सरकार द्वारा समय–समय पर निर्धारित प्रक्रियाओं तथा मितव्ययता सम्बन्धी दिए गए निर्देशों से नियन्त्रित होती रहेगी।

वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन की समस्याएँ

(Problems of Delegation of Financial Powers)

प्रशासनिक मन्त्रालयों / विभागों को वित्तीय शक्तियाँ के प्रत्यायोजन के सम्बन्ध में बहुत सी समस्याओं का उल्लेख किया जाता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि प्रशासनिक विभागों में वित्तीय मामलों को समझने की तकनीकी योग्यता नहीं होती। कुछेक के अनुसार करदाता के हितों की खर्च करने वाले मन्त्रालयों / विभागों के हाथों सुरक्षा नहीं हो सकती। अतः वित्तीय मामलों में वित्तीय मन्त्रालय / विभाग को प्रभावशाली शक्तियाँ तथा नियन्त्रण दिये जाने की आवश्यकता है।

बहुत बार ऊपर से हस्तक्षेप तथा दबाव के कारण प्रत्यायोजित शक्तियों का प्रयोग करना बहुत कठिन हो जाता है। उच्चाधिकारियों द्वारा मौखिक रुप से दी गई हिदायतें भी प्रत्यायोजन को निष्प्रभाव कर देती है।

बहुत बार अधिकारियों को उचित प्रशिक्षण तथा अभिविन्यास (Orientation) के बिना ही शक्तियों का प्रत्यायोजन कर दिया जाता है। बहुत बार आवश्यक प्रशासनिक सुविधाओं तथा लेखा सम्बन्धी सहायता के बिना भी प्रत्यायोजन कर दिया जाता है।

भारतीय प्रशासन में नियमों तथा अधिनियमों का ढेर लगाने की आदत के साथ–साथ इन नियमों को नियमबद्ध करने तथा एक सुनिश्चित ढंग से नवीनतम नियमों को न रखने की आदत है। इससे प्रत्यायोजन में कठिनाई होती है।

लोक सभा की अनुमान समिति ने अपने 98वें प्रतिवेदन में निम्न सुझाव दिए हैं :

(अ) विकास के कार्यों में मितव्ययता तथा कार्यकुशलता बढ़ाए जाने के लिए वैज्ञानिक मानदण्ड बनाए जाने चाहिए। इसके साथ–साथ लक्ष्य निर्धारित करने तथा कार्य सम्पादन को मापने के प्रयत्न भी किए जाने चाहिए।

(ब) समन्वित वित्त परामर्शदाताओं (Integrated Financial Adviser) की नियुक्ति की जानी चाहिए। इससे मन्त्रालयों / विभागों को आवश्यक भण्डार, मशीनों के लिए अतिरिक्त भागों तथा विभिन्न सामग्री को लोक हित में शीघ्रातिशीघ्र खरीदने की प्रक्रिया का पता चल सकता है।

(स) इस बात से आश्वस्त होने की बहुत आवश्यकता है कि बहुत से मन्त्रालय / विभाग तथा अधिकारी प्रत्यायोजित शक्तियों का उपयोग करें। अधिकारियों की, उत्तरदायित्व को न लेने तथा उन मामलों में जिनमें वे स्वयं भी सक्षम है को ऊपर भेजने की आदत को हतोत्साहित किया जाना चाहिए। अधिकारियों में स्वयं निर्णय लेने की आदत का विकास करना चाहिए।

वित्तीय परामर्श की पद्धति (The System of Financial Advice)

बजट तथा वित्तीय नियन्त्रण सम्बन्धी बहुत से सुधारों की योजनाओं में मुख्य बात यही कही गई है कि वित्त मन्त्रालय / विभाग को मोटे तौर पर वित्तीय नियन्त्रण करना चाहिए। दिन प्रतिदिन के सूक्ष्म कार्य तथा मामले सम्बन्धित मन्त्रालयों पर ही छोड़ दिए जाने चाहिए। इससे प्रशासनिक मन्त्रालयों / विभागों को वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन की आवश्यकता है। इन प्रत्यायोजन शक्तियों का वित्तीय विभाग तभी उपयोग कर सकते हैं यदि उन्हें उचित वित्तीय परामर्श उपलब्ध हो।

मितव्ययता समिति (Economic Committee) जिसने सन् 1949 ई० में प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन में वित्त मन्त्रालय द्वारा किए गए नियन्त्रण को बुद्धिमत्ता पूर्ण तथा प्रगतिशील होने के स्थान पर केवल रस्मी (ritualistic) तथा अप्रभावी बताया। समिति ने सुझाव दिया कि वित्त मन्त्रालय की भूमिका अवरोधात्मक के स्थान पर रचनात्मक होनी चाहिए। नवम्बर, 1949 में एन० गोपालास्वामी आयंगर (N. Gopalaswamy Aoangar) ने भी प्रशासनिक मन्त्रालयों में स्थाई वित्तीय परामर्शदायी संगठन की वकालत की।

लोक लेखा समिति की प्रार्थना पर तत्कालीन भारत के नियन्त्रक एवं महालेखाकार, अशोक चन्दा ने प्रशासनिक मन्त्रालयों के लिए आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाताओं (Internal Financial Advisers) की पद्धति प्रारम्भ करने का सुझाव दिया। इस पद्धति के अनुसार हर मन्त्रालय में भारत सरकार के उप–सचिव के पद के अधिकारी की नियुक्ति का सुझाव दिया गया। इसका मुख्य कार्य मन्त्रालय में व्यय की सही प्रगति के साथ–साथ यह देखना भी था कि मन्त्रालय विभिन्न कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में वांछित प्रगति प्राप्त करें।

सन् 1957 ई० में तत्कालीन वित्त मन्त्री टी०टी० कृष्णमाचारी ने आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता पद्धति के स्थान पर संलग्न वित्तीय परामर्शदाता (Attached Financial Advisers) पद्धति को प्रारम्भ किया। इसके अनुसार वित्त मंत्रालय में नियुक्त पदाधिकारियों को प्रशासनिक मन्त्रालयों में प्रतिदिन के वित्त सम्बन्धी कार्यों तथा विभिन्न योजनाओं को प्रारम्भ से लेकर अन्त तक निर्माण करने में परामर्श देने का काम सौंपा गया। ये पदाधिकारी, काम के भार के अनुसार अवर सचिव अथवा उप–सचिव के पद के होते थे। संलग्न वित्तीय परामर्शदाता वित्त विभाग के पदाधिकारी होने के कारण प्रशासनिक विभागों को वांछित उचित परामर्श न दे सके। अतः यह योजना असफल हो गई।

अशोक चन्दा के सुझावों पर आधारित लोक लेखा समिति की सिफारिशों के अनुसार भारत सरकार ने वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन की एक नई योजना को प्रारम्भ किया जिसे बजट निर्माण व क्रियान्वयन तथा वित्तीय नियन्त्रण के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर कहा जा सकता है। नई योजना 20 अगस्त 1958 को प्रारम्भ की गई। नई योजना के अनुसार हर मन्त्रालय में उचित स्तर के वित्तीय अधिकारियों की नियुक्ति की गई। इन अधिकारियों को जिनके वित्तीय परामर्शदाता, उप–वित्तीय परामर्शदाता व सहायक वित्तीय परामर्शदाता व सहायक वित्तीय परामर्शदाता नाम के पद थे। प्रशासनिक विभागों में आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता का काम सौंपा गया। ये अधिकारी संबंधित मन्त्रालय के ही अधिकारी थे। इन्हें वेतन भी सम्बन्धित मन्त्रालय से मिलता था। इन अधिकारियों का काम सम्बन्धित मन्त्रालय के बजट सम्बन्धी मामलों, वित्तीय मामलों तथा विनियोजनाओं के सम्बन्ध में उचित नियन्त्रण में सहायता करना था। आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता को मन्त्रालय के अधीन रखा गया। प्रशासनिक मन्त्रालयों के लिए आन्तरिक परामर्शदाता से नई प्रत्यायोजित शक्तियों के सम्बन्ध में परामर्श लेना अनिवार्य (Mandatory) कर दिया गया। जिन मामलों में आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता की परामर्श को माना न गया हो। उन मामलों को वित्त मन्त्रालय तथा भारत के नियन्त्रक एवं महालेखाकार के ध्यान में लाने का प्रावधान किया गया।

सन् 1962 ई० में आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता की योजना में कुछ परिवर्तन किए गए। प्रशासनिक मन्त्रालय के सचिव को किसी मामले के बारे में निर्णय लेने का अन्तिम अधिकार दिया गया। आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता से मतभेद होने पर भी मन्त्रालय की राय सर्वोपरि मानी गई। मतभेद की दशा में अब कोई भी मामला वित्त मन्त्रालय तथा भारत के नियन्त्रक एवं महालेखाकार को न भेजने का प्रावधान किया गया।

सन् 1968 ई० में आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता योजना में कुछ और सुधार किये गये। प्रशासनिक मन्त्रालयों में योग्य आन्तरिक वित्तीय परामर्श के महत्व पर और अधिक दबाव डाला गया। इन परामर्शदाताओं के कार्य क्षेत्र की वृद्धि की गई। इन परामर्शदाताओं के चुनावों की शक्ति प्रशासनिक विभागों को दे दी गई आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाताओं के उचित प्रशिक्षण पर भी दबाव डाला गया।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी वित्तीय परामर्श के प्रश्न पर विचार किया। प्रशासनिक सुधार आयोग के वित्तीय प्रशासन अध्ययन दल ने निम्नलिखित सुझाव दिये :

(अ) आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता की नियुक्ति सभी मन्त्रालयों के लिए अनिवार्य (Obligatory) होनी चाहिए। इन अधिकारियों को विभाग के वित्त तथा बजट कोष्ठ (Cell) का प्रभारी होना चाहिए। ये मन्त्रालय के अधिकार क्षेत्र में वित्तीय प्रबन्ध तथा नियन्त्रण के लिए उत्तरदायी होने चाहिए।

(ब) वित्तीय परामर्शदाताओं से परामर्श की प्रक्रिया विभिन्न मन्त्रालयों की अपनी इच्छा पर न छोड़ी जाए। इस सम्बन्ध में प्रशासनिक मन्त्रालयों के पथ प्रदर्शन के लिए आदर्श नियम बनाये जाने चाहिए।

(स) प्रशासनिक विभागों की वित्तीय एवं लेखा शाखाएँ अच्छी तरह से सशक्त बनाई जानी चाहिए। इनमें अच्छी तरह से शिक्षित तथा प्रशिक्षित कर्मचारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए।

(द) वित्तीय परामर्शदाताओं को अपने साथ प्रशासनिक अनुभव लाना चाहिए। इस अनुभव में वित्तीय प्रशासन की योग्यता बढ़ाए जाने के लिए भी प्रयत्न किए जाने चाहिए।

(ज) वित्तीय शाखाओं तथा प्रशासन की शाखाओं के मध्य अधिकारियों का फेर बदल किए जाने का प्रावधान होना चाहिए।

अनुमान समिति के सुझावों के अनुसार सन् 1975–76 में समन्वित वित्तीय परामर्शदाता (Integrated Financial Advisor) योजना को अपनाया गया। इस नई योजना के अनुसार समन्वित वित्तीय परामर्शदाता की नियुक्ति प्रशासनिक मन्त्रालय तथा वित्तीय मन्त्रालय द्वारा संयुक्त रूप में करने की व्यवस्था है। समन्वित वित्तीय परामर्शदाता संयुक्त सचिव के पद का अधिकारी है। यह वित्त मन्त्रालय तथा प्रशासनिक मन्त्रालय दोनों के प्रति उत्तरदायी है। इसकी वार्षिक गुप्त रिपोर्ट का वित्त मन्त्रालय तथा प्रशासनिक मन्त्रालय दोनों मिलकर लिखते हैं। इसका कर्तव्य प्रशासनिक मन्त्रालयों को दी गई परिवर्धित वित्तीय प्रत्यायोजित शक्तियों के प्रयोग में प्रशासनिक मन्त्रालयों की सहायता करना है। यह वित्त मन्त्रालय के निर्देशन के अनुसार भी कार्य करता है। मन्त्रालय का सचिव इसकी परामर्श को लिखित रूप में अमान्य कर सकता है। यह बजट बनाने तथा बजट पर खर्च करने में प्रशासनिक मन्त्रालयों की सहायता करता है।

निष्पादन बजट तथा शून्य बजट के प्रारम्भ होने पर तो समन्वित वित्तीय परामर्शदाता के उत्तरदायित्व में और वृद्धि हो गई है। समन्वित वित्तीय परामर्शदाता की योजना पहली सभी योजनाओं से अधिक अच्छी है। किन्तु फिर भी इसमें और सुधार की आवश्यकता है। इनके कार्यों तथा कार्यविधियों को और अधिक स्पष्ट करके लिखने की आवश्यकता है। समन्वित वित्तीय परामर्शदाता की स्थिति के बारे में प्रो० थावराज ने ठीक ही लिखा है, ''वह

निषेधाधिकार रखने वाला नहीं है और न ही वह लेखा के सम्बन्ध में आपत्ति उठाने वाला है। वह भी प्रबन्ध का वैसा ही भाग है जैसे उसके दूसरी शाखाओं में काम करने वाले साथी हैं।''

वित्तीय शक्तियों का प्रत्यायोजन नियमावली (1978 में संशोधन), 2016

Delegation of Financial Powers Rules (Amendment in 1978), 2016

नियम 18 : भारत सरकार का निर्णय संख्या 4 (ख)

वित्तीय शक्तियों का प्रत्यायोजन नियमावली, 1978 के नियम 18 के नीचे भारत सरकार का निर्णय 4 (ख) को निम्नलिखित से प्रतिस्थापित करें।

4(ख) गैर–योजना व्यय की स्वीकृति

(क) सचिव, व्यय विभाग की अध्यक्षता में निम्नलिखित सदस्यों के साथ एक गैर– योजना व्यय समिति का गठन किया गया है –

(i) मुख्य कार्यकारी अधिकारी, नीति आयोग

(ii) संबंधित विभाग के सचिव

(ख) गैर–योजना व्यय समिति एक मूल्यांकन फोरम के रूप में कार्य करेगी और निम्नलिखित मामले गैर–योजना व्यय समिति के समक्ष प्रस्तुत करने होंगे –

(i) किसी नई सेवा पर अथवा मौजूदा सेवाओं के विस्तार के लिए 300 करोड़ रुपए से अधिक के आवर्ती अथवा गैर आवर्ती व्यय वाले सभी गैर–योजना प्रस्ताव।

(ii) कोई अन्य गैर–योजना प्रस्ताव जिस पर विभाग चाहता है कि गैर–योजना व्यय समिति में उस पर विचार किया जाए।

(ग) गैर–योजना व्यय की कोई मद व्यय वित्त समिति / सार्वजनिक निवेश बोर्ड को नहीं भेजी जाएगी। गैर–योजना व्यय समिति को मामले प्रस्तुत करने की प्रक्रिया वही होगी जो व्यय वित्त समिति और सार्वजनिक निवेश बोर्ड को प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए है। संबंधित विभाग का एकीकृत वित्त गैर–योजना व्यय समिति के सचिवालय के तौर पर काम करेगा।

(घ) एकीकृत वित्त स्कीम के साथ केंद्र सरकार का कोई विभाग स्कीमों के संबंध में गैर–योजना व्यय की स्वीकृति के लिए निम्नलिखित रूप में शक्ति का प्रयोग कर सकता है बशर्ते कि (i) कोई गैर–योजना पद सृजित नहीं किया जाएगा और (ii) कोई स्वायत्त संस्थान स्थापित नहीं किया जाएगा। ये शक्तियां सरकार द्वारा समय–समय पर जारी प्रक्रियात्मक और अन्य अनुदेशों, उदाहरणतः सामान्य मितव्ययिता अनुदेश द्वारा शासित की जाती रहेगी।

गैर–योजना स्कीम की वित्तीय सीमाएं*	**मूल्यांकन फोरम**	**स्कीम/परियोजना का अनुमोदन करने के लिए सक्षम प्राधिकारी**
(क) 75 करोड़ रुपए तक	सामान्य प्रक्रिया में संबंधित मंत्रालय / विभाग	प्रशासनिक मंत्रालय / विभाग के सचिव
(ख) 75 करोड़ रुपए से अधिक किंतु 300 करोड़ रुपए से कम	सदस्य के रूप में वित्त सलाहकार और संबंधित प्रभाग के संयुक्त सचिव / निदेशक के साथ सचिव की अध्यक्षता में संबंधित मंत्रालय / विभाग की स्थायी वित्त समिति	प्रशासनिक मंत्रालय / विभाग के प्रभारी मंत्री
(ग) 300 करोड़ रुपए और उससे अधिक किंतु 500 करोड़ रुपए से कम	गैर–योजना व्यय समिति	मंत्रालय / विभाग के प्रभारी मंत्री
(घ) 500 करोड़ रुपए और उससे अधिक किंतु 1000 करोड़ रुपए से कम	गैर–योजना व्यय समिति	मंत्रालय / विभाग के प्रभारी मंत्री और वित्त मंत्री
(ड़) 1000 करोड़ रुपए और उससे अधिक	गैर–योजना व्यय समिति	मंत्रिमंडल / सीसीईए
(च) नए स्वायत्त संगठनों के लिए प्रस्ताव, चाहे परिव्यय कितना भी हो।	गैर–योजना व्यय समिति	मंत्रिमंडल / सीसीईए

*विनिर्दिष्ट वित्तीय सीमाएं संयुक्त परियोजना के लिए हैं और सक्षम प्राधिकारी के मूल्यांकन / अनुमोदन से बचने के लिए किसी भी परिस्थिति में किसी प्रस्ताव को विभाजित (उदाहरण के लिए परियोजना स्थल के लिए भूमि अधिग्रहण और उस पर निर्माण कार्य) नहीं किया जाएगा। अतः मंत्रालय / विभागों को सलाह दी जाती है कि जब तक सक्षम प्राधिकारी द्वारा स्कीम / परियोजनाओं का मूल्यांकन / अनुमोदन न कर दिया जाए, भूमि और निर्माण में निवेश की मद में कोई व्यय न किया जाए।

2. **संशोधित लागत प्राक्कलनों के मूल्यांकन और अनुमोदन के लिए शक्तियों का संशोधित प्रत्यायोजन इस प्रकार है –**

क्र०सं०	सीमा	मूल्यांकन और अनुमोदन फोरम
(क)	सांविधिक शुल्कों** में वृद्धि, विनिमय दर परिवर्तन और मूल अनुमोदित काल–क्रम के अंदर परिकल्पित मूल्य वृद्धि के कारण लागत में वृद्धि, चाहे स्कीम / परियोजना की लागत कुछ भी हो।	कोई मूल्यांकन नहीं। यदि लागत में कुल वृद्धि 75 करोड़ रुपए तक हो तो प्रशासनिक विभाग के सचिव द्वारा अनुमोदन और यदि कुल वृद्धि इससे अधिक हो तो प्रशासनिक प्रभारी मंत्री द्वारा अनुमोदन।
**सांविधिक शुल्कों में भारत सरकार द्वारा अधिसूचित और परियोजना प्राधिकारियों द्वारा अदा किए गए, आयात और निर्यात शुल्क सहित राज्य / केन्द्रीय कर शामिल हैं, किंतु जल, विद्युत प्रभार और पीओएल मूल्य वृद्धि शामिल नहीं हैं।		
(ख)	अधिक समय लगने, कार्यक्षेत्र में परिवर्तन, अवप्राक्कलन आदि जैसे कारणों से लागत प्राक्कलनों में वृद्धि (उपर्युक्त क में वर्णित कारणों से लागत वृद्धि को छोड़ कर)	
1.	लागतों में, अंतिम रूप से तैयार*** लागत प्राक्कलनों के 20 प्रतिशत तक वृद्धि	वित्त सलाहकार द्वारा मूल्यांकन। यदि लागत में कुल वृद्धि 75 करोड़ रुपए तक हो तो प्रशासनिक विभाग के सचिव द्वारा अनुमोदन और यदि कुल वृद्धि इससे अधिक हो तो प्रशासनिक प्रभारी मंत्री द्वारा अनुमोदन।
2.	लागतों में, अंतिम रूप से तैयार*** लागत प्राक्कलनों के 20 प्रतिशत से अधिक वृद्धि अथवा कार्यक्षेत्र में पर्याप्त परिवर्तन	शक्तियों के वर्तमान प्रत्यायोजन के अनुसार सक्षम प्राधिकारी द्वारा पुनः मूल्यांकन और अनुमोदन
*** अंतिम रूप से तैयार किए गए लागत प्राक्कलनों का आशय ऐसे लागत प्राक्कलन से है जो शक्तियों के वर्तमान प्रत्यायोजन के अनुसार मूल्यांकन और अनुमोदन की पूरी प्रक्रिया से गुजरा हो।		

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- एस०एस० मुखर्जी, पब्लिक फाईनेन्स एण्ड फाइनेशियल एडमिनिस्ट्रेशन, दिल्ली, सुरजीत, 1979
- एम०जे०के० थावराज, फाइनेशियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, नई दिल्ली, सुल्तान, 2003
- पी० मुथूस्वामी, डेलिगेशन ऑफ फाइनेनिशयल पावरज रूलज, मद्रास, स्वामी पब्लिशरज, 1991

कुछ प्रश्न

- क्या अब भी सभी वित्तीय शक्तियाँ वित्त मन्त्रालय के पास है ? वर्णन करो।
- वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन की प्रक्रिया का वर्णन करो।

अध्याय – 7

सार्वजनिक वित्त पर संसदीय नियन्त्रण

(Parliamentary Control Over Public Finance)

रूपरेखा

- पृष्ठभूमि
- सामान्य नियन्त्रण
- वित पर नियन्त्रण
- वित्तीय नियन्त्रण के तरीके
- सीमाएँ
- सारांश
- कुछ उपयोगी पुस्तकें
- कुछ प्रश्न

सार्वजनिक वित्त पर संसदीय नियन्त्रण

(Parliamentary Control Over Public Finance)

प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी देश का वित्तीय प्रशासन (क) विधानमंडल, (ख) कार्यपालिका, (ग) वित्त विभाग, (घ) लेखा परीक्षा, (ड़) संसदीय समितियों द्वारा निष्पादित किया जाता है। लोकतंत्र में विधान मंडल ही एक सक्षम अंग है जो सरकार को टैक्स एकत्र करने का प्राधिकार प्रदान करता है। विधायी स्वीकृति के बिना न तो धन का विनियोजन किया जाता है और न ही टैक्स इकट्ठा किया जा सकता है। यह करों को लगा भी सकता है, कम भी कर सकता है और उन्हें हटा भी सकता है। सिद्धांत में कार्यपालिका मांग करती है और विधान मंडल स्वीकृति देता है। इसलिए सरकार को अपनी बजट योजना पर कार्य करने से पहले इसे संसद द्वारा पारित करवाना होता है। इसे बजट का अधिनियम कहा जाता है।

संसद में बजट पर बहस सदस्यों को विभिन्न विभागों तथा मंत्रालयों की कार्यप्रणाली की समीक्षा करने का अवसर देती है। यह उन्हें सरकार द्वारा शुरू किए गए विभिन्न कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में हुई उन्नति की जानकारी प्राप्त करने का अधिकार देती है। सदस्यों को बजट में शामिल नए व्यय प्रस्तावों के आर्थिक तथा सामाजिक निहितार्थों तथा औचित्य एवं परीक्षण का अवसर मिलता है।

बजट के अनुमोदन के बाद संसद द्वारा विनियोजन अधिनियम पारित किया जाता है जिसमें कार्यपालिका को विभिन्न अनुदानों में सम्मिलित आबंटनों के व्यय का प्राधिकार प्राप्त होता है। वित्त मंत्रालय, वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन द्वारा बजट के कार्यान्वयन के दौरान वित्तीय नियंत्रण के अपने दायित्वों को प्रशासनिक मंत्रालयों के साथ बांट लेता है। विधायी .... आश्वासन समिति जैसी संसदीय समितियों के कार्यों के द्वारा किया जाता है।

भारत का लेखा नियंत्रक तक महालेखा परीक्षक जो संविधान के अनुसार एक सांविधिक प्राधिकरण है – संसद के सजग प्रहरी की तरह कार्य करता है और यह देखने के लिए लेखा–परीक्षा करता है कि कार्यपालिका द्वारा बहुमत से स्वीकृत अनुदान के अनुसार ही हैं। भारत का लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक वित्तीय औचित्य की अवहेलना, धन का गबन जैसी वित्तीय अनियमितताओं तथा व्यतिक्रम संबंधी मामलों का विवरण लोकलेखा समिति को देता है ताकि वह आवश्यकतानुसार कार्यवाही कर सके। लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक द्वारा किए गए लेखा विनियोजन तथा विवरण की जाँच करते समय समिति जाँच की विस्तृत पद्धति का आचरण करती है। लोकलेखा समिति के द्वारा लेखा रिपोर्ट का पुनरीक्षण कार्यपालिका के विनियोजित अनुदानों पर संसद के वित्तीय नियंत्रण के चक्र को पूरा करता है।

संपूर्ण प्रशासनिक कार्यप्रणाली विधानमंडल के प्रभावी नियंत्रण के अंतर्गत आती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि प्रत्येक कार्यवाही पर प्रश्न, प्रत्येक प्रश्न पर एक स्थगन बहस और प्रत्येक स्थगन बहस पर एक सविस्तार बहस हो सकती है। इसके अतिरिक्त संसदीय समितियाँ भी सरकार पर नियंत्रण रख सकती हैं।

विधायी सामान्य नियंत्रण (Legislative General Control)

संसद राजस्व, व्यय, ऋणदान तथा लेखे–जोखे पर नियंत्रण कर सकती है। ऋणों को बढ़ाने, लोक व्यय के लिए संचित निधि में से धन निकालने, मौजूदा टैक्सों की दरों में वृद्धि तथा नए करों को लगाने के लिए विधायी स्वीकृति की आवश्यकता होती है। सार्वजनिक खातों की लोक लेखा समिति द्वारा जाँच की जाती है और एक सांविधिक प्राधिकरण द्वारा लेखा परीक्षण किया जाता है जो कि कार्यपालिका से स्वतंत्र होता है। भारतीय संदर्भ में, वित्तीय नियंत्रण के निम्न चार नियमों का अनुसरण किया जाता है –

(i) मंत्रियों के रूप में कार्य करती हुई कार्यपालिका संसद के प्राधिकार के बिना ऋणदान, कराधान के द्वारा या दूसरे किसी उपाय से धन का जुगाड़ नहीं कर सकती, व्ययों के प्रस्ताव, जिनके लिए अतिरिक्त धन की आवश्यकता होती है केवल मंत्रीमंडल द्वारा ही पेश किए जाने चाहिए।

(ii) दूसरा नियम धन विधेयकों पर लोकसभा का एकमात्र नियंत्रण है। इसे पहले लोकसभा में पेश किया जाता है और लोकसभा के पास ही यह अधिकार है कि वह व्यय को प्राधिकृत करने के लिए ऋणों अथवा करों के रूप में धन की स्वीकृति दे सकती है। राज्यसभा अनुदान को अस्वीकार तो कर सकती है परन्तु इसे लागू नहीं करवा सकती हैं।

(iii) अनुदान की मांग सरकार द्वारा की जानी चाहिए। सरकार द्वारा अनुदान की मांग के अतिरिक्त किसी अनुदान को न तो राज्यसभा और न ही लोकसभा स्वीकृत कर सकती है।

(iv) इसी तरह, किसी भी नए कर अथवा मौजूदा कर में वृद्धि के प्रस्तावों का भी सरकार द्वारा पेश किया जाना आवश्यक है।

भारत में प्रश्न, कार्य स्थगन प्रस्ताव, संकल्प, वोट, बजट तथा विधायी समिति लोक लेखा, आकंलन, अधीनस्थ विधान और आश्वासन समिति विधायी नियंत्रण के साधन हैं। विधायी नियंत्रण के इन तरीकों का वर्णन यहाँ संक्षेप में किया गया है –

1 **प्रश्न अवधि (Question Hour) :** प्रत्येक संसदीय दिवस का पहला घंटा प्रश्नों के लिए रखा गया है जिसमें नियंत्रण प्रभावी हो जाता है। पूछे गए प्रश्न समूचे प्रशासन को सावधान कर सकते हैं। प्रश्न प्रशासन की नीतियों तथा गतिविधियों के विभिन्न पहलुओं पर जनता के ध्यान को प्रभावशाली ढंग से संकेन्द्रित करने का सफल साधन है। किसी भी प्रशासनिक कार्यवाही पर प्रश्न किया जा सकता है हालॉकि सदस्य मंत्री को उत्तर देने के लिए विवश नहीं कर सकते। अध्यक्ष भी कुछ प्रश्नों को पूछने की अनुमति नहीं देता। आमतौर पर प्रश्न तथाकथित कमजोर मुद्दों पर सरकार पर प्रहार करने के लिए अथवा किसी विषय पर मंत्री की राय तथा सूचना प्राप्त करने के उद्देश्य से पूछे जाते हैं। बहुत से प्रश्न हल्के फुल्के हो सकते हैं। मगर कुछ सरकार को जबरदस्त हानि पहुंचाते हैं जैसे 1956 का जीवन बीमा निगम का विवाद केवल एक ही प्रश्न के उत्तर से शुरू हुआ था जिससे वित्तमंत्री को त्याग पत्र देना पड़ा था।

यह उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करने वाली सर्वप्रिय, सर्वविदित सामान्यतः प्रयोग में लाई जाने वाली विधि है। समय–समय पर सदस्य अपने प्रश्नों के द्वारा महत्वपूर्ण विषयों को उठाते रहे हैं।

2 **कार्य स्थगन वादविवाद (Adjournment Motion) :** यह एक दैनिक नियंत्रण का साधन है तथा सार्वजनिक हित के विशिष्ट तथा किसी भी अनिवार्य प्रश्न को सदन में बहस के लिए रखा जा सकता है। अगर पीठासीन अधिकारी की अनुमति हो तो उठाए गए विषय पर तत्काल बहस शुरू हो जाती है, इस प्रकार सदन के नियमित कार्य को स्थगित कर दिया जाता है। व्यवहार में, यह देखा गया है कि अध्यक्ष ''तुरंत प्रकृति तथा जनहित'' शब्द को व्याख्यायित करने की कोशिश नहीं करता है।

3 **अधिनियम के संशोधन तथा अधिनियमन पर वाद–विवाद :** किसी भी विधेयक के बार–बार पढ़ने से संसद के सदस्यों को विधेयक की संपूर्ण नीति की आलोचना करने में सहायता मिलती है। आलोचना से सरकार के हृदय में परिवर्तन भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, सरकार ने 1957 में अत्यधिक विवादास्पद हिन्दी कोड विधेयक को वापिस ले लिया था। इसी तरह जब कभी भी अधिनियम में संशोधन के लिए संसद में प्रस्ताव पेश किया जाता है तो सदस्यों को एक बार फिर से उस पर चर्चा करने का अवसर मिलता है।

4 **राष्ट्रपति का भाषण :** बजट सत्र के शुरू होने पर राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों को एक साथ संबोधित करता है। भाषण सरकार द्वारा तय किया जाता है और प्रत्येक मंत्रालय उससे संबंधित मांग के लिए उत्तरदायी होता है। राष्ट्रपति अपने भाषण में उन प्रमुख नीतियों तथा गतिविधियों की विस्तृत जानकारी देता है जिन्हें कार्यपालिका निकट भविष्य में कार्यान्वित करने के लिए पूर्वाधिकृत कर चुकी होगी। संसद सदस्यों को प्रशासन के समुचित क्षेत्र की उसकी भूलचूक के तथाकथित कार्यों की समीक्षा करने का अवसर मिलता है।

5 **संसदीय समितियाँ :** संसदीय समितियाँ – लोक लेखा समिति, आकंलन समिति, लोक उपक्रम समिति, अधीनस्थ विधान समिति तथा आश्वासन समिति प्रशासन पर नियंत्रण के साधन हैं। पहली तीन समितियां तो वास्तविक तथा विस्तृत नियंत्रण करती हैं और आश्वासन समिति मंत्रियों द्वारा समय–समय पर सदन में दिए गए आश्वासनों तथा वचनों की छानबीन करती है और निम्न विषयों की जानकारी देती हैं – (i) ऐसे वायदों तथा आश्वासनों को किस सीमा तक पूरा किया गया है, (ii) कहाँ पूरा किया गया है, क्या ऐसे

कार्यान्वयन को कम से कम समय में पूरा किया गया है। ऐसी समितियाँ मंत्रियों को अपने वायदों को पूरा करने के लिए सतर्क करती हैं।

6 **लेखा–परीक्षण :** संसद लेखानियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के द्वारा सरकारी व्ययों पर नियंत्रण करती है जो सभी सरकारी लेखों का हिसाब–किताब रखता है ताकि सुनिश्चित कर सके कि संसद द्वारा स्वीकृत धन को बिना अनुपूरक वोट के बढ़ाया नहीं गया और धन का व्यय नियमों के अनुसार ही किया गया है। इस प्रकार वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में संसद के प्रति सरकार का उत्तरदायित्व लेखानियंत्रक तथा लेखामहापरीक्षक की रिपोर्टों से प्राप्त किया जाता है जिसे ठीक ही संसद का ''मार्गदर्शक, मित्र तथा तत्वज्ञ'' माना गया है।

विधायी नियंत्रण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

हालॉकि बजट पर पूर्ण नियंत्रण इसी सदी की संकल्पना है मगर इसका विकास मध्ययुग के अंत में शुरू हुआ था जबकि राजा के अधिकार क्षेत्र में राजस्व एकत्र करना शामिल होता था। इस प्रकार बजट राजस्व तथा व्यय का एक विवरण था। युद्ध तथा अन्य आपात स्थितियों के दौरान जब राजा को राज्य के कार्यों के लिए अत्यधिक धन की आवश्यकता होती थी तो उसे कुलीन वर्ग की राय जानने के लिए उनसे परामर्श करना पड़ता था। अभी तक व्यय राजा का ही विशेषाधिकार था। 1688 की क्रांति के बाद ''प्रतिनिधित्व के बिना राजस्व नहीं'' नियम की स्थापना हुई। अभी भी व्यय नियंत्रण पर विधायी स्वीकृति की परम्परा शुरू हुई थी।

लोक वित्त पर विधायी नियंत्रण की प्रथा सर्वप्रथम इंग्लैंड में शुरू हुई और लगातार विकसित होती गई। इस दिशा में किंग जॉन के शासन में उठाया गया पहला प्रयास व्यय की अपेक्षा राजस्व तथा प्राप्तियों (आय) पर नियंत्रण था। स्टुअर्ट की निरकुंशता ने सभासदों को और अधिक आग्रही बना दिया और वे सरकारी व्यय पर नियंत्रण में भागीदारी का दावा करने लगे। मगर ऐसा अचानक नहीं हुआ अथवा किसी संगठित योजना रूपरेखा के अनुसार यह कार्यान्वित नहीं हुआ था या यह कोई नियोजित प्रयास नहीं था जो धीरे–धीरे विकसित हुआ हो।

1987 में लेखाकरण तथा विवरण पद्धति की स्थापना 1866 के राजकोष तथा लेखा परीक्षण विभाग अधिनियम के अन्तर्गत लेखा परीक्षण प्रथा और 1866 में हाउस ऑफ कॉमंस में लोकलेखों की स्थायी समिति का संविधान विधायी नियंत्रण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक विकास थे।

इस प्रकार लेखा परीक्षण तथा विवरण की आधुनिक तथा विवरण की आधुनिक प्रणाली का निर्माण हुआ जिसके अनुसार विधान मंडल राज्य की वित्त व्यवस्था पर नियंत्रण करते थे। भारत में विधायी नियंत्रण की प्रणाली लगभग इंग्लैंड में प्रचलित प्रणाली पर आधारित है।

संवैधानिक उपबन्ध (Constructional Provisions)

भारतीय संविधान अपने विभिन्न अनुच्छेदों में वित्तीय मामलों में विधायी प्रक्रिया की व्याख्या करता है। भारतीय संविधान के मुख्य उपबंध नीचे दिए गए हैं :

अनुच्छेद 107(i) के अनुसार अनुच्छेद 109 तथा 117 के उपबंधों के अधीन धन विधेयक और अन्य वित्तीय विधेयकों के विषय में, एक विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रारंभ किया जा सकता है और अनुच्छेद 108 तथा 109 के उपबंध के अधीन कोई भी विधेयक संसद के एक सदन द्वारा पारित हुआ नहीं माना जाएगा जब तक दोनों

सदन इससे सहमत न हो जाएँ, चाहे यह संशोधनों सहित अथवा ऐसे संशोधनों के बिना हो, मगर दोनों सदनों की सहमति जरूरी है।

अनुच्छेद 109(i) के अनुसार एक धन विधेयक राज्यसभा में प्रारंभ नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 109(ii) लोकसभा द्वारा पारित धन विधेयक को राज्यसभा में उसके सुझावों के लिए भेजा जाता है और राज्यसभा को इस विधेयक की प्राप्ति की तिथि के चौदह दिनों के अंतर्गत अपनी सिफारिशों सहित लोकसभा को वापिस भेजना होता है और लोकसभा राज्यसभा की सभी अथवा कुछ सिफारिशों को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत कर सकती है। अनुच्छेद 109(iii) के अनुसार अगर लोकसभा राज्यसभा की सिफारिशों में से किसी को स्वीकार करती है तो विधेयक राज्यसभा द्वारा बताए गए संशोधनों सहित दोनों सदनों द्वारा माना जाएगा।

अनुच्छेद 112(i) से स्पष्ट है कि राष्ट्रपति को प्रत्येक वित्तीय वर्ष के विषय में भारत सरकार के वर्ष भर के आकल्लित व्ययों तथा आय का विवरण संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखना होता है। ऐसे विवरण को ''वार्षिक वित्तीय विवरण'' कहा गया है।

अनुच्छेद 113(i) के अनुसार भारत की संचित निधि पर प्रभावित व्यय से संबंधित काफी अनुमानों को संसद की स्वीकृत के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाएगा। मगर इस धारा में उन अनुमानों में से किसी पर भी संसद के किसी भी सदन में परिचर्चा को रोकने का प्रावधान नहीं हैं।

अनुच्छेद 114(i) के अनुसार ज्यों ही अनुच्छेद 113 के अधीन अनुदान लोकसभा द्वारा पेश हो जाएंगे त्यों ही सभी धन संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भारत की संचित निधि में से विनियोजन के लिए विधेयक प्रारंभ किया जाएगा :

(क) लोकसभा द्वारा किए गए अनुदान

(ख) भारत की संचित निधि पर प्रभारित व्यय : मगर संसद के समक्ष पहले से रखे गए विवरण में दिखाए गए धन में किसी भी प्रकार से वृद्धि नहीं हो।

अनुच्छेद 116(i) के अनुसार लोकसभा के पास निम्न शक्तियाँ होंगी –

(क) उस व्यय के विषय में अनुच्छेद 114 के उपबंधों के अनुसार कानून को पारित करना और ऐसे अनुदान की स्वीकृति के लिए अनुच्छेद 113 में निर्धारित प्रक्रिया की निष्पति के विचाराधीन किसी वित्तीय वर्ष के अनुमानित व्यय के एक भाग के विषय में पहले से ही अनुदान बनाना।

(ख) जब सेवा के अनिश्चित स्वरूप अथवा विस्तार के कारण मांग वार्षिक वित्तीय विवरण में साधारणतया दिए गए ब्यौरे से निश्चित नहीं किये जा सकते तो भारत के संसाधनों पर आकस्मिक मांग को पूरा करने के लिए अनुदान करना।

(ग) एक विशिष्ट अनुदान बनाना, जो किसी वित्तीय वर्ष की सामायिक सेवा का हिस्सा नहीं होती और संसद के पास उन कार्यों जिनके लिए उक्त अनुदान किए गए हैं, भारत की संचित निधि में से धन निकालने का कानूनन अधिकार है।

अनुच्छेद 117(i) के अनुसार अनुच्छेद 110 के अधीन निर्दिष्ट मामलों में से किसी एक के लिए प्रावधान करने वाले संशोधन अथवा विधेयक को राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना शुरू नहीं किया जाएगा और ऐसे प्रावधान करने वाले विधेयक को राज्यसभा में शुरू नहीं किया जाएगा। किसी कर के उन्मूलन अथवा कटौती के लिए प्रावधान करने वाले संशोधन को प्रस्तुत करने के लिए ऐसी सिफारिश की आवश्यकता नहीं होगी।

अनुच्छेद 117(ख) यह जानकारी देता है कि एक विधेयक, जो अगर कानून बन गया है और उसका कार्यान्वयन शुरू हो चुका है, भारत की संचित निधि में से व्यय को पूरा करेगा और तब तक संसद के किसी भी सदन द्वारा पारित नहीं होगा जब तक राष्ट्रपति उस सदन को विधेयक के महत्व की सिफारिश न करे।

कराधान पर नियंत्रण (Control Over Taxation)

बजट का निर्माण तब तक पूरा नहीं माना जाता जब तक लोगों से आपेक्षित धन को इकट्ठा करने की पूर्वयोजना नहीं बन जाती। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सदन के समक्ष एक वित्त विधेयक रखा जाता है जिसमें वित्तीय वर्ष के लिए राजस्व प्रस्ताव अथवा कराधान को प्रस्तुत किया जाता है और इसमें वर्तमान कराधान योजनाओं को कुछ परिवर्तन के साथ अथवा वैसे का वैसा शामिल किया जाता है।

यह प्रक्रिया लोकतंत्र के सुप्रसिद्ध सिद्धांत के अनुरूप है कि विधि के प्राधिकरण के अतिरिक्त किसी भी अन्य के द्वारा न तो कोई कर लगाया जा सकेगा अथवा इकट्ठा किया जा सकेगा जैसा कि हमारे संविधान के अनुच्छेद 265 में स्पष्ट प्रस्तुत किया गया है। अतः जबकि विनियोजन विधेयक सरकार को संचित निधि में से धन का विनियोजन करने का अधिकार देता है तो वित्त विधेयक इस करों को एकत्र करने का अधिकार देता हैं।

वित्त विधेयक में आगामी वित्तीय वर्ष के लिए सरकार के वित्तीय (कराधान) प्रस्तावों को शामिल किया जाता है जिन्हें प्रति वर्ष संसद को पारित करना होता है। इसमें खुली बहस की जाती है। संशोधनों द्वारा किसी भी कर में कटौती अथवा उसके उन्मूलन का प्रस्ताव किया जा सकता है मगर हो सकता है नए करों अथवा मौजूदा करों की दर में कोई वृद्धि का प्रस्ताव न हो। संशोधित विधेयक लोकसभा द्वारा पारित किया जाता है और राज्यसभा द्वारा विचार विमर्श के बाद यह राष्ट्रपति के पास उसके हस्ताक्षर के लिए जाता है, जिसके बाद विधेयक अधिनियम बन जाता हैं।

धन विधेयक का संबंध कराधान, ऋणदान अथवा व्ययों से होता है। बजट सत्र के शुरू होते ही बजट प्रस्ताव संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखे जा सकते हैं। धन विधेयकों के लिए प्राधिकरण लोकसभा के पास ही है तथा इसीलिए लोकसभा ही विधेयक की आगे की कार्यवाही करती है। वित्त मंत्री लोकसभा के सामने वार्षिक वित्तीय विवरण प्रस्तुत करता है और उस प्रस्तुतीकरण के बाद दोनों सदनों में अलग– अलग समूचे वित्तीय वितरण पर आम चर्चा की जाती है। व्यय के किसी भी मद को आम बहस में छोड़ा नहीं जाता। मगर बहस केवल नीति से संबंधित सामान्य स्वरूप पर ही होनी चाहिए जिसमें सम्बद्ध विभागों के प्रशासन की समीक्षा तथा पुनरीक्षण हो तथा शायद सदस्य लोगों की शिकायतों को भी अभिव्यक्त करें।

एक धन विधेयक किसी भी तरह निम्न संदर्भों में वित्त विधेयक से भिन्न होता है –

(क) एक धन विधेयक केवल कराधान, ऋणदान अथवा व्यय से संबंध होता हैं। जबकि वित्त विधेयक का क्षेत्र विस्तृत होता है जिसमें यह उपरोक्त के अलावा अन्य मामलों पर भी विचार करता है।

(ख) धन विधेयक ऐसा विधेयक है जिसे लोकसभा के अध्यक्ष द्वारा प्रमाणित किया जाना होता है जबकि वित्त विधेयक के लिए ऐसा प्रमाण आवश्यक नहीं है।

(ग) एक धन विधेयक को राज्यसभा को इसकी प्राप्ति के 14 दिनों के अन्तर्गत अपनी सिफारिशों सहित, अगर है तो, जिन्हें मानना लोकसभा के लिए जरूरी नहीं होता, लोकसभा को लौटाना जरूरी होता है। एक वित्त

विधेयक पर मतभेद को किसी भी तरह संयुक्त बैठक में उपस्थित सदस्यों की कुल संख्या के बहुमत द्वारा दूर किया जा सकता है।

लोक व्यय पर नियंत्रण – एक मूल्यांकन

(Control Over Expenditure : Evaluation)

विधान मंडल का कार्य लोक व्यय के लिए अनुदान पर मतदान से समाप्त नहीं होता। इसे यह भी देखना होता है कि दी गई नीधि (धन) का उपयोग दिए गए निर्देशों के अनुसार निष्ठापूर्वक तथा किफायत से किया गया है। संसद को अपने संदेहों को भी दूर करना होता है कि (1) निधि को अनुमोदित उद्देश्यों के लिए ही प्रयुक्त किया गया है, (2) विनियुक्त राशि के अन्तर्गत ही, (3) व्यर्थ तथा बेतुके खर्चों से बचा गया है आदि। इस कार्य के लिए भारत के महानियंत्रक तथा लेखा महापरीक्षक के द्वारा सभी विभागीय खातों का अलग–अलग लेखा जोखा रखा जाता है जिसकी रिपोर्ट का परीक्षण किसी भी संसदीय समिति द्वारा होता है।

संसद के प्रति राजनैतिक कार्यपालक का संयुक्त दायित्व संसदीय लोकतंत्र का आवश्यक गुण है। संसद द्वारा कार्यपालक पर किया जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण नियंत्रण बटुए की डोरी पर नियंत्रण है। कार्यपालक संसद की स्वीकृति के बिना धन का व्यय नहीं कर सकता।

भारतीय लेखा नियंत्रक तथा लेखा महापरीक्षक द्वारा लेखा परीक्षण

(Scrutiny by C.A.G.)

व्यय पर संसद का नियंत्रण तभी पूर्ण है जब यह स्वयं निश्चित कर सके कि कार्यपालिका द्वारा किए गए खर्चे उन्हीं कार्यो के लिए किए गए हैं जिनकी अनुमति दी गई थी। ऐसा एक स्वतंत्र प्राधिकरण भारत का लेखा नियंत्रक तथा लेखा महापरीक्षक द्वारा लेखों के परीक्षण के प्रावधान द्वारा निश्चित किया गया है। वह संघ तथा राज्यों के सभी व्ययों का परीक्षण करता है तथा पता लगता है कि खातों में दिखाया गया व्यय हुआ धन उन कार्यों, जिनके लिए उसका प्रयोग किया गया है, कानूनन उपयुक्त तथा उपलब्ध था। वह राज्यों तथा केन्द्र के अन्य सभी लेखों का भी परीक्षण करता है। वह लेखा परीक्षण की अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति तथा गवर्नरों को भेजता है ताकि उसे राज्य विधानमंडलों तथा राष्ट्रपति के समक्ष रखा जा सके। वह किसी भी फजूलखर्च तथा अयोग्यता की सूचना देता है। वह लेखाकरण अथवा वित्तीय सिद्धान्त। जिनमें विवाद हो, ऐसे लेनदेन व्यवहारों जिनमें भारी हानि हुई हो अथवा हो सकती हो, नई सेवाओं पर व्यय और निर्धारित कार्य प्रणाली तथा पूर्णनिर्णयों से विचलन संबंधी मामलों पर स्पष्ट टीका टिप्पणी करता है। संसद को पूरी रिपोर्ट तथा सम्पूर्ण लेखा–परीक्षण की जानकारी देने के लिए संविधान द्वारा लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक को स्वतंत्र पद दिया गया है।

चूंकि संसद लेखा नियंत्रण तथा महालेखा परीक्षक की रिपोर्टों पर गंभीर कानूनी चर्चा करने के लिए एक अत्यधिक दुष्प्रयोजनीय निकाय है, यह रिपोर्टों को विस्तृत परीक्षण के लिए संसद की विशेष समितियों को अत्यधिक भेजती है। इस प्रकार की कुछ महत्वपूर्ण समितियों की नीचे चर्चा की गई है।

लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee)

लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक की लेखा परीक्षण रिपोर्ट को संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। लेखा परीक्षण रिपोर्ट का परीक्षण कार्य संसद की विशेष समिति को सौंपा जाता है जिसे लोक लेखा समिति के नाम से जाना जाता है।

लोक लेखों पर समिति के नियंत्रण संबंधी नियम 143 से पता चलता है –

1 लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट तथा भारत सरकार के विनियोजन लेखों की जाँच के बाद लोक लेखा समिति का कर्त्तव्य होगा कि अपने संदेहों को खत्म करें :

(क) कि विपरीत किया गया जो धन खाते में दिखाया गया था, सेवा अथवा कार्य जिसके लिए भी प्रयोग में लाया जाना था अथवा जिसके खर्चे में लिखा गया था, कानूनन उपलब्ध तथा उपयुक्त था।

(ख) कि व्यय उस प्राधिकरण के अनुसार किया गया जो इस पर नियंत्रण रखता है, तथा

(ग) कि प्रत्येक पुर्नविनियोजन विनियोजन अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार किया गया है अथवा उक्त अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत सक्षम प्राधिकरण के द्वारा नियमों को बनाया गया है।

2 लोक लेखों पर समिति का कर्त्तव्य होगा कि –

(क) ऐसे लेन–देन, निर्माण और लाभ तथा हानि के खातों और बैलेंस शीट (तुलन पत्र) का परीक्षण करें। क्योंकि लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक की रिपोर्टों के पश्चात् राष्ट्रपति को इसकी आवश्यकता हो।

(ख) लेखा नियंत्रक तथा लेखा महापरीक्षक की रिपोर्ट के उन मामलों पर विचार करें जिनमें राष्ट्रपति को आय (प्राप्ति) का लेखा–जोखा रखने अथवा माल तथा भंडार के लेखे–जोखे का परीक्षण करने के लिए उसकी जरूरत पड़े।

लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक की लेखा परीक्षण रिपोर्ट पर लोक लेखा समिति के निष्कर्ष सरकार द्वारा आवश्यकतानुसार सिफारिशों सहित कार्यवाही के लिए संसद के समक्ष रखे जाते है। इस प्रकार लोक लेखा समिति संसद द्वारा स्वीकृत व्यय के विषय में कार्यपालक के उत्तरदायित्व को सुदृढ़ बनाने की प्रक्रिया है।

आकलन समिति (Estimates Committee)

लोक लेखा समिति की प्रक्रिया के द्वारा संसद अपने द्वारा स्वीकृत व्यय के विषय में कार्यपालक के उत्तरदायित्व को सुदृढ़ बनाने के योग्य रही है। आकलन समिति की प्रक्रिया ही संसद के सामने विचारार्थ रखे जाने से पहले वित्त मंत्रालय के अनुमानों को ब्यौरेवार जाँच का विषय बनाती है।

समिति के कार्य हैं :

1 यह विवरण देना है कि संगठनात्मक कार्यक्षमता में वृद्धि अथवा अधीनस्थ नीति के अनुकूल प्रशासनिक सुधार, दोनों में से क्या ज्यादा लाभकारी है।

2 प्रशासन में व्यवस्था तथा कार्यदक्षता के लिए विकल्प नीतियों को सुझाना।

3 आकलनों में अन्तर्निहित नीति की सीमाओं के अंतर्गत ही धन के व्यय का परीक्षण करना।

4 ऐसे ढंग सुझाना जिनके द्वारा संसद के सामने आकलन पेश किए जा सकें।

समिति प्रतिवर्ष कुछ विभागों का चयन करती है उसकी कार्यप्रणाली की विस्तृत जाँच करती है तथा उसकी अर्थनीतियों, संगठनों, नीति संबंधी मामलों आदि पर सुझाव देती है।

सरकारी उपक्रमों की जांच

समिति द्वारा उपक्रमों की जाँच उनके कार्य–निष्पादन का मूल्यांकन ही है जिसमें नीतियों का कार्यान्वयन, कार्यक्रम, व्यवस्था, वित्तीय सफलता जैसे महत्वपूर्ण पहलू आते हैं। समिति लेखा नियंत्रक तथा लेखा महापरीक्षक की सरकारी उपक्रमों की रिपोर्ट के उस भाग पर विचार करती है, जो उसे भेजा जाता है।

रिपोर्ट की जाँच के बाद, सरकारी उपक्रम समिति अपने सुझावों सहित इसे संसद में भेजती है। इस समिति की रिपोर्ट के साथ–साथ लेखा नियंत्रक तथा लेखा महापरीक्षक की रिपोर्ट लोक व्यय पर संसद के नियंत्रण का उपयोगी साधन होती है।

संसद का प्रत्यक्ष नियंत्रण (Direct Control of Parliament)

1 संसद में बजट पेश करना।

2 बजट पर आम बहस

3 मांग अनुदानों पर बहस तथा मतदान इसमें तीन प्रकार के कटौती प्रस्ताव किए जा सकते हैं – (a) सांकेतिक कटौती प्रस्ताव, (b) मितव्ययता कटौती प्रस्ताव और (c) नीति कटौती प्रस्ताव।

4 विनियोग बिल पर चर्चा तथा पास करना

5 वित बिल पर चर्चा तथा पास करना

6 बजट राज्य सभा में

बजट परिचर्चा

लेखे (हिसाब) पर बजट के विषय प्रवेश (परिचय) से संसद को बजट–प्रस्तावों पर बहस करने के अनेक अवसर मिलते हैं। संसद सदस्यों को बजट पर चर्चा करने के लिए भिन्न स्थितियों में निम्न अवसर मिलते हैं –

(क) बजट के प्रस्तुतीकरण के बाद आम चर्चा होती है। इस अवसर पर चर्चा समूचे बजट अथवा उसके सिद्धान्तों के किसी भी प्रश्न से संबंधित होती है।

(ख) अनुदानों पर मतदान के समय दूसरा अवसर मिलता है। मांग की प्रत्येक मद पर चर्चा होती है। अगर उसमें उठाए गए विशिष्ट मद पर कटौती प्रस्ताव रखा जाता है तो चर्चा अत्यधिक तर्कसंगत है और इसे विशिष्ट विषय पर संकेन्द्रित किया जा सकता है।

(ग) वित्त विधेयक पर परिचर्चा से समूचे प्रशासन की चर्चा करने के अनेक अवसर मिलते हैं। जी०बी० मावलंकर के शब्दों में ''यह एक स्वीकृत सिद्धान्त है कि वित्त विधेयक में किसी भी विषय पर बहस की जा सकती है और किसी भी शिकायत पर खुले आम विचार–विमर्श किया जा सकता है। नियम यह है कि किसी भी नागरिक को अपने शिकायतों तथा विचारों का प्रतिनिधित्व करने के लिए नहीं बुलाया जाना चाहिए, जब तक संसद उसे इस बात की पूर्ण छूट न दे दे।''

संसद आकंलन समिति और लोक लेखा समिति की रिपोर्टों की जाँच के द्वारा लोक व्यय पर प्रत्यक्ष नियंत्रण करती है। महालेखा परीक्षक तथा समितियों द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्टों पर आम बहस की जाती है। सरकार को, अगर कोई आरोप लगाए गए हों, तो उनका उत्तर देना होता है।

अतः पूर्ववर्ती चर्चा से यह स्पष्ट है कि संसद सरकार के व्यय के लिए धन की स्वीकृति देती है मगर यह निम्न बातों का पता लगाने के लिए समुचित कदम उठाती हैं –

(क) व्यय निर्धारित नियमों के अनुसार हुआ है।

(ख) व्यय में किफायत (मितव्ययता) का ध्यान रखा गया है।

(ग) कोई धोखाधड़ी, गबन और दुष्प्रयोजन तो नहीं किया गया।

सारांश (Conclusion)

सुचारू (सही) प्रशासन की आवश्यकता अनिवार्य हो गई है क्योंकि सरकार के व्यय अत्यधिक बढ़ गए हैं। वित्तीय प्रशासन दिन–प्रतिदिन जटिल होता जा रहा है। इसमें कर–दाताओं से इकट्ठा किए जाने वाले धन का लेखा–जोखा, व्यय तथा उत्थापन आते हैं। निधि की आवश्यकता कार्यपालक को होती है, विधान मंडल द्वारा स्वीकृति, प्रशासनिक मंत्रालयों द्वारा व्यय तथा लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक द्वारा लेखा परीक्षण होता है।

लोकतांत्रिक सिद्धान्तों के अनुसार संसद की पूर्वसहमति को छोड़कर सरकार के द्वारा कोई भी कर न तो लगाया जा सकता है और न ही एकत्र किया जा सकता है और न ही कोई व्यय किया जा सकता है। प्रायः यह तर्क दिया गया है कि संसद का वित्तीय प्रशासन पर नियंत्रण ज्यादा नाममात्र है। अनुदान के लिए अनुरोधों को बदला नहीं जा सकता। क्योंकि उन्हें कार्यपालक द्वारा पेश किया जाता है जो कि संसद के बहुमत का प्रतिनिधित्व करता है। तथापि, सरकार की बजट प्रस्तावों में परिवर्तन करने की शक्ति को पूर्ण रूप से समझना जरूरी है जिसका सरकार संभवतः प्रयोग नहीं करती मगर यह सच्चाई है कि संसद के पास यह अधिकार है कि कार्यपालक पर अत्यधिक प्राधिकार प्रस्तुत करता है।

सरकार के बजट प्रस्तावों में आमतौर पर संसद परिवर्तन नहीं करती परन्तु बजटीय प्रक्रिया सदस्यों को सरकार की नीति की समीक्षा करने के कई अवसर प्रदान करती है। बजट पर आम बहस के दौरान सदस्य सरकार की सामान्य नीति की आलोचना कर सकते हैं और विकल्प भी प्रस्तुत कर सकते हैं। विभिन्न विभागों के अनुदानों पर बहस के दौरान संसद विशिष्ट विभागों की कार्य प्रणाली की विस्तृत जाँच कर सकती है और उसे सुधारने के लिए सुझाव भी दे सकती है। इसी तरह, वित्त विधेयक तथा विनियोजन विधेयक पर बहस के अवसर भी दिए गए हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- बी०पी० सिंह, लेजिसलेटिव कन्ट्रोल ओवर गर्वनमैन्ट एक्सपैंडीचर, नई दिल्ली, बी०आर० पब्लिशिंग हाउस, 1986
- डी०एन० गघोक, पार्लियामेन्टरी कन्ट्रोल ओवर पब्लिक एक्सपैंडीचर, स्टरलिंग, 1976
- ए० प्रेमचन्द, गर्वनमेन्ट बजटिंग एण्ड एक्सपैंडीचर कन्ट्रोलज : थ्यौरी एण्ड प्रकेटिस, 1983
- एस०एल० शकघर, दी बजट एण्ड दी पार्लियामेन्ट, नई दिल्ली, नेशनल, 1979

कुछ प्रश्न

- सार्वजनिक वित्त पर संसदीय नियन्त्रण के तरीकों का वर्णन करो।
- सार्वजनिक वित्त पर संसदीय नियन्त्रण की सीमाओं का वर्णन करो

अध्याय – 8

भारत में लेखा प्रणाली एवं लेखा परीक्षा प्रणाली

(Accounting and Auditing System in India)

इकाई – भारत में लेखा प्रणाली

रूपरेखा

- अर्थ
- उद्देश्य
- लेखा प्रणाली का लेखा परीक्षा से पृथक्करण
- संशोधित लेखा प्रणाली
- विशेषताएं
- सीमाएं
- सारांश
- कुछ उपयोगी पुस्तकें
- कुछ प्रश्न

इकाई : भारत में लेखा परीक्षा

रूपरेखा

- अर्थ तथा महत्व
- लेखा परीक्षण के प्रकार
- परिणाम
- सारांश
- कुछ उपयोगी पुस्तकें
- कुछ प्रश्न

भारत में लेखा प्रणाली एवं लेखा परीक्षा प्रणाली : अर्थ, उद्देश्य तथा विशेषताएं

(Accounting and Auditing System in India : Meaning, Objectives, Features)

चाहे व्यापारिक संगठन हो या शासन लेखा प्रबंध का एक उपकरण होता है। एक उत्पादन संगठन में प्रबंध–समिति को एक वस्तु के निर्माण में आई लागत, एक कार्य को सम्पन्न करने में लगी पूँजी, बिक्री की लागत एवं प्राप्त मुनाफा या हानि के बारे में जानकारी प्रदान करता है। इसी प्रकार एक व्यापारिक संगठन में यह लाभ अथवा हानि एवं संगठन की परिसम्पत्तियों एवं उत्तरदायित्वों में वृद्धि अथवा कमी के बारे में जानकारी प्रदान करना है। यह बजट से सम्बन्धित चीजों के उचित नियंत्रण के लिये आंकड़ों का प्रबन्ध करता है सरकारी कामों में लेखा के प्रबंध के

विभिन्न स्तरों पर योजनाओं की तैयारी एवं उचित वित्तीय नियंत्रण को लागू करने में मदद करता है। विभिन्न गतिविधियों के लिए व्यय की जाने वाली सम्पत्तियों के आंकड़े देकर पहले से ही यह निश्चित करना कि कौन से कर लगाने हैं एवं किन क्षेत्रों में व्यय पर कटौती की जा सकती है, यह बजट आयोजकों की मदद करता है। इसके अतिरिक्त यह प्रबंध समिति की मदद योजनाओं एवं परियोजनाओं के उचित अनुश्रवण और कार्यान्वयन में भी करता है। इस प्रकार लेखा–शास्त्र प्रबंध समिति के लिये एक उपयोगी सहायता है जिससे कि वह अपने विभिन्न प्रबंधकीय कार्यों को प्रभावकारी रूप से पूरा कर सके।

इस इकाई में वाणिज्य लेखा–शास्त्र एवं शासकीय लेखा–शास्त्र के अन्तर की व्याख्या की गई है। शासकीय लेखा–शास्त्र में हाल ही में हुए सुधार यानि लेखा का विभागीकरण, लेखा–शास्त्र की संशोधित संरचना एवं प्रबंध लेखा–शास्त्र की भी व्याख्या की गई है।

लेखा–शास्त्र : परिभाषा एवं महत्व

(Definition and Importance of Accounting)

लेखा शब्द का वित्तीय तात्पर्य इस प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है कि यह उन तथ्यों का विवरण देता है जो धन सम्बन्धी हैं या उन चीजों से सम्बन्धित हो जिनकी धन में मान्यता हो। वह तथ्य जिन्हें लेखा–शास्त्र के विवरण में सम्मिलित किया जाता है ''कार्यविवरण'' कहलाते हैं।

सभ्यता के प्रारम्भिक चरणों में अभिलिखित कार्यविवरण की संख्या इतनी कम थी कि हर एक व्यापारी सभी कार्यविवरण की जाँच एवं अभिलेखन स्वयं कर लेता था। परन्तु व्यापार में वृद्धि के साथ व्यापारी के लिये यह जानना कठिन हो गया कि उसका अपने ग्राहकों के साथ कैसा सम्बन्ध है एवं उसका व्यापार लाभदायक है या नहीं। फलस्वरूप दोहरा लेखा के आधार पर लेखा के अनुरक्षण को बढ़ावा मिला जिससे मुनाफे और घाटे का हिसाब एवं व्यापार के तुलन–पत्र के उपक्रम में मदद मिली। वह प्रक्रिया जिसके द्वारा यह परिणाम प्रभावित होते हैं ''लेखा–शास्त्र'' कहलाती है।

लेखा–शास्त्र एक विषय है, जो आंकड़ों का अभिलेखन, वर्गीकरण एवं संक्षेपण करता है और इन्हें आसान रूप में प्रस्तुत करता है जिससे एक संगठन के प्रबंध के विभिन्न स्तरों को निर्णय लेने के कामों में मदद मिल सके। यह प्रबंधकों को उनकी बजट योजनाएं यथार्थता से बनाने में मदद करता है ताकि व्यय एवं बजट विनियोजन में ताल–मेल बैठ सके और जहाँ जरूरी हो शोधक कार्यवाही की जा सके। यह व्यवसाय संघ की गतिविधियों, लाभ एवं हानि एवं इसके परिसम्पत्तियों तथा उत्तरदायित्वों के बारे में आंकड़े प्रस्तुत कर तथा बाहरी व्यक्तियों जैसे अंशधारियों एवं साथ ही सरकारी की भी तथा व्यवसाय संघ की कार्यप्रणाली के बारे में भी जानकारी प्राप्त करने में मदद करता है।

शासन में लेखा–शास्त्र वार्षिक बजटों के आयोजन के लिये जानकारी प्रदान करता है। यह बजट आयोजकों को पहले से ही यह निर्धारित करनेमें मदद करता है कि प्रतिबद्ध व्यय को पूरा करने के लिए कौन से कर लगाने हैं अथवा जहां कहीं भी संभव हो वहां व्यय को कम करना है। यह प्रबंधकों को वेतन भत्ता, सामग्री आदि पर वार्षिक सम्बद्ध व्यय एवं योजना कार्यक्रमों पर होने वाले व्यय संबंधी जानकारी भी प्रदान करना है। यह प्रकार्यों, कार्यक्रमों, गतिविधियों पर होने वाले व्यय के बारे में जानकारी प्रदान करता है। जिससे सरकारी विभागों में बजट के निष्पादन कार्यों में तीव्र प्रगति हो सके। इसके अतिरिक्त यह उचित वित्तीय नियंत्रण का पालन करने में तथा विभिन्न अधिकारी–वर्गों द्वारा नियमों एवं अधिनियमों के अनुपालन में मदद करता है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रबंध के विभिन्न

स्तरों को समय–समय पर जानकारी देना है जिससे वह अपने कार्यक्षेत्र सम्बन्धी बातों में उचित निर्णय ले सके ताकि गतिविधियों के अनुपालन का उनके भौतिक लक्ष्यों के अनुकूल और व्यय का बजट के अनुकूल संचालन हो सके जिससे सरकार जहां आवश्यक समझे वहां संशोधित कर सके।

शासकीय लेखा–शास्त्र के सिद्धांत एवं विधियां

(Principles and Method of Government Accounting)

वाणिज्य एवं शासकीय लेखा–शास्त्र कुछ मुख्य मुद्दों पर एक दूसरे से भिन्न है। एक व्यापारिक संस्था कार्य वस्तुओं का उत्पादन एवं उनको बेचकर मुनाफा कमाना है। दूसरी ओर सरकार का मुख्य कार्य मुनाफा कमाना ही नहीं बल्कि देश में प्रशासन एवं विभिन्न कार्यों का संचालन भी इस प्रकार करना है जिससे कि पूरे समाज को सामान्य रूप से लाभ हो सके।

एक व्यापारिक संस्था मुख्यतः लाभ के उद्देश्य से पूंजी का प्रयोग करती है। ऐसी संस्था समयान्तराल में यह जानने में रुचि रखती है कि वह अपने देनदार एवं लेनदार के साथ किस प्रकार के सम्बन्ध में हैं। क्या उसे लाभ हो रहा है या हानि, इस लाभ एवं हानि का स्त्रोत क्या है। इन सब सवालों के तत्काल जवाबों की प्राप्ति के लिए इस संस्था को लेखा की विस्तृत प्रणाली रखनी पड़ती है। हर व्यक्ति जिससे व्यापार सम्बन्ध हैं इसकी गतिविधियों के साथ जुड़े हर विभाग को ध्यान में रखते हुए व्यापारिक संस्था एक विशेष लेखा रखती है जिससे कि हर स्थिति में कार्यविवरण के परिणाम का अनुमान लगाया जा सके। उत्पादन, व्यापार और लाभ एवं हानि का हिसाब तथा तुलन–पत्र तैयार करने से संस्था वार्षिक उपार्जित लाभ अथवा हानि के बारे में सफल होती है।

व्यापारिक दुनिया की यह एक सामान्य स्वीकृत प्रथा है कि लेखा–बही दोहरी लेखा प्रणाली पर कायम रहती है। दोहरी लेखा प्रणाली इस वास्तविकता पर आधारित है कि हर सौदे में दो पक्ष शामिल होते हैं – एक देने वाला और एक पाने वाला। इस प्रणाली के अन्तर्गत हर सौदे के लिये बही में दो लेखा होते है एक उस पक्ष या हिसाब के लिए जिसमें से दिया जा रहा है और दूसरा पक्ष या हिसाब के लिये जिसे दिया जा रहा है।

दूसरी ओर सरकार की गतिविधियों का निर्धारण देश की आवश्यकताओं पर निर्भर करता है। अगर आने वाले सालों में कार्यान्वित की जाने वाली गतिविधियों के बारे में पता चल जाए तो इनको पूरा करने के लिये आवश्यक निधि का निर्धारण करना आसान हो जाता है। इस प्रकार शासकीय परिकलन की अभिकल्पना सरकार को यह निर्धारित करने में मदद करती है कि अपनी गतिविधियों को कायम रखने के लिये उसे करदाता से कितना धन एकत्र करने की आवश्यकता है।

शासकीय या सरकारी (government) लेखा में कार्यविवरण का वर्गीकरण दो बातों पर निर्भर करता है – पहली, गतिविधियों का प्रशासनिक वर्गीकरण एवं दूसरी, कार्य विवरण के स्वरूप का वर्गीकरण। इस प्रकार शासकीय लेखा–शास्त्र काफी विस्तृत है और एक लेखा प्रणाली पर चलता है।

लेखा का अंकेक्षण से पृथक्करण

(Separation of Accounting and auditing)

लेखा–शास्त्र एवं लेखा–परीक्षण परस्पर सम्बन्धित परन्तु स्वतन्त्र कार्य हैं। मुख्यतः आर्थिक कारणों को ध्यान में रखते हुए लेखा–शास्त्र एवं लेखा–परीक्षण को पारंपरिक तौर पर एक प्राधिकारी के संरक्षण में सम्मिलित किया गया है। फिर भी समय –समय पर लेखा को अंकेक्षण से अलग करने का प्रयास किया जा चुका है जैसा कि रेलवे, रक्षा,

खाद्य, पुनर्निवास एवं आपूर्ति के विषयों में हुआ है। 1971 में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक ऐक्ट (कर्त्तव्य, अधिकार एवं सेवा शर्तों) पारित किया गया जिसने परिकलन से अंकेक्षण के वियोजन की आवश्यकता की कल्पना की थी। इस अधिनियम की धारा 10 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह सी०ए०जी० (CAG) से परामर्श के पश्चात् नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को सरकार के किसी भी विभाग के संकलन की जिम्मेवारी से उन्मुक्ति दे। जून 1975 में लेखा को अंकेक्षण से अलग करने की एक योजना भारत सरकार द्वारा मंजूर की गई थी। राष्ट्रपति के एक अध्यादेश जारी करने के बाद एक अधिनियम पारित हुआ जिसके अन्तर्गत 1971 के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के अधिनियम को संशोधित किया गया। इसके द्वारा नियंत्रक महालेखा परीक्षक को भारतीय सरकार के मंत्रालयों एवं विभागों के संकलन की जिम्मेवारी से उन्मुक्ति मिल गई। फिर भी वह प्रत्येक राज्य में लेखा एवं अंकेक्षण के कार्यों को पूरा करता है।

संयुक्त लेखा एवं अंकेक्षण के लाभ (Merits of Joint Accounting)

अंकेक्षण एवं लेखा का संयुक्त रूप से एक अधिकारी के संरक्षण में जारी रहना निम्नलिखित तर्कों से समर्थिक किया गया है –

(क) लेखा–शास्त्र एवं लेखा–परीक्षण के कार्य परस्पर सम्बन्धित हैं। आर्थिक तत्वों एवं नियमों से सम्बन्धित दावों के भुगतान के स्वीकरण से पहले पूर्व–अंकेक्षण, इकरारनामें के दस्तावेज की जांच आदि मुख्यतः अंकेक्षण प्रक्रिया है। इस प्रकार दोनों कार्यों का संयोजन गलत नहीं है।

(ख) लेखा संगठन का प्रशासन से स्वतन्त्र होना बहुत जरूरी है जिससे कि यह सुनिश्चित हो सके कि प्रशासन आन्तरिक लेखा–शास्त्र संगठन के नियम विरुद्ध कार्यों को नजरअंदाज कर संदिग्ध दावों को मानने के लिये मजबूर न कर सके।

(ग) वर्तमान पद्धति के अनुसार नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक पर कुछ लेखा–शास्त्र की जिम्मेदारियां थोपी गई हैं। फलस्वरूप केन्द्र एवं राज्य सरकारों के समस्त विभागीय हिसाब तथा संगठन एवं अर्थप्रबन्ध के लेखा के संकलन की व्यवस्था करनी पड़ेगी। समन्वयन का अभिप्राय है कि इकाई में लेखा–शास्त्र के सिद्धांत एवं प्रणालियों में एकरूपता रखनी पड़ेगी।

(घ) दूसरे संघीय संविधानों से भिन्न हमारे संविधान में केवल एक ही नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की व्यवस्था है। इसलिये परिकलन एवं अंकेक्षण को नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के संरक्षण में रखन बेहतर होगा।

संयुक्त लेखा एवं अंकेक्षण से हानियां (Demerits of Joint Accounting)

संयुक्त प्रणाली से होने वाली प्रमुख हानियां निम्न हैं –

(क) यह संविधान एवं 1971 के CAG अधिनियम के प्रावधान के पीछे छिपे मूल भावना का खंडन करती है जिसके अनुसार नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का कार्य मुख्यतः लेखा–परीक्षण से सम्बद्ध होना चाहिए।

(ख) अंकेक्षण कार्यों के साथ भुगतान एवं परिकलन के कार्यों का संयोजन नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को वित्त–मंत्री के अप्रत्यक्ष नियन्त्रण में ले आता है। संसद के सदनों में CAG के लेखा–शास्त्र के कार्यों से सम्बन्धित प्रस्तावित विषयों के मामले में वित्त–मंत्री उत्तरदायी हैं।

(ग) संविधान द्वारा निर्धारित संघीय ढांचे के राज्यों को स्वायत्तता है अगर राज्य लेखा वह कार्यकर्त्ता संभालता है जो कि प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी है तो लेखा–शास्त्र के कार्यों को नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के हाथों सौंपने से राज्यों में लेखा–शास्त्र की स्वायत्तता में कमी आ सकती है।

(घ) संयुक्त लेख एवं अंकेक्षण कार्यालयों की अपने लेखा–शास्त्र कार्यों को निपटाने की गति कम होती है अर्थात् समयानुसार बकाया का भुगतान जैसे वेतन, पेंशन, निर्वाह–निधि, परिदान आदि।

ऊपरलिखित हानियां इतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं कि वह सदा अंकेक्षण एवं लेखा के विभाजन को उचित सिद्ध कर सके। मात्र यह सत्य की रक्षा, रेलवे, लोक सभा एवं राज्य सभा सचिव और उनके कार्य, आवास, आपूर्ति के वियोजित मंत्रालय आदि के अलग–अलग संगठन कार्यकुशलता से काम कर रहे हैं – हर प्रकार के भय को दूर करता है। वास्तव में संयुक्त लेखा एवं अंकेक्षण संगठनों की हानियां उनके लाभों से कहीं अधिक हैं।

लेखा के पृथक्करण अथवा विभागीकरण के लाभ (Merits of Separated Accounting)

लेखा के विभागीकरण के कई लाभ हैं। यह निर्णय गणित विभागों पर अनुमोदित बजट में से उपगत व्यय के लिये निश्चित जिम्मेदारी स्थापित करता है, जो कोई खर्चा करता है उसे व्यय का हिसाब देना चाहिये। परन्तु एक कार्यकारी अपने लेखा–शास्त्र कार्यप्रणाली पर बिना प्रशासनिक नियंत्रण के अपनी वित्तीय एवं लेखा–शास्त्र कार्यप्रणाली पर बिना प्रशासनिक नियंत्रण के अपनी वित्तीय एवं लेखा–शास्त्र की जिम्मेदारियां प्रभावकारी रूप से नहीं निभा पाएगा।

लेखा का पृथ्थकरण (Separation of Accounting)

लेखा को अंकेक्षण से अलग करने की बढ़ती हुई आवश्यकता को समझते हुए भारत सरकार ने केन्द्रीय मंत्रालयों एवं विभागों के लेखा जो भारत के 1 अप्रैल से 31 दिसम्बर 1976 के बीच नियंत्रण एवं महालेखा परीक्षक के पास था, के विभागीकरण का निर्णय लिया। भारत सरकार के सभी मंत्रालयों को जिनमें डाक एवं तार विभाग भी सम्मिलित हैं विभागीकरण की योजना के अन्तर्गत लाया गया।

लेखा का विभागीकरण (Departmentation of Accounting)

पहली अप्रैल 1976 में लागू की गई लेखा के विभागीकरण की योजना इस सम्बन्ध में किए गए पूर्व की प्रकृति एवं पद्धति में भिन्न हैं। इस योजना के पीछे मुख्य उद्देश्य यह था कि सरकारी व्यय में बहुविध वृद्धि का एवं विकास योजनाओं के प्रभावकारी रूप से कार्यान्वित करने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए प्रबन्ध लेखा –शास्त्र के प्रत्येक मंत्रालय / विभाग का अनिवार्य अंग के रूप में उचित विकास होना चाहिए। यह अनुभव किया गया कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये लेखा–शास्त्र प्रणाली के बाहरीपन को हटाना होगा एवं अनुप्रस्थ प्रशासनिक एकीकरण के साथ प्रबन्ध समिति के हर स्तर पर अनुलम्ब कार्यात्मक एकीकरण होना भी अनिवार्य है। तदनुसार लेखा के विभागीकरण में न केवल नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की लेखा संकलन की जिम्मेदारी से उन्मुक्त करना शामिल था बल्कि राजकोषों से अधिकांश भुगतान एवं प्राप्ति के कार्यों का भार व्यवस्थित करना भी सम्मिलित था।

विभागीकरण की योजना की मुख्य विशेषताओं का विस्तृत वर्णन नीचे दिया गया है –

1 हर मंत्रालय प्रशासनिक रूप से एक सचिव के देख–रेख में काम करता है। इस सचिव को अपर–सचिव, सह–सचिव एवं उप–सचिव जिन्हें अधीनस्थ कर्मचारियों की मदद प्राप्त है सहयोग देते हैं। मुख्यालयों के संगठन के अतिरिक्त पूरे भारत में हर मंत्रालय अपने साथ जुड़े हुए अधीनस्थ कार्यालयों के द्वारा कार्य करता है।

2 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को मंत्रालयों के विभागों से सम्बन्धित कार्यविवरण के लेखा के संकलन एवं अनुरक्षण के दायित्व से कार्यमुक्त किया गया है। कोषागारों द्वारा विमुक्त किए गए भुगतान कार्यों को भी

विभागों ने संभाल लिया है। पद्धति के अनुसार लेखा के विभागीकरण से पहले मुख्य मंत्रालय एवं अधीनस्थ कार्यालय कोषागार में बिल प्रस्तुत करके निधि प्राप्त करते थे। कोषागार अपने–अपने लेखापाल परमाधिकारी को लेखा देते थे और वह मासिक लेखा संकलित करते थे। प्रत्येक लेखापाल परमाधिकारी सरकारी लेखा के निश्चयीकरण एवं आयोजन के लिये दिल्ली में केन्द्रीय राजस्व के लेखापाल परमाधिकारी को केन्द्रीय सरकार के कार्य विवरण का मासिक लेखा प्रस्तुत करते थे।

3 प्रत्येक मंत्रालय के सचिव को प्रधान लेखा अधिकारी के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है जो मंत्रालय व उसके विभागों के सभी कार्य विवरण के लिये जिम्मेवार होता है। यह उत्तरदायित्व मंत्रालय के समाकलित वित्तीय सलाहकार के द्वारा विमुक्त होता है। लेखा एवं भुगतान के कार्य को करने की समस्त जिम्मेवारी सचिव की है और वह मासिक लेखा के प्रमाणीकरण के लिये भी उत्तरदायी होता है।

4 समाकलित वित्तीय सलाहकार प्रधानलेखा अधिकारी की ओर से निम्नलिखित कार्य करता है। उसकी जिम्मेवारियां हैं –

(क) सम्बन्धित विभागों के अध्यक्षों के समन्वयन में मंत्रालय एवं उसके विभागों के बजट को आयोजना और मंत्रालय के विभिन्न विभागों / शाखाओं के बीच बजट नियतन का वितरण। व्यय नियंत्रण भी इसकी जिम्मेवारी का एक भाग है।

(ख) कार्यालय आकस्मिक व्यय, फुटकर भुगतान एवं वेतन व भत्ता के भुगतान।

(ग) केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुदेशों के अनुसार समस्त मंत्रालय के लेखा का दृढ़ीकरण।

(घ) मंत्रालय द्वारा नियंत्रित अनुदान के लिये उचित लेखा का आयोजन।

(ड़) एक ठोस भीतरी जांच की पद्धति का संगठन जिससे कि प्रबंध समिति के कर्त्तव्य के रूप में संचालन की कार्यकुशलता एवं लेखा–शास्त्र में यथार्थता सुनिश्चित हो सके।

(च) प्रबन्ध लेखा–शास्त्र के एक प्रणाली की प्रस्तावना जो मंत्रालय एवं उसके विभागों के कार्यात्मक कार्यों के लिये अधिक से अधिक उपयुक्त हों।

5 मंत्रालयों / विभागों से संबंधित भुगतान कार्य जो अभी तक लेखा परमाधिकारी व राज्य लेखा एवं लेखापाल करते थे अब विभागीय भुगतान एवं लेखा कार्यालय किया करेंगें।

संक्षिप्त में लेखा का विभागीकरण मुख्यतः इसलिये किया गया था कि मंत्रालय अपने व्यय पर सीधा नियंत्रण रख सके एवं एक ऐसी प्रबन्ध लेखा–शास्त्र प्रणाली को लागू कर सकें जिससे कि उचित निर्णय लेने के लिये प्रबन्ध समिति के विभिन्न स्तरों को संबद्धित जानकारी मिल सके।

लेखा–शास्त्र की संशोधित संरचना

(Modified Structure of Accounting)

अंग्रेजों द्वारा इस शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में लागू की गई लेखा–शास्त्र की प्रणाली अप्रैल 1974 तक लगभग वैसी ही रही। अंग्रेजों द्वारा लेखा–शास्त्र की प्रणाली में लागू की गई वर्गीकरण की प्रणाली मुख्यतः विधानमण्डल की ओर एवं कार्यपालिका के अन्दर वित्तीय एवं कानूनी उत्तरदायित्व को सरल बनाने के लिए तथा व्यय अभिकरण के अनुमोदन प्राधिकारों के वित्तीय एवं कानूनी उत्तरदायित्व को सरल बनाने के लिए है। इसके अतिरिक्त वर्गीकरण का उन उद्देश्यों की अपेक्षा जिनके लिए धन खर्च किया गया था उस विभाग से अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध था जहाँ खर्च किया गया है। मूल सम्बन्ध धन द्वारा उद्देश्यों की आपूर्ति से नहीं बल्कि उस वस्तु से था जिस पर धन खर्च किया गया था। जब तक सरकार के कार्य सीमित थे यह प्रणाली लाभदायक सिद्ध हुई। परन्तु सरकार के कार्यों में

बदलाव आने के साथ, जैसे क्रमशः पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत देश के सामाजिक–आर्थिक उन्नति के लिये विकास कार्यों की शुरूआत तथा विकास प्रशासन की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिये लेखा प्रणाली में जरूरी सुधार लाने की आवश्यकता को महसूस किया गया।

प्रशासन में सुधार लाने के लिये 1966 में सरकार द्वारा प्रशासनिक सुधार समिति का गठन किया गया। इस समिति ने लेखा की मौजूदा प्रणाली को जांचा एवं ''वित्तीय लेखा व अंकेक्षण'' पर अपनी रिपोर्ट में प्रणाली में कुछ बदलाव लाने का सुझाव दिया। यह मुख्यतः भारत में प्रबन्ध बजट की प्रस्तावना के सम्बन्ध में किया गया था। समिति ने यह सुझाव दिया कि लेखा के मुख्य विषयों के ढाँचे को नया रूप देना चाहिए जिससे सरकार के मुख्य कार्य एवं योजनाएं प्रतिबिम्बित हो सके। इसके अतिरिक्त, विभिन्न विभागों एवं संस्थाओं के कार्यक्रम, गतिविधियों व योजनाओं की स्पष्ट रूप से पहचान स्थापित करनी होगी और उपयुक्त सुधार लाने होंगे। यह सुझाव भी दिया कि योजना उद्देश्यों के लिए अपनाए गए विकास विषयों की समीक्षा इस दृष्टिकोण से की जानी चाहिए जिससे कि इन विषयों एवं लेखा के सामान्य विषयों में प्रत्यक्ष सहसम्बन्ध स्थापित हो सके। समिति ने यह भी प्रस्ताव किया कि सरकार को एक ऐसे दल का गठन करना चाहिए। जिसमें कि नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, योजना आयोग, वित्त मंत्रालय एवं प्रशासनिक मंत्रालय के प्रतिनिधि शामिल हों एवं उन्हें प्रस्तावों के कार्यान्वयन के लिये योजनाओं के निर्माण का कार्य देना चाहिए।

भारत सरकार ने समिति द्वारा दिये गए सुझावों को स्वीकार कर लिया। योजना के उद्देश्य से लेखा एवं विकास विषयों की समीक्षा का कार्यभार संभालने के लिये सरकार ने एक अधिकारी दल को नियुक्त किया जिसमें कि उप–नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, वित्त मंत्रालय के संयुक्त सचिव (बजट) और योजना आयोग के एक प्रतिनिधि शामिल थे। इस दल ने इस विषय पर दो रिपोर्टें पेश कीं। पहली रिपोर्ट जो कि अक्टूबर 1971 में पेश की गई अनुदान की मांग के ढाँचे में सुधार से सम्बन्ध रखती थी। रिपोर्ट के पहले भाग में यह सुझाव दिया गया कि पृथक सेवाओं के प्रभारी के रूप में मंत्रालय / विभाग प्रत्येक मुख्य सेवाओं (Major Services) के लिये अलग मांग पेश कर सकते हैं। रिपोर्ट के दूसरे भाग में लेखा के मुख्य तथा लघु विषयों के स्तर पर व्यय का विस्तृत वर्णन सम्मिलित किया गया है। रिपोर्ट के तीसरे भाग में दो में लघु विषय एवं इसके अधीन गतिविधियों / योजनाओं / समस्याओं के निवेश से सम्बन्धित विषयों का विस्तृत विवरण दिया गया है। इस दल ने दूसरी रिपोर्ट नवम्बर 1972 में पेश की थी जिसमें पांच स्तरीय वर्गीकरण के ढांचे का प्रस्ताव किया गया।

इस दल ने यह उल्लिखित किया था कि नया वर्गीकरण बजट, लागत और कार्यों के बीच व योजनाओं और गतिविधियों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने में मदद करेगा। यह व्यय पर मदवार (Itemised) नियंत्रण को भी निश्चित करेगा। इसके अतिरिक्त वर्गीकरण निष्पादन बजट को लागू करने में भी मदद करेगा।

भारत सरकार ने लेखा तथा बजट के ढांचे में दल द्वारा पेश की गई सुधार से सम्बन्धित परामर्श को स्वीकार कर लिया।

अप्रैल 1974 से भारत सरकार ने एक संशोधित लेखा–शास्त्र की संरचना लागू की। इस योजना के अन्तर्गत पांच स्तरीय वर्गीकरण अर्थात् लेखा के क्षेत्रीय मुख्य विषय, लघु विषय, उपविषय एवं विस्तृत विषयों को लागू किया गया। क्षेत्रीय वर्गीकरण ने सरकार के कार्यों को तीन खंडों अर्थात् सामान्य सेवाएं, सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाएं और आर्थिक सेवाओं में समुहित किया है। सामान्य सेवा क्षेत्र में वह सेवाएं जो राज्य के अस्तित्व के लिये अनिवार्य

हैं जैसे – पुलिस, रक्षा, बाहरी मामले, अग्नि सुरक्षा आदि सम्मिलित की गई हैं। इस खण्ड में राज्य के अंग (संसद) राज्य के प्रधान, न्यायपालिका, वित्तीय एवं प्रशासनिक सेवाएं और रक्षा सेवाएं शामिल हैं।

सामाजिक एवं सामुदायिक सेवा खण्ड उन योजनाओं एवं गतिविधियों को सम्मिलित करता है जो उपभोक्ता तक मूल सामाजिक सेवाएं पहुंचाने से सम्बन्ध रखती हैं जैसे कि शिक्षा, डॉक्टरी राहत, आवास, सामाजिक सेवाएं पहुंचाने से सम्बन्ध कल्याण एवं सामुदायिक निर्वाह के लिये अनिवार्य सेवाएं जैसे सार्वजनिक स्वास्थ्य, शहरी विकास, प्रसारण आदि। आर्थिक सेवा खंड उत्पादन, वितरण, व्यापार अधिनियम से सम्बन्धित गतिविधियों एवं योजनाओं को सम्मिलित करती है।

लेखा की नई योजना में हर कार्य को एक मुख्य विषय सौंपा गया है एवं प्रत्येक योजना को एक लघु विषय दिया गया है। प्रत्येक लघु विषय के अधीन कार्यक्रम में शामिल गतिविधियां / योजना / संगठन से सम्बन्धित उप लघु विषय होंगे। केन्द्रीय, राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेशों की सरकार के लिये मुख्य एवं लघु विषयों का वर्गीकरण एक समान है। नई योजना के अन्तर्गत उद्देश्य के वर्गीकरण को अंतिम स्तर (Last-tier) पर रखा गया है। इसका उद्देश्य व्यय पर विषय–क्रम नियंत्रण करना है और वित्तीय नियंत्रण सुनिश्चित करना है।

कार्यक्रम गतिविधियां एवं योजना के सम्बन्ध में लेखा–शास्त्र की संशोधित संरचना बजट व लेखा विषयों (अर्थात् मुख्य विषय, लघु विषय एवं उप–विषय) और विकास के योजना विषयों के बीच पर्याप्त सम्बन्ध स्थापित करती हैं। यह योजना कार्यक्रमों व परियोजनाओं पर उपगत वर्तमान व्यय के बारे में जानकारी प्राप्त करने में मदद करती है। यह प्रबन्ध बजट प्रक्रिया के शीघ्र कार्यान्वयन में भी मदद करती है। इसके अतिरिक्त यह प्रबन्ध समिति के कार्य को प्रभावकारी रूप से पूरा करने के लिये बनाए गए कार्यक्रम / गतिविधियों / योजनाओं पर हुए व्यय के विश्लेषण एवं अनुश्रवण में भी मदद करती है।

शासन में प्रबन्ध लेखा (Management Accounting in Government)

अमेरिका में लेखा–शास्त्र संस्था के अनुसार प्रबन्ध लेखा–शास्त्र एक ऐतिहासिक एवं प्रक्षेपित आर्थिक आंकड़ों के संसाधन के लिये प्रक्रियाओं एवं धारणाओं का उपयुक्त तकनीक है जिससे कि प्रबन्ध समिति को यथोचित आर्थिक उद्देश्यों के विचार से बुद्धि सम्मत निर्णय लेने में सहयोग मिले। प्रबन्ध लेखा–शास्त्र में ऐसी सारी जानकारी का एकत्रीकरण एवं प्रस्तुति शामिल है जो संस्था के लिये बजट योजनाएं बनाने में प्रबन्ध समिति के लिए मददगार साबित हो सकती है। वित्तीय व्यय एवं अनुकूल भौतिक उपलब्धियों से सम्बन्धित बजट योजना की तुलना में गतिविधियों के कार्यों के उचित अनुश्रवण एवं मूल्यांकन में भी यह सहयोग देता है। इसका उद्देश्य प्रबन्ध समिति के विभिन्न स्तरों को समय–समय पर जानकारी प्रदान करना है जिससे कि उन्हें निर्णय लेने में सरलता हो एवं वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति लाभकारी एवं प्रभावकारी रूप से कर सकें।

प्रबन्ध लेखा–शास्त्र में वित्तीय लेखा–शास्त्र, लागत लेखा–शास्त्र एवं वित्त– व्यवस्था के सभी पहलू सम्मिलित हैं, इससे न केवल वित्त–अभिलेख से बल्कि लागत–अभिलेख से भी जानकारी का एकत्रीकरण शामिल है। प्रबन्ध लेखा–शास्त्र की प्रणाली में जानकारी संस्था के विभिन्न भीतरी एवं बाहरी स्त्रोतों से एकत्र की जाती है और प्रबन्ध समिति को निर्णय लेने के लिये प्रदान की जाती है।

एक अच्छी प्रबन्ध लेखा–शास्त्र की प्रणाली को प्रबन्ध समिति के विभिन्न स्तरों को समय पर जानकारी पहुंचानी चाहिए जिससे बजट निधि एवं आयोजित कार्यों से सम्बन्धित व्यय में वृद्धि की निरन्तर समीक्षा हो सके। इसे निष्पादन बजट के कार्यों की योजना की प्रक्रिया को सरल बनाना चाहिए।

प्रबन्ध लेखा–शास्त्र संस्था के संगठन अपने उद्देश्यों, संस्थानिक ढांचें एवं विभिन्न स्तरों की सूचना आवश्यकताओं आदि के हिसाब से भिन्न होता है। शासन में प्रबन्ध लेखा–शास्त्र की एक सामान्य प्रणाली का निर्धारण जो सभी सरकारी विभागों के लिये उपयुक्त हो बहुत कठिन है, क्योंकि प्रत्येक विभाग के कार्य एक–दूसरे से भिन्न होते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि एक ऐसी प्रबन्ध लेखा–शास्त्र की प्रणाली विकसित की जाए जो एक विभाग के लिये उसके उद्देश्यों संस्थानिक ढांचों, सूचना आवश्यकताओं आदि को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त साबित हों। इसके अतिरिक्त एक बार लागू की गई प्रबन्ध लेखा–शास्त्र की प्रणाली पर समय–समय पर पुनर्विचार करना चाहिए। जिससे कि एक विशेष विभाग की बदलती हुई आवश्यकताओं का सामना किया जा सके।

1976 में वित्त मंत्री की अध्यक्षता में भारत सरकार द्वारा विभिन्न मंत्रालयों / विभागों की आवश्यकताओं के अनुकूल प्रबन्ध लेखा–शास्त्र की धारणाओं पर विचार एवं उनकी अनुशंसा करने के लिये एक परामर्श समिति नियुक्त की गई थी। इसके लिये आवश्यक प्रबन्ध सूचना प्रणाली के विकास से सम्बन्धित परामर्श देना भी इस समिति का काम था। परन्तु विभिन्न प्रतिबंधों के कारण इस क्षेत्र में बहुत कम उन्नति हो पाई है।

शासन में प्रबन्ध लेखा प्रणाली के विकास में प्रतिबंधों को पहचानना चाहिए। शासन लेखा नकद–आधार (न कि दोहरा लेखा आधार) पर किया जाता है जिसकी वजह से एक कार्य के सम्पूर्ण लागत के बारे में जानना कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त वित्त–लेखा का मौजूदा ढांचा प्रबन्ध लेखा के उद्देश्यों की आपूर्ति में सहायक नहीं है। लेखा का मौजूदा वर्गीकरण लागत केन्द्र या दायित्व केन्द्र को खर्च नहीं बांटता जिससे कि सामान्य लागत से वास्तविक लागत का मूल्यांकन हो सके। यद्यपि कार्यों, योजनाओं, गतिविधियों से सम्बन्धित निष्पादन बजट के कार्यों के लिये विकसित वर्गीकरण का ढांचा एक योजना अथवा कार्य के व्यय के अनुश्रवण में मदद करना था फिर भी शासन के प्रबन्ध लेखा के शीघ्र विकास के लिये अभी भी वर्गीकरण का लागत केन्द्र अथवा दायित्व केन्द्र से सम्बन्ध होना अनिवार्य है

अन्त में निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत सरकार के हाल ही में हुए वित्तीय सुधार जैसे कि लेखा की संशोधित संरचना, लेखा का विभागीकरण, निष्पादन बजट के कार्य, वित्त परामर्श योजना आदि सभी शासन में प्रबन्ध लेखा के शीघ्र प्रारम्भ में मदद करने के लिये हुए हैं। वह सुधार जो शुरू किये जा चुके हैं उन्हें आगे बढ़ाना चाहिए ताकि एक मंत्रालय / विभाग में विकसित प्रबन्ध लेखा की प्रणाली सम्बन्ध समिति के विभिन्न स्तरों को समय–समय पर जानकारी प्रदान कर सके जिससे कि वह शीघ्र निर्णय ले सकें।

इस प्रकार इस इकाई में शासकीय लेखा–शास्त्र के क्षेत्र में इस शताब्दी के आरम्भ से अब तक हुई उन्नति की व्याख्या की गई है। प्रबन्ध लेखा–शास्त्र के महत्व एवं शासन में इसके परिसीमन की भी व्याख्या की गई है।

लेखा परीक्षा प्रणाली (Auditing System)

लेखा परीक्षण का संबंध कागजों तथा आंकड़ों से है। यह एक प्रकार से किसी फर्म, कम्पनी अथवा किसी सरकारी विभाग के वित्तीय सौदों तथा लेखाकरण (Accounting) उसका शव–परीक्षण (Post-mortem) है।

आधुनिक अर्थव्यवस्था में लेखा परीक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। सीमित अनुग्रह वाली संयुक्त–संबंध कंपनियों में वृद्धि के साथ मालिकों (अंशधारी) तथा प्रबंधकों (संचालक मंडल) के बीच एक प्रकार का ''तलाक'' सा हो गया है। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि कोई ऐसा निपेक्ष लेखा परीक्षक हो जो अंशधारियों की ओर से प्रबंधकीय उत्तरदायित्व के रूप में ऐसी सीमित–अनुग्रह वाली कंपनियों के वित्तीय सौदों की यथेष्ठता का परीक्षण कर सके। इसी प्रकार लेखा परीक्षक द्वारा प्रमाणित हिसाब– किताब के आधार पर कर अधिकारी भी इस बात पर बहुत

हद तक विश्वस्त हो सकते हैं कि कर–निर्धारकों द्वारा बताये गए लाभ और हानि के आंकड़े करीब–करीब ठीक हैं तथा उन्हें कर–निर्धारित के हिसाब–किताब की जांच की आवश्यकता नहीं है।

जहाँ तक सरकारी गतिविधियों का संबंध है, लेखा परीक्षण राष्ट्र के वित्तीय हितों के प्रहरी का काम करता है। सरकार की प्रशासनिक संरचना इतनी विशाल है और इसकी कार्यवाहियां इतनी जटिल है कि एक सामान्य कर दाता के लिये यह जानना असंभव है कि उसके द्वारा सरकार चलाने के लिये दिये जाने वाले धन का दुरुपयोग तो नहीं हो रहा।

लेखा परीक्षण उचित स्तरों पर किये गये अनुचित निर्णयों के कारण हुई हानि, क्षय तथा क्षमता के आंशिक प्रयोग का विशेष रूप से वर्णन करने में सहायक होता है। संसद तथा राज्य विधान मंडल तो केवल अनुदान पारित करते हैं। यह जानने के लिये उनके पास कोई ऐसा साधन नहीं होता कि धनराशि उन्हीं उद्देश्यों के लिये खर्च की गई है जिनके लिये उन्हें पारित किया गया था तथा पारित अनुदान से अधिक तो खर्च नहीं किया गया है। नियंत्रण के इस महत्वपूर्ण पहलू के सुचारु प्रयोग के लिए संसद को यह सांविधानिक लेखा परीक्षण अधिकार महालेखा परीक्षक के रूप में दिया गया है ताकि सार्वजनिक हिसाब का परीक्षण किया जा सके।

इस इकाई में आप लेखा परीक्षण के महत्व एवं अर्थ तथा भारत में इसके उत्कर्ष के बारे में पढ़ेंगे। इस इकाई में आपको प्रशासन का खर्च घटाने तथा उसकी दक्षता बढ़ाने हेतु महालेखा नियंत्रक एवं लेखा परीक्षक द्वारा किये जाने वाले लेखा परीक्षण के विभिन्न तरीकों की जानकारी मिलेगी। इस इकाई में यह भी बताया जायेगा कि लोक सभा की Public Accounts Committee द्वारा लेखा परीक्षण रिपोर्टों की जांच का कितना महत्व है।

लेखा परीक्षण–परिभाषा एवं महत्व

(Definition and Importance of Auditing)

शब्द ''लेखा–परीक्षण'' लैटिन भाषा के शब्द ''Audire'' से निःसत हुआ है। पहले लेखा मंडलियां लेखा परीक्षक के सम्मुख प्रस्तुत होकर लेखे का वृत्तांत सुनाती थीं। सभ्यता के प्रारंभिक चरणों में लेखा विधियां इतनी अशिष्ट होती थी और रिकार्ड करने वाले सौदों की संख्या इतनी थोड़ी होती थी कि हर व्यक्ति अपने सौदों की जांच स्वयं ही कर सकता था, परन्तु साम्राज्यों की स्थापना के साथ लेखा सौदों का हिसाब रखने तथा उनके लेखा परीक्षण की प्रणाली का भी उत्कर्ष हुआ। जिस व्यक्ति को हिसाब– किताब करने का दायित्व दिया गया वह ''लेखा–परीक्षक'' के नाम से जाना जाने लगा।

लेखा परीक्षण लेखा रिकार्ड की ऐसी जांच पड़ताल है जो यह सुनिश्चित करने के लिये की जाती है कि यह रिकार्ड पूर्णतया एवं सत्य रूप से उन सभी सौदों को प्रतिबिंबित करता है जिनसे यह सम्बन्धित है। इसका उद्देश्य यह देखना है कि किये गए व्यय के लिए उचित अधिकारियों की स्वीकृति ले ली गयी है या नहीं तथा धन उन्हीं कामों पर खर्च किया गया या नहीं जिसके लिये स्वीकृति प्रदान की गयी थी। धन के दुरुपयोग तथा जालसाजी के परिपेक्ष्य के रूप में यह व्यय आधार–पत्रों द्वारा प्रमाणित होना चाहिये।

लेखा परीक्षण वित्तीय नियंत्रण का एक उपकरण है। व्यापारिक सौदों से अपने संबंधों में, यह स्वामी की ओर से अपव्यय, असावधानी अथवा धन एवं दूसरी परिसंपत्ति की वसूली तथा उसके उपयोग में कर्मचारियों द्वारा की जाने वाली जालसाजी के विरुद्ध एक रक्षोपाय का काम करती है। स्वामी की ओर से यह सुनिश्चित करता है कि सुचारु तथा सही रूप से रखे गये हिसाब–किताब केवल तथ्यों को दर्शाते हैं तथा किया गया व्यय उचित नियमितता एवं

औचित्य के अनुकूल है। सरकार के वित्तीय सौदों को भी इसी प्रकार देखा जाता है। इस उद्देश्य के लिये प्रयोग किया गया माध्यम स्वतंत्र होना चाहिए तथा सरकार के उन कर्मचारियों पर आश्रित नहीं होना चाहिए जिनका काम सार्वजनिक धन एवं दूसरी परिसंपत्ति की वसूली तथा उपयोग करना है। भारत में यह कार्य भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा विभाग को सौंपा गया है। जहाँ तक इसके लेखा परीक्षण के दायित्वों का संबंध है, भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा विभाग (Indian Audit and Accounts Department) की स्थिति सरकारी सौदों में बड़ी हद तक लेखा परीक्षक जैसी है। इस संदर्भ में संसद, विधान मंडलों को ''सरकारी संस्था'' के अंशधारी के रूप में देखा जा सकता है जिसमें ''कार्यपालिका सरकार'' (Executive Government) को इस संस्था का निदेशक माना जा सकता है, फिर भी इस ''संस्था'' का उद्देश्य लाभ कमाना नहीं है।

लेखा परीक्षण लोकतंत्र के चार स्तंभों में से एक है। ये स्तंभ हैं (i) संसद, (ii) न्यायतंत्र, (iii) समाचार पत्र तथा (iv) लेखा परीक्षण। प्रथम स्थान पर संसद लोकतंत्र का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग है। यह व्यस्क मताधिकार के आधार पर चुने गये जनता के प्रतिनिधियों द्वारा निर्मित है। संसद में बहुमत प्राप्त दल के प्रतिनिधि सरकार का गठन करते हैं। सरकार चलाने के लिये आवश्यक सारे कानून संसद द्वारा ही पारित किये जाते हैं। संसद उन करों को स्वीकृति प्रदान करती है जिनसे सरकार प्रशासनिक मशीनरी चलाने के लिये साधन जुटाती है। दूसरे स्थान पर न्यायतंत्र एवं समाचार–पत्र यह दो स्तंभ आते हैं जो न्याय प्रशासन तथा एक स्वस्थ लोकतंत्र को संचालन के लिए आवश्यक हैं। अंत में आता है लेखा परीक्षण जो संसद को ''कार्यपालिका'' के ऊपर वरिष्ठता को सुनिश्चित करने तथा नियंत्रण में केवल प्रदय पारित करना तथा कर निश्चित करना ही शामिल नहीं होता है अपितु यह सुनिश्चित करना भी शामिल होता है कि अनुदान की राशि उन्हीं उद्देश्यों के लिये खर्च की गई है या नहीं जिनके लिये उसे पारित किया गया था।

लेखा परीक्षण प्रशासन को मूल्यवान प्रदान करता है। सभी देशों में लेखा परीक्षण को केवल एक आवश्यक बुराई के रूप में नहीं देखा जाता है बल्कि एक ऐसे अच्छे साथी के रूप में देखा जाता है जो कार्यविधि विषयक एवं तकनीकी अनियमितताओं तथा व्यक्तियों के दोषों को सामने लाता है चाहे वे मूल्यांकन से जुड़ी त्रुटियां हों या असावधानियां अथवा कपट के इरादे से किये गये कार्य हों। सरकारी मशीनरी को अधिक स्वस्थ बनाने की आवश्यकता होने के कारण लेखा परीक्षण तथा प्रशासन की पूरक भूमिकाओं को वास्तविक रूप में स्वीकार कर लिया गया है। अंतिम विश्लेषण के रूप में यह कहा जा सकता है कि लेखा परीक्षण और प्रशासन सरकारी मशीनरी के संघटक हैं। अधिकतम परिणाम तभी प्राप्त किये जा सकते हैं जब इन दोनों संघटकों के कार्यों में समन्वय हो।

भारत में लेखा परीक्षण (Auditing in India)

भारत तथा अन्य देशों में लेखा परीक्षण का उत्कर्ष एक कृत्रिम प्रक्रिया है। यह सरकारी गतिविधियों से संबंधित रही है। इसका संबंध आन्तरिक नियंत्रण तथा सरकारी विभागों की प्रबंध व्यवस्था से भी रहा है।

युद्ध से पूर्व सरकार के मुख्य काम होते थे राजस्व इकट्ठा करना, कानून और व्यवस्था बनाये रखना, देश की रक्षा करना तथा कुछ प्रकार के निर्माण कार्य को करना। बहुत कम सरकारें वाणिज्य गतिविधियों में भाग लेती थीं। ऐसी परिस्थिति में लेखा परीक्षण का काम मुख्यतः नियमित लेखा परीक्षण तथा अनुपालन लेखा परीक्षण (Compounce Audit) तक ही सीमित होता था। युद्ध से पूर्व लेखा परीक्षण के मुख्य अंश होते थे (क) बजट में किये गये प्रावधानों का लेखा परीक्षण (ख) दी गई स्वीकृतियों का लेखा परीक्षण (ग) धन के हिसाब–किताब एवं विनियोजन का लेखा परीक्षण (घ) व्यय का लेखा परीक्षण तथा (ड़) औचित्य लेखा परीक्षण। बजट में किये गये

प्रावधानों तथा दी गयी स्वीकृतियों के लेखा परीक्षण को अनुपालन लेखा परीक्षण के नाम से जाना जाता था। परंपरागत रूपरेखा के अन्दर लेखा परीक्षण का सर्वश्रेष्ठ रूप माना जाता था औचित्य लेखा परीक्षण। ऐसे सौदों पर भी जो हर प्रकार से ठीक था तथा व्यवस्था एवं नियमों के अनुरूप था, लेकिन आपत्ति केवल इस आधार पर की जा सकती थी कि यह सौदा व्यापक धारणाओं तथा नैतिक नियमों का उल्लंघन करता था।

युद्ध के बाद जन कल्याण वाले राष्ट्रों को कई ऐसी सामाजिक एवं आर्थिक, व्यापारिक एवं औद्योगिक परियोजनाएं चलानी पड़ी जिनसे विकास की गति बढ़ सके और जिनसे जनता के जीवन स्तर में सुधार लाया जा सके। लेखा परीक्षण का महत्व भी इसके अनुकूल बदल गया जिससे लेखा परीक्षक संसद को इस बारे में रिपोर्ट दे सकता था कि ये परियोजनाएं सही गतिविधियों के उद्देश्य से पूरे हुए हैं या नहीं। परिणामस्वरूप नये क्षेत्रों में लेखा परीक्षण का विस्तार किया गया और इसकी नई विधियां विकसित की गई। गतिविधियों में विस्तार के साथ ही सरकारी विभागों तथा अभिकरणों को आन्तरिक नियंत्रण के लिये अपनी–अपनी प्रणालियां विकसित करनी पड़ीं। इस प्रकार परंपरागत लेखा परीक्षण से लेकर गतिविधियों की अर्थव्यवस्था, दक्षता एवं प्रभावशीलता के लेखा परीक्षण तक का परिवर्तन संभव हुआ। लेखा परीक्षण नाम के अंतस्थ चरण द्वारा ''धन का मूल्य'' अर्थव्यवस्था तथा दक्षता के इन पहियों को अपनी परिधि में ले आया।

सांविधानिक लेखा परीक्षण का उद्देश्य तीन परतों (Three-Fold) वाला है। सबसे पहले यह लेखा कार्य का परीक्षण है जो इस बात की जांच करता है कि गणना से सम्बद्ध कोई गलती है या नहीं। उसे यह भी देखना है कि सारे भुगतान रसीदी परचियों द्वारा प्रमाणित है या नहीं। सार में यह निजी लेखा परीक्षकों के सीमित परीक्षण से भिन्न नहीं है। इसके उद्देश्य हैं (i) जालसाजी की खोज, (ii) तकनीकी गलतियों की खोज तथा (iii) सिद्धांत की गलतियों की खोज। आमतौर पर यह एक निरंतर लेखा परीक्षण है किंतु सौदों के एक छोटे से प्रतिशत तक ही। दूसरी बात यह है कि यह व्यय के वर्गीकरण की जांच करने का विनियोजन लेखा परीक्षण हैं यह लेखा परीक्षण इसलिए किया जाता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि व्यय लेखा पद्धति की उचित इकाइयों में डाला गया है या नहीं तथा यह व्यय उस धनराशि से अधिक तो नहीं है जिसका प्रावधान किया गया हैं तीसरी बात यह है कि यह एक प्रकार का प्रशासनिक लेखा परीक्षण अथवा स्वीकृतियों का लेखा परीक्षण है जो यह जांच करने के लिये है कि व्यय निर्धारित व्यवस्था एवं नियमों के अनुसार किया गया है या नहीं तथा इस व्यय के लिये उचित अधिकारियों की स्वीकृति प्राप्त कर ली गयी है या नहीं।

सांविधानिक लेखा परीक्षा संसद को इस बात का विश्वास दिला सकता है कि उस धन–राशि का जिसका प्रावधान किया गया था व्यय व्यवस्था एवं नियमों के अनुसार निर्धारित सीमाओं के भीतर किया गया है। हिसाब–किताब की तथ्यता को प्रमाणित कर सकता है तथा धनराशि के दुरुपयोग, जालसाजी तथा गबन की जांच कर सकता है।

आन्तरिक लेखा परीक्षण (Internal Auditing)

दूसरी ओर आन्तरिक लेखा परीक्षण किसी भी संस्था की आन्तरिक बात है। वहाँ लेखा परीक्षण का कार्य किसी ऐसे विभाग अथवा एजेंसी द्वारा किया जाता है जिसकी स्थापना उस संस्था के प्रबंधक करते हैं। यह संस्था का अविभाज्य अंग होता है तथा संस्था के मुख्य कार्यसंचालक के नीचे काम करता है। यह कार्यसंचालकों के पास निर्विघ्न एवं कुशल कार्य करने हेतु तथा संस्था के कार्य का अवलोकन करने तथा इसके कार्यकौशल में सुधार लाने

के लिये एक आन्तरिक सेवा के रूप में होता है। आन्तरिक लेखा परीक्षण के समान उद्देश्य, अन्य बातों के साथ–साथ, इस प्रकार होते हैं –

(i) आन्तरिक नियंत्रण प्रणाली की उपयुक्तता, अनुकूलता एवं स्वस्थता की जांच कर उसे ठीक करना,

(ii) जालसाजी को रोकना तथा उसे खोज निकालना,

(iii) हिसाब–किताब तथा रिपोर्ट बनाने की प्रणाली की पर्याप्तता एवं विश्वसनीयता की जांच करना तथा

(iv) प्रबंधकों द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिये चलाई गई योजनाओं, गतिविधियों का निष्पादन एवं दक्षता लेखा परीक्षण करना।

किसी भी संस्था में आन्तरिक लेखा परीक्षण को वह स्वतंत्रता उपलब्ध नहीं होती जो भारतीय लेखा पद्धति एवं लेखा परीक्षण विभाग द्वारा किये जाने वाले बाहरी लेखा परीक्षण को होती है। फिर भी आन्तरिक तथा बाहरी एवं सांविधानिक लेखा परीक्षण आन्तरिक परीक्षण के कार्य की जांच करने तक ही सीमित होता है।

लेखा परीक्षण की किस्में (Types of Audit)

लेखा परीक्षण का व्यापक उद्देश्य करदाताओं के वित्तीय हितों की रक्षा करना तथा संसद / राज्य / संघ प्रशासित क्षेत्रों के विधान मंडलों के प्रमुखों के ऊपर वित्तीय नियंत्रण रखने में सहायता करना है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षण (Controller Auditor General) का यह कर्त्तव्य है कि यह सुनिश्चित करे कि संविधान में अथवा संविधान के अन्तर्गत स्थापित विभिन्न प्राधिकरण वित्तीय मामलों में संविधान द्वारा, संसद द्वारा अथवा उचित विधान मंडलों द्वारा निर्धारित या जारी किये गये नियमों एवं आदेशों के अनुसार कार्य करें। संविधान द्वारा सौंपे गये लेखा परीक्षण संबंधी दायित्वों को निभाने के लिये नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) कई प्रकार के लेखा परीक्षण, नियमितता लेखा परीक्षण, राजस्व रसीदों का लेखा परीक्षण, वाणिज्य लेखा परीक्षण, निष्पादन / अनुष्ठान लेखा परीक्षण, संग्रह एवं भंडारों का लेखा परीक्षण इत्यादि कार्य करता है। इस व्यापक कार्य को पूरा करने में अलग–अलग मंत्रालयों में स्थित लेखा अधिकारी तथा अलग–अलग राज्यों में कार्य कर रहे मुख्य लेख अधिकारी नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की सहायता करते हैं। वित्तीय लेखा परीक्षण, नियमितता लेखा परीक्षण, राजस्व रसीदों का लेखा परीक्षण, निष्पादन / अनुष्ठान लेखा परीक्षण की कुछ विशिष्टताओं का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

वित्तीय लेखा परीक्षण (Financial Audit)

वित्तीय लेखा परीक्षण वह लेखा परीक्षण है जो भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा कार्य विभाग को यह सुनिश्चित करने के लिये करता है कि संचालकों के प्रशासनिक कार्य केवल निर्धारित कानून, वित्तीय नियमों एवं प्रक्रियाओं के अनुरूप ही नहीं हो अपितु यह उचित हो तथा इनके फलस्वरूप कोई अपव्यय न हो। वित्तीय लेखा परीक्षण प्रशासनिक संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं से संबंधित नहीं होता तथा प्रशासनिक लेखा परीक्षण से भिन्न होता है। व्यवस्था, नियम एवं आदेश बनाने का दायित्व अथवा कर्त्तव्य कार्यकारी सरकार का होता है तथा अधीनस्थ अधिकारियों को इन नियमों का पालन करना होता है, तथापि यदि प्रशासनिक काम के किसी विशेष पथ का परिणाम क्षय, अपव्यय अथवा अनुचित व्यय होता है तो लेखा परीक्षक का यह कर्त्तव्य बन जाता है कि वह इस प्रकार के मामलों पर विशेष ध्यान दे तथा संसद के सम्मुख रखे। उदाहरण के तौर पर, किसी नहर निर्माण परियोजना में लेखा परीक्षण का नहर के वास्तविक निर्माण के प्रशासनिक ढांचे से कोई संबंध नहीं होता है और न ही इस बात से सरोकार होता है कि नहर किसी विशेष क्षेत्र से ही गुजरे। यह प्रशासनिक मामले हैं तथा लेखा परीक्षक इन प्रक्रियाओं की जांच नहीं

करेगा। परन्तु यदि यह पाया जाये कि परियोजनाओं का रेखांकन अपर्याप्त आंकड़ों के आधार पर किया गया था तथा इसके परिणामस्वरूप परियोजना में परिवर्तन करने पड़े और अतिरिक्त व्यय का भार उठाना पड़ा अथवा इसके वित्तीय परिणाम आशा के अनुरूप नहीं मिल पाये तो ऐसी स्थिति में लेखा परीक्षण का यह दायित्व बन जाता है कि वह उन परिस्थितियों की जांच करे जिनके कारण गलत रेखांकन हुआ तथा जिसके फलस्वरूप करदाता को बजटीय घाटा उठाना पड़ा। लेखा परीक्षक तभी हस्तक्षेप करता है जब किसी प्रशासनिक कार्य से गम्भीर वित्तीय उलझाव पैदा हो जाते हैं अथवा कोई कार्य निर्धारित कानून एवं वित्तीय व्यवस्था तथा नियमों के अनुरूप नहीं होता। औचित्य लेखा परीक्षण अथवा परंपरागत वित्तीय नियमों के व्यापक सिद्धांतों का परीक्षण भी इस लेखा परीक्षण में सम्मिलित है। इस प्रकार वित्तीय लेखा परीक्षण सरकारी व्यय में हो रहे क्षय को संसद के सम्मुख लाकर करदाताओं के हितों की रक्षा करता है।

नियमितता लेखा परीक्षण (Routine Audit)

नियमितता लेखा परीक्षण का कार्य मुख्यतः इस बात की जांच करना होता है कि सारे भुगतानों के लिये उचित अधिकारियों की स्वीकृति प्राप्त कर ली गई है या नहीं तथा इनको प्रमाणित करने वाली सभी रसीदें उचित रूप में उपलब्ध हैं या नहीं। इसका मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सभी भुगतान संविधान में दिये गये प्रसंगोचित प्रशासनिक वित्तीय, बजट संबंधी एवं लेखा पद्धति संबंधी व्यवस्थाओं एवं नियमों तथा संसद द्वारा बनये गये कानूनों के अनुरूप हो। नियमितता लेखा परीक्षण के लक्ष्य जैसा कि लेखा परीक्षण नियमावली में निर्धारित किये गये हैं अन्य बातों के साथ– साथ यह सुनिश्चित करना है कि –

(i) व्यय के लिये कोष का प्रावधान है तथा यह उचित अधिकारियों द्वारा अधिकृत है;

(ii) व्यय हेतु प्रदान की गयी अनुमति के अनुरूप है तथा यह व्यय अधिकृत अफसरों द्वारा ही किया गया है;

(iii) भुगतान की मांगे नियमों के अनुसार तथा उचित रूप में की गई है;

(iv) व्यय संबंधी सारी प्रारंभिक आवश्यकतायें पूरी कर ली गई हैं। उदाहरणस्वरूप सभी निर्माण कार्यों पर होने वाले व्यय के उचित अनुमान तैयार कर लिये गये हैं तथा उचित अनुमान तैयार कर लिये गये हैं तथा उचित अधिकारियों की स्वीकृति प्राप्त कर ली गई है, जहाँ आवश्यक था वहां स्वास्थ्य सर्टीफिकेट (Health Certificate) प्राप्त कर लिया गया है एवं सरकारी कर्मचारियों को वेतन का भुगतान किया गया है।

(v) सीमित अवधि के लिये स्वीकृत व्यय उस अवधि के पश्चात् बिना नई स्वीकृति प्राप्त किये लेखा परीक्षण के लिये स्वीकार न किया जाये;

(vi) भुगतान करने वाले अधिकारी ने उन सारे नियमों को ध्यान में रखा है जो भुगतान के तरीकों को समंजित करते हैं;

(vii) भुगतान किसी व्यक्ति को किया गया है और प्रमाण के रूप में लिखित रूप से यह मान लिया गया है कि उस आशय की सरकार से दूसरी मांग सम्भव नहीं है;

(viii) सारे भुगतान मौलिक लेख पत्रों में ठीक–ठीक दर्ज कर लिये गये हैं।

कोष के प्रावधानों के लेखा परीक्षण का उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि सारा व्यय उन्हीं कार्यों पर किया गया है, जिनके लिये उसका प्रावधान किया गया था तथा व्यय विनियोजित धनराशि से अधिक नहीं है। व्यय की जांच

पड़ताल के संबंध में लेखा परीक्षण को यह भी सुनिश्चित करना होता है कि व्यय के प्रत्येक विषय के लिये उचित अधिकारी की स्वीकृति प्राप्त कर ली गई है। व्यवस्था एवं नियमों का लेखा परीक्षण, नियमितता लेखा परीक्षण का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। यह इस बात के सुनिश्चित करता है कि व्यय संविधान में किये गये प्रसंगोचित प्रावधानों तथा उसके अन्तर्गत बनाये गये कानूनों एवं नियमों के अनुरूप है। व्यय का नियमितता लेखा परीक्षण अर्द्धन्यायिक प्रकृति का कार्य है जो लेखा परीक्षण अधिकारियों द्वारा किया जाता है। इसमें नियमों, आदेशों तथा संविधान की व्याख्या करना सम्मिलित है।

आय / राजस्व वसूली लेखा परीक्षण (Revenue Collection Audit)

आय / राजस्व वसूली लेखा परीक्षण में संघीय स्तर पर आय कर, उत्पादन शुल्क तथा सीमा शुल्क की वसूली सम्मिलित है। राज्य स्तर पर बिक्री कर तथा राज्य उत्पादन शुल्क इसमें शामिल होते हैं। सन् 1905 से भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा विभाग आय / राजस्व वसूली संबंधी कार्य को करता आ रहा है।

आय / राजस्व वसूली के लेखा परीक्षण में लेखा परीक्षण विभाग का काम यह सुनिश्चित करना है कि पर्याप्त नियमों एवं प्रक्रियाओं का गठन कर लिया गया है तथा राजस्व विभाग उनका पालन कर रहा है। यह कार्य कर निर्धारण, कर वसूली तथा राजस्व के उचित आबंटन पर प्रभावशाली नियंत्रण रखने के लिये आवश्यक है, क्योंकि राजस्व विभाग में कर निर्धारण का काम अर्द्धन्यायिक प्रकृति का होता है। लेखा परीक्षण को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि स्वनिर्णय का अधिकार उचित तथा न्यायसंगत रूप में प्रयोग किया गया है।

निष्पादन / अनुष्ठान लेखा परीक्षण (Performance Audit)

आमतौर पर व्यक्तिगत सौदों की जांच ही वित्तीय तथा नियमितता लेखा परीक्षण की परिधि में आता है। वे अपना ध्यान उन योजनाओं एवं परियोजनाओं के मूल्यांकन पर केंद्रित नहीं करते जो ऐसे सौदों से संबंधित होती है। इसलिये किसी भी संस्था के निष्पादन के मूल्यांकन के लिये यह दोनों प्रकार के लेखा परीक्षण अपर्याप्त सिद्ध हुये हैं।

जब से सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं का क्रम आरम्भ किया है, देश की सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति को गति प्रदान करने के लिये चलाई गई विकास गतिविधियों पर भारी पूंजी निवेश हुआ है। बहुत मामलों में इस पूंजी निवेश का लाभ आशा के अनुरूप नहीं हुआ। इसलिये जनता को यह जानने का अधिकार है कि परिणाम पूंजी निवेश के अनुरूप हुये हैं या नहीं। जनता की इस चिंता के फलस्वरूप सरकार में निष्पादन / अनुष्ठान बजट की प्रथा शुरू की गई। पिछले कुछ समय में व्यय को तद्नुसार वास्तविक परिणामों से जोड़ने की आवश्यकता के बारे में सरकार के चिन्तन में आये परिवर्तन ने उसे लेखा परीक्षण के कार्यों के बारे में पुनः सोचने पर बाध्य किया है। इस बात को स्वीकार लिया गया है कि नियमितता लेखा परीक्षण / औचित्य लेखा परीक्षण व्यय पर संसदीय नियंत्रण के लिये आवश्यक है। परंतु पंचवर्षीय योजनाओं पर निरन्तर बढ़ते हुये व्यय को ध्यान में रखते हुये, लेखा परीक्षण के उद्देश्य एवं लक्ष्यों के बारे में विशेष परियोजनाओं, गतिविधियों तथा योजनाओं की उपलब्धियों का निरीक्षण करना चाहिये। इस बात का आभास किया गया है कि लेखा परीक्षण के वे मामले प्रकाश में लाने चाहिये जहाँ साधनों का उपयोग अनुकूलतम से नीचे रहा है। परिणामस्वरूप निष्पादन / अनुष्ठान लेखा परीक्षण जिसको दक्षता का लेखा परीक्षण भी कहा जाता है, की आवश्यकता पर गंभीर रूप से विचार किया जा रहा है।

निष्पादन / अनुष्ठान लेखा परीक्षण इस बात को जानने का प्रयत्न करता है कि साधनों को अनुकूलतम तरीके से परिनियोजन कर उनका उपयोग दक्षतापूर्वक किया गया है या नहीं। यह उन सीमाओं का विशेष से वर्णन

करता है जहाँ तक साधनों का प्रयोग उत्पादक उद्देश्यों के लिये किया गया है। यह इस बात का भी विशेष रूप से वर्णन करता है कि किस हद तक ऐसे परिनियोजन से परिभाषित लाभों की आशा की जा सकती है।

यद्यपि निष्पादन / अनुष्ठान लेखा परीक्षण की विधि स्वस्थ / मजबूत एवं लाभदायक है, परन्तु इसको वास्तविक रूप देने में बहुत सारी समस्यायें हैं। पहली बात तो यह है कि किसी भी गतिविधि का निष्पादन मूल्यांकन उन लक्ष्यों के प्रकाश में ही किया जा सकता है जिनकी पूर्ति की इन्हें आशा हो तथा लक्ष्य किसी भी गतिविधि के वांछित परिणामों को दर्शाते हों। जहाँ किसी गतिविधि में होने वाले निवेश को मापना सरल है वहीं उसके उत्पादन को परिभाषित करने तथा मापने के लिये गम्भीर प्रयासों की आवश्यकता पड़ती है, विशेषतः वहाँ जहाँ इस उत्पादन का सामाजिक संदर्भ होता है। दूसरी बात यह है कि ''वास्तविक जन कल्याण'' की संकल्पना के अनुसार, साधनों का प्रयोग केवल उस बिन्दु तक ही सर्वाधिक नहीं होना चाहिये जिस तक उनका परिनियोजन किया गया है अपितु उन अन्य बिन्दुओं तक भी होना चाहिये जहाँ तक किये जाने वाले निवेश के प्रभाव पड़ते हैं। दूसरी शब्दों में निवेश के निर्णयों को सामाजिक मूल्य–लाभ विश्लेषण की विधि के अनुप्रयोग से न्यायसंगत सिद्ध करने की आवश्यकता है। तीसरी बात, पूंजी निवेश के उद्देश्य प्रायः वित्तीय एवं अवित्तीय कारणों का सम्मिलित रूप होता है।

लेखा परीक्षण के परिणाम (Results of Audit)

भारतीय लेखा एवं परीक्षण विभाग द्वारा किये गये लेखा परीक्षण घटना घटने के बाद जांच के रूप में होता है। कुछ विषयों में कुछ धनराशियों का भुगतान तभी किया जाता है जब मांगे लेखा परीक्षक द्वारा जांच कर पारित कर दी जाती है, परन्तु ऐसे भुगतान सरकार के पूरे खर्च (व्यय) की उपेक्षणीय प्रतिशत के रूप में होते हैं। क्योंकि लेखा परीक्षण घटना घटने के बाद किया जाता है। इसलिये अधिक भुगतान अथवा वित्तीय व्यवस्था एवं नियमों की उपेक्षा को रोका नहीं जा सकता। यदि सौदा करते समय कार्यवाहक अधिकारी कोई अनियमितता अथवा औचित्य के विपरीत कुछ करते हैं तो भी लेखा परीक्षक उनको ऐसा करने से नहीं रोक सकता। परन्तु लेखा परीक्षण की प्रभावशीलता लेखा परीक्षक के उस अधिकार पर निर्भर करती है जिसके अनुसार वह लेखा परीक्षण के परिणामों की रिपोर्ट उचित अधिकारियों को प्रस्तुत कर सकता है, चाहे वे अधिकारी विभागीय हों, स्वयं सरकार हो अथवा PAC द्वारा संसद हो। इन रिपोर्टों के आधार पर यह संस्थाएं अनियमितताओं तथा औचित्यों के उल्लंघन का सुधार कर सकती हैं।

लेखा परीक्षण के प्रमाणों की सूचना लेखा परीक्षक द्वारा संबंधित अधिकारियों को शीघ्रतम देने की आवश्यकता होती है। तब लेखा परीक्षकों द्वारा की गई आपत्तियों का समाधान करना इन प्रशासनिक अधिकारियों का दायित्व बन जाता है। प्रशासनिक अधिकारियों का यह भी दायित्व बन जाता है कि वे उस धनराशि को वापस लेने का प्रयास करें जिसका भुगतान अनुचित था। लेखा परीक्षण अधिकारी उस समय तक अपने द्वारा की गई आपत्तियों का मूल्यांकन करते रहते हैं जब तक कि प्रशासनिक अधिकारी विश्वसनीय रूप से उनका समाधान नहीं कर लेते। अन्ततः एक वर्ष के हिसाब–किताब के पूरा हो जाने पर लेखा परीक्षण के परिणामों की रिपोर्ट संबंधित सरकारों तथा विधान मंडलों को लेखा परीक्षण में रिपोर्ट के रूप में दे दी जाती है। यद्यपि लेखा परीक्षण रिपोर्टें घटनाओं के घटने के पश्चात् प्रस्तुत की जाती हैं, फिर भी ये अनेक उद्देश्यों की पूर्ति करती हैं। यह रिपोर्टें प्रशासन / प्रबंधकों को यह निश्चित करने में सहायक होती हैं कि भविष्य में यह अनियमितताएं दोहराई न जाएं। दोष भरी परियोजनाओं को न विचारने में ये परियोजना क्रिया में सहायता करती है। चल रही परियोजनाओं के बीच में ही सुधार कर लेने के संकेत देती हैं। इन रिपोर्टों के आधार पर ही प्रशासनिक अधिकारी उन कर्मचारियों के खिलाफ उचित अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकते हैं जिनकी अवहेलना / लापरवाही के कारण सरकारी कोष को क्षय पहुंचा हो।

ऐसी कार्यवाही प्रतिरोधक का काम करती है। तथापि यह रिपोर्ट सामायिक होनी चाहिये तथा सभी असफलताओं, त्रुटियों अथवा हीनताओं को शीघ्र से शीघ्र सामने लाने में सक्षम होनी चाहिए ताकि प्रशासन तुरन्त इनको सुधारने के उपाय कर सके।

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा लेखा परीक्षण की रिपोर्टों की प्रस्तुति की प्रक्रिया संविधान में निर्धारित है। नियंत्रक एवं महालेखा निरीक्षक की संघीय लेखा संबंधी रिपोर्टें राष्ट्रपति को तथा राज्यों के लेखा संबंधी रिपोर्टें राज्यपाल को दी जाती हैं। इस समय तीन विभिन्न प्रकार की रिपोर्टें दी जाती हैं। (i) विनियोजित लेखा पर लेखा परीक्षण रिपोर्ट, (ii) वित्त लेखा पर रिपोर्ट, तथा (iii) संघीय तथा राज्य सरकारों द्वारा राजस्व वसूली तथा वाणिज्य एवं सार्वजनिक संस्थानों के बारे में रिपोर्ट। इन रिपोर्टों की प्रस्तुति के साथ ही नियंत्रक एवं महालेख परीक्षक का दायित्व समाप्त हो जाता है। यह रिपोर्टें मिलने पर राष्ट्रपति एवं राज्यपाल इनको क्रमशः संसद एवं राज्य के विधान मंडलों के पास भिजवाने का प्रबंध करते हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि विभिन्न सरकारों के बारे में लेखा परीक्षण रिपोर्ट राष्ट्रपति की ओर से वित्त मंत्रालय द्वारा स्वीकार की जाती है। वित्त मंत्री इन रिपोर्टों को दोनों सदनों में प्रस्तुत करता है। राज्य की लेखा परीक्षण रिपोर्टों के बारे में भी प्रायः सही प्रक्रिया अपनाई जाती है।

संसद एवं राज्य विधान मंडल को धन की आपूर्ति को प्रभावशाली बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि संसद एवं राज्य विधान मंडल अपने आप विश्वस्त कर लें कि धन उन्हीं उद्देश्यों के लिये खर्च किया गया है जिनके लिये इसकी अनुमति दी गई थी। वे यह भी सुनिश्चित कर लें कि व्यय उस सीमा के अन्दर है जिसको स्वीकृत किया गया था। इनका विस्तृत उल्लेख नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की संघीय एवं राज्य सरकारों के बारे में दी गई लेखा एवं लेखा परीक्षण रिपोर्टों में मिलता है। व्यापक तथा तकनीकी प्रकृति के होने के कारण संसद तथा राज्य विधान मंडलों के लिये उनका विस्तारपूर्वक अध्ययन करना असंभव है। इन रिपोर्टों के बारे में उचित अध्ययन / निरीक्षण के आवश्यक कदम संसद नहीं जुटा पाती। इसलिये संसद (लोक सभा) तथा राज्य विधान सभाओं ने कमेटी का गठन किया है जिसको लोक लेखा समिति (Committee on Public Account) कहते हैं। लेखे का (विनियोजन एवं वित्त) तथा इनसे संबंधित लेखा परीक्षण के विस्तारपूर्वक अध्ययन का कार्यभार इस कमेटी को सौंपा गया है। यह सुनिश्चित करना कि सरकार ने उस धन का उपयोग जिसका अनुमोदन संसद ने किया था, मांग की परिधि के अन्दर ही खर्च किया गया है या नहीं। लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) का यह एक महत्वपूर्ण कार्य है। इसका अर्थ यह है कि अनुदान से संबंधित जो खर्च दिखाया गया है वह अनुदान राशि से अधिक नहीं होना चाहिए तथा अनुदान की राशि केवल उन्हीं उद्देश्यों पर खर्च की जानी चाहिए जो विस्तृत मांगों में बताये गये हैं। तथापि कमेटी का कार्य व्यय की औपचारिकता को लांघता हुआ उसकी ''बुद्धिमता, विश्वसनीयता तथा मितव्ययता'' तक फैला हुआ है। जब कोई प्रमाणित लापरवाही का उदाहरण जिसके कारण कोई क्षय अथवा अपव्यय हुआ हो, एवं जब वह कमेटी के ध्यान में लाया जाता है तो वह संबंधित मंत्रालय विभाग से यह बताने को कहती है कि उसने ऐसी चीजें दोबारा न होने देने के लिये क्या उपाय किये हैं। ऐसी परिस्थितियों में कमेटी अपना मत निंदा के रूप में रिकार्ड कर सकती है अथवा अपव्यय एवं संबंधित विभाग एवं मंत्रालय के उचित नियंत्रण के अभाव की भर्त्सना कर सकती है। व्यापक अर्थ में कमेटी का नीति संबंधी प्रश्नों से कोई सरोकार नहीं होता है।

लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) कुशल रूप से कार्य कर सके, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसे नियंत्रक एवं महालेखा निरीक्षक तथा दूसरे अधिकारियों की पूरी सहायता मिले। मौलिक सामग्री उपलब्ध कराने के अतिरिक्त लेखा परीक्षण लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) की विभिन्न प्रकार से सहायता करता है। यह कमेटी के सदस्यों को ऐसे परिपत्र प्रस्तुत करता है जिनमें उन अनियमितताओं एवं

अशुद्धि के महत्व का वर्णन होता है जिन पर लेखा परीक्षण रिपोर्ट में टिप्पणी की गई है। इसके अतिरिक्त लेखा परीक्षक कमेटी के सदस्यों को अलिखित रूप से विषय के सारे पहलुओं का संक्षिप्त परिचय भी देता है ताकि वे मौखिक निरीक्षण के समय विभाग के गवाहों से स्पष्टीकरण एवं अतिरिक्त सूचना प्राप्त कर सकें। लेखा परीक्षक मौखिक एवं लिखित प्रमाणों की जांच के पश्चात् रिपोर्ट तैयार करने में भी कमेटी की सहायता करते हैं। वे सरकार द्वारा मान ली गयी सिफारिशों के कार्यान्वयन पर दृष्टि रखने में भी कमेटी की सहायता करते हैं। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की लेखा परीक्षण रिपोर्टों पर आधारित अपनी रिपोर्ट संसद / राज्य की लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) द्वारा मंत्रालयों / विभागों को कार्यान्वयन के लिये भेजी जाती है। मंत्रालयों के लिये यह आवश्यक होता है कि इन सिफारिशों के परिपालन के बारे में अपनी रिपोर्ट छः महीने के अन्दर कमेटी को दे दें। सरकार प्रायः कमेटी की सिफारिशों को मान लेती है। ऐसे विषयों में जहाँ सरकार की यह सिफारिशें मान्य नहीं होती वहाँ सरकार को सिफारिशें न मानने के कारण कमेटी को बताने पड़ते हैं।

सारांश (Conclusion)

लेखा परीक्षण हिसाब–किताब के रिकार्ड की ऐसी जांच–पड़ताल है जिसका अभिप्राय यह सुनिश्चित करना है कि यह रिकार्ड उन सौदों को जिनसे मंतव्य संबंधित है पूर्णतया एवं सत्य रूप से प्रतिबिंबित करते हैं। इसका उद्देश्य यह देखना है कि व्यय उचित अधिकारियों की स्वीकृति से किया गया है तथा उन्हीं विषयों पर किया गया है जिनके लिये स्वीकृति प्रदान की गयी थी तथा व्यय की प्रमाण परचियां उपलब्ध हैं। लेखा परीक्षण लोकतंत्र के चार स्तम्भों में से एक है। संसद का कार्यपालक पर आधिपत्य सुनिश्चित करने के लिये लेखा परीक्षण एक प्रभावशाली उपकरण है। यह प्रशासन का भी एक मूल्यवान साथी है।

आरम्भ में लेखा परीक्षण के उत्कर्ष की क्रिया धीरे–धीरे हुई है तथा सरकार के दायित्वों में होने वाली वृद्धि से मेल खाती है। प्रारंभ में लेखा परीक्षण मुख्यतया व्यय अभिमुखी था। धीरे–धीरे आय वसूली के लेखा परीक्षण का कार्य भी इसकी परिधि में ले लिया गया। सार्वजनिक संस्थानों की संख्या में वृद्धि के साथ–साथ व्यापारिक लेखा–परीक्षण का भी जन्म हुआ। आधुनिक काल में लेखा परीक्षण ने संस्थानों के निष्पादन, गतिविधियों एवं परियोजनाओं के मूल्यांकन का कार्य भी अपने हाथों में ले लिया है। भारत में संघ, राज्यों एवं विधान मंडल वाले केन्द्र शासित प्रदेशों के लेखे के परीक्षण का दायित्व नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक करता है। वह नियमितता लेखा परीक्षण, आय वसूली लेखा परीक्षण, व्यापारिक लेखा परीक्षण निष्पादन / अनुष्ठान लेखा परीक्षण इत्यादि कार्य करता है। संविधान में कार्यपालक से नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए पर्याप्त सुरक्षा के उपायों का प्रावधान किया गया है। उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है परन्तु केवल संसद ही उसे उसके पद से हटा सकती है। नियुक्ति के पश्चात् उसकी सेवा अवधि तथा सेवा शर्तों में कोई ऐसा परिवर्तन नहीं किया जा सकता जिससे उसका अहित होता हो। सेवा निवृत्ति एवं पदच्युति के पश्चात् वह केन्द्र अथवा राज्य सरकार में कोई पदभार ग्रहण नहीं कर सकता। उसके वेतन, भत्ते, पेंशन तथा उसके स्थायी अमले के खर्चे का भुगतान भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) से किया जाता है तथा संसद द्वारा इसको पारित करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

लेखा परीक्षा रिपोर्ट लेखा परीक्षण कार्य का अन्तिम गन्तव्य स्थान है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक तीन रिपोर्टें पेश करता है। यह है – विनियोजन लेखा पर परीक्षण रिपोर्ट, वित्तीय लेखा पर परीक्षण रिपोर्ट, व्यापारिक एवं सार्वजनिक प्रतिष्ठानों पर लेखा परीक्षण रिपोर्ट तथा केन्द्र एवं राज्यों के राजस्व वसूली पर रिपोर्ट। यह रिपोर्ट राष्ट्रपति / राज्यपाल तथा विधान मंडल वाले केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासकों को दी जाती है जो इन रिपोर्टों को

विचारार्थ क्रमशः संसद एवं राज्य विधान मंडलों में प्रस्तुत करने का प्रबंध करते हैं। लेखा परीक्षण रिपोर्टों की जांच लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) द्वारा की जाती है। सामग्री उपलब्ध कराने के अतिरिक्त नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक लेखा परीक्षण अनुच्छेदों पर आधारित स्मरण पत्रों की रूपरेखा तैयार करने में समिति की सहायता करता है जिसके आधार पर समिति के सदस्य मौखिक जांच कर सकते हैं। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक रिपोर्ट तैयार करने में भी समिति की सहायता करता है। वास्तविक रूप में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक लोक लेखा समिति का ''मित्र, दार्शनिक एवं मार्गदर्शक'' है। लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) लेखा परीक्षण रिपोर्ट के निष्कर्षों पर आधारित अपनी रिपोर्ट स्वीकृति के लिये मंत्रालयों को भेजती है। समिति की अधिकांश सिफारिशें सरकार द्वारा स्वीकार कर ली जाती हैं। यदि कुछ विषयों पर सरकार को समिति की सिफारिशें मान्य नहीं होती हैं तो समिति पुनः इस पर विचार करती है तथा संसद को कार्यवाही रिपोर्ट (Action Taken Report) प्रस्तुत करती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि लेखा परीक्षण कोई न्यायिक जांच नहीं है तथा इसका लक्ष्य दोष निकालना नहीं होता है। इसका उद्देश्य तो प्रशासन को नियमों एवं व्यवस्था में पायी जाने वाली कमियों, अनियमितताओं तथा त्रुटियों से अवगत कराना है और जहाँ तक संभव हो योजनाओं एवं परियोजनाओं को अधिक तत्परता, अधिक दक्षता तथा अधिक किफायत से पूरा करने के उपाय सुझाना है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- बी०डी० अग्रवाल, फाईनेनिशयल अकाउंटिग, 1985
- अशोक चन्दा, आसपेक्टस ऑफ ऑडिट कन्ट्रोल, बम्बई, एशिया, 1959
- एस०एल० गोयल, पब्लिक फाईनेनिशयल एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, दीप एण्ड दीप, 2002

कुछ प्रश्न

- भारत में संशोषित लेखा प्रणाली का वर्णन करो।
- भारत में लेखा प्रणाली की विशेषताएं बताए।
- लेखा परीक्षण प्रणाली के प्रकार तथा महत्व बताए।

अध्याय – 9

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग और वित्तीय प्रबन्ध

(2nd Administrative Reform Commission and Financial Management)

रूपरेखा

- द्वितीय ए०आर०सी० का गठन
- संदर्भ विषय
- सिफारिशें
- सिफारिशें लागू करने हेतु संस्थानिक तन्त्र
- कुछ उपयोगी संदर्भ
- कुछ संभावित प्रश्न

❖ प्रशासनिक सुधार आयोग की स्वीकृत सिफारिशों के कार्यान्वयन के संबंध में नोडल मंत्रालयों और राज्यों के साथ अनुवर्ती कार्यवाही करना।

❖ प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्टो के संबंध में अनुवर्ती कार्यवाही करना जहाँ सिफारिशों के कार्यान्यन के संबंध में अनेक मंत्रालयों / विभागों के साथ कार्यवाही की जानी है।

❖ मंत्रिमंडल के समक्ष प्रशासनिक सुधार आयोग की प्रत्येक रिपोर्ट पर की गई कार्यवाही स्थिति प्रस्तुत करना।

❖ प्रत्येक वर्ष 21 अप्रैल को सिविल सेवा दिवस का आयोजन।

❖ लोक प्रशासन में उत्कृष्टता के लिए प्रधानमंत्री पुरस्कार के संबंध में पुरस्कार विजेताओं का चयन करने की कार्यवाही करने के लिए उत्तरदायी नोडल प्रभाग।

❖ प्रशासनिक सुधार से संबंधित संसदीय मामले / स्थायी समिति संबंधी मामले।

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (ए०आर०सी०) (Second A.R.C.)

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (एआरसी) का गठन दिनांक 31.08.2005 को किया गया। इसने सरकार के विचारार्थ 15 रिपोर्टे प्रस्तुत की हैं। मंत्रिमंडल सचिव की अध्यक्षता में प्रशासनिक सुधार पर कोर समूह ने सभी रिपोर्टो पर विचार कर लिया है। मंत्री समूह ने चौदह रिपोर्टों पर विचार किया है। आतंकवाद का सामना करना (आठवीं रिपोर्ट) संबंधी रिपोर्ट पर गृह मंत्रालय द्वारा कार्यवाही की जा रही है। केंद्रीय मंत्रिमंडल ने द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की स्वीकृत सिफारिशों की सभी की गई कार्यवाही को नोट कर लिया है।

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की स्वीकृत सिफारिशों के कार्यान्वयन हेतु संस्थानिक तंत्र (Machinery for Execution of Recommendations of 2nd ARC)

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की स्वीकृत सिफारशों के त्वरित कार्यान्वयन हेतु सचिवों की समिति ने दिनांक 06.11.2012 को आयोजित अपनी बैठक में अन्य बातों के साथ–साथ एक संस्थानिक तंत्र के संबंध में निर्णय लिया जो इस प्रकार है :–

(क) संबंधित मंत्रालयों / विभागों के सचिव द्वारा मासिक / द्विमासिक आधार पर सिफारिशों के कार्यान्वयन की प्रगति की समीक्षा और मॉनीटर किया जाए। कार्यान्वयन की मॉनीटरिंग सचिवों की समिति या अधिकारियों के समूह के जरिए भी प्रत्येक तिमाही में एक बार किया जाए।

(ख) प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग द्वारा राज्य सरकारों को संबोधित कर उनसे प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन में तेजी लाने के लिए मुख्य सचिव की अध्यक्षता में एक समिति गठित करने का अनुरोध किया जाए।

(ग) संबंधित मंत्रालयों और विभागों द्वारा प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग द्वारा विहित प्रपत्र में प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों के संबंध में की गई कार्यवाही संबंधी रिपोर्ट प्रस्तुत किया जा सकता है तथा इसे सचिवों द्वारा मंत्रिमंडल सचिव को भेजे जाने वाले मासिक अर्ध शासकीय पत्र के भाग के रूप में भी शामिल किया जा सकता है।

(घ) प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग प्रशिक्षण अकादमियों / संस्थानों में अखिल भारतीय सेवा / केंद्रीय सेवाओं / राज्य सेवाओं के विभिन्न स्तरों के अधिकारियों को जानकारी देने के लिए माड्यूल विकसित कर सकता है।

(ड़) प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग द्वारा प्रवेश और मिड कैरियर प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में एक माड्यूल के रूप में प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों को समुचित रूप से शामिल करने हेतु अकादमियों, दोनों राष्ट्रीय और राज्य प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थानों को अनुरोध किया जा सकता है। प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग संकाय / प्रशिक्षकों के लिए प्रशिक्षण आयोजित कर सकता है तथा उन्हें प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों के बारे में अवगत कर सकता है।

सचिवों की समिति की सिफारिशों के कार्यान्वयन के संबंध में अनुवर्ती कार्यवाही

(क) संस्थागत तंत्र

सचिवों की समिति के निर्णयों पर अनुवर्ती कार्यवाही की जा रही है जिनमें अन्य बातों के साथ–साथ निम्नलिखित शामिल हैं –

(i) सचिवों की समिति के निर्णय में संबंध में सूचित करते हुए केंद्र सरकार के मंत्रालयों / विभागों के सचिवों को पत्र लिखे गए। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की कतिपय स्वीकृत सिफारिशें सभी केंद्रीय मंत्रालयों / विभागों से तथा कतिपय सिफारिशें संबंधित केंद्रीय मंत्रालयों / विभागों से संबंधित हैं, को कार्यान्वयन हेतु भेज दिया गया है। इस प्रकार की सिफारिशों के प्रति डिलीवरबल्स का उल्लेख सचिव (प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग) द्वारा सभी केंद्रीय मंत्रालयों / विभागों के सचिवों को लिखे गए अर्धशासकीय पत्रों में किया गया है। इन केंद्रीय मंत्रालयों / विभागों से यह भी अनुरोध किया गया है कि

वे विहित प्रपत्र में की गई कार्यवाही रिपोर्ट भेजे जो मंत्रिमंडल सचिव को लिखे जाने वाले मासिक अर्धशासकीय पत्र का एक भाग होगा।

(ii) इसी प्रकार राज्यों / संघ राज्य क्षेत्रों के सभी मुख्य सचिवों / प्रशासकों को उनके संबंधित अध्यक्षता के अंतर्गत समितियां गठित करने के लिए पत्र लिखे गए ताकि सिफारिशों की मानीटरिंग और समीक्षा करने के तंत्र को और अधिक मजबूत बनाया जा सके। सचिव (प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत) द्वारा राज्यों / संघ राज्य क्षेत्रों को लिखे गए अर्धशासकीय पत्र में राज्यों / संघ राज्य क्षेत्रों से संबंधित कतिपय महत्वपूर्ण निर्देशक सिफारिशों की सूची दी गई है जिसमें इन प्रत्येक सिफारिशों के प्रति डिलीवरब्लस का उल्लेख किया गया है।

(iii) अनेक केंद्रीय मंत्रालयों / विभागों ने द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों के तीव्र कार्यान्वयन हेतु कार्यवाही शुरू कर दी है। अनेक राज्यों / संघ राज्य क्षेत्रों ने संबंधित मुख्य सचिव / प्रशासक की अध्यक्षता में समितियां गठित कर ली हैं।

(iv) द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के महत्वपूर्ण सिफारिशों की संक्षिप्त सूची बनाई गई है और इन्हें राज्यों / संघ राज्य क्षेत्रों को परिचालित किया गया है। इनके कार्यान्वयन के संबंध में माह मई–जून, 2013 को राज्य प्रशासनिक सुधार सचिवों के लिए आयोजित कार्यशाला में विचार–विमर्श किया गया और तत्पश्चात् नवम्बर, 2013 में वीडियों कान्फ्रेंस आयोजित किया गया। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों की अन्य निर्देशक सूची राज्यों / संघ राज्य क्षेत्रों को भेजी गई है और उनसे तत्संबंधी की गई कार्यवाही रिपोर्ट भेजने का अनुरोध किया गया है।

(ख) केंद्रीय प्रशिक्षण संस्थानों और राज्य प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थानों का क्षमता निर्माण

(i) सचिवों की समिति के निदेश के अनुसरण में इस विभाग ने 17 केंद्रीय प्रशिक्षण संस्थानों (सीटीआई) और 29 राज्य प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थानों (एटीआई) को द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के आधार पर माड्यूलों आदि का विकास करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की है।

(ii) सीटीआई और राज्य एटीआई के साथ माड्यूलों की रूपरेखा पर विचार–विमर्श करने के लिए क्रमशः दिनांक 17.05.2013 और 29.05.2013 को कार्यशालाएं आयोजित की गई तथा उन्हें मसौदा प्रशिक्षण माड्यूल परिचालित किया गया।

(iii) द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के आधार पर प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए दिनांक 26–27 अगस्त, 2013 को राष्ट्रीय सीमा, उत्पाद शुल्क और नारकोटिक्स अकादमी, फरीदाबाद में राष्ट्रीय स्तर कार्यशाला आयोजित की गई। राष्ट्रीय सीमा, उत्पाद शुल्क और नारकोटिक्स अकादमी की कार्यशाला में सीटीआई के प्रतिनिधियों ने भाग लिया और इस विभाग द्वारा विशिष्ट व्यक्तियों को आमंत्रित किया गया। इसके बाद राज्य एटीआई, मैसूर में दिनांक 30–31 अक्तूबर, 2013 तथा महात्मा गाँधी राज्य लोक प्रशासन संस्थान, चंडीगढ़ में 25–26 नवम्बर, 2013 और राज्य एटीआई, कोलकाता में 19–20 दिसम्बर, 2013 को राज्य स्तरीय प्रशिक्षण संस्थानों के संकाय / सक्षम व्यक्तियों के लिए तीन प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए।

(iv) इन प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण के जरिए विभाग प्रशिक्षकों का एक पूल तैयार करने में सक्षम हुआ है जिनका उपयोग द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों के संबंध में प्रशिक्षण देने के लिए सीटीआई और राज्य एटीआई द्वारा किया जा सकता है।

(v) इसके अतिरिक्त, सीटीआई और राज्य एटीआई से अनुरोध किया गया है कि वे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार प्रशिक्षण माड्यूल का अनुकूलन करें तथा वे स्वयं मिड सेवा प्रशिक्षण के लिए एक दिन / आधा दिन के माड्यूल का भी विकास कर सकेंगे।

(ग) सीटीआई और राज्य एटीआई के साथ सामाजिक उद्यमियों का कार्य करना

सचिवों की समिति ने दिनांक 06.12.2013 की अपनी बैठक में अन्य बातों के साथ यह निर्णय किया कि प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग संकाय / प्रशिक्षकों के लिए प्रशिक्षण आयोजित कर सकता है तथा उन्हें प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों के बारे में अवगत कर सकता है। नैतिकता जैसे विशिष्ट विषयों पर व्याख्यान देने हेतु यह सलाह दी जाती है कि व्याख्यान ऐसे व्यक्ति द्वारा दिया जाए जो इस क्षेत्र में अत्यन्त प्रतिष्ठित हो।

यह पाया गया है कि प्रवेश और मिड सेवा स्तर प्रशिक्षण के लिए सीटीआई और राज्य एटीआई में आने वाले सरकारी अधिकारीगण सरकारी क्षेत्र से इतर सामाजिक क्षेत्र में हो रहे उत्कृष्ट पहलों से पर्याप्त रूप से परिचित नहीं है। इस प्रकार के पहलों से परिचित होकर वे अत्यन्त लाभान्वित होंगे तथा समाज के उपेक्षित वर्गों द्वारा सामना की जा रही चुनौतियों को नए सिरे से देखेंगे और यह कि उपलब्ध मानव, वित्तीय और प्रौद्योगिकीय संसाधनों का नवीन और कुशल उपयोग कर किस प्रकार इन चुनौतियों का समाधान किया जा सकता है। इसीलिए सरकारी अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम में सामाजिक उद्यमियों को शामिल करने के लिए एक संस्थागत तंत्र का गठन करने के लिए उन सामाजिक उद्यमियों जिन्होंने देश में सफलतापूर्वक सामाजिक पूंजी सृजित करने का कार्य किया है, के साथ परामर्श करने का निर्णय किया गया।

चुनिंदा प्रतिष्ठित सामाजिक उद्यमियों के साथ क्रमशः दिनांक 25.09.2013 और 22.11.2013 को विभाग में दो बैठकें हुई। सचिव (प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत) ने सूचित किया कि शासन की गुणवता को बेहतर बनाने के लिए सरकारी सेवकों में सकारात्मक प्रेरणा उत्पन्न करने और सरकार के भीतर और सरकार से इतर हो रही सुशासन पहलों के बारे में उन्हें परिचित कराना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सामाजिक उद्यमियों के अनुभवों से परिचित होने से न केवल उन्हें सहयोगपूर्ण और भागीदारी परिवेश का निर्माण करने के लिए अपनाई गई नवीन प्रक्रियाओं की जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिलेगी बल्कि परियोजनाओं के कार्यान्वयन में आने वाली बाधाओं और चुनौतियों को समझाने में भी सहायता मिलेगी। बैठकों में उपस्थित सभी सामाजिक उद्यमियों ने विभाग द्वारा की गई पहल का स्वागत किया और सीटीआई और राज्य एटीआई के एक दिन, दो दिन पांच दिन आदि प्रशिक्षण कार्यक्रमों का भाग बनने की अपनी इच्छुकता व्यक्त की।

केंद्रीय संस्थानों और राज्य प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थानों में 'प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण' तथा प्रवेश, मिड कैरियर, अनुकूलन, नियमित प्रशिक्षण आदि जैसे विभिन्न स्तरों पर प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु विभाग केंद्रीय संस्थानों को 6 लाख रूपए की सीमा तक निधियां उपलब्ध कराएगा। इसी प्रकार राज्य प्रशासनिक संस्थानों में 'प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण' तथा प्रवेश, मिड कैरियर, अनुकूलन, नियमित प्रशिक्षण जैसे विभिन्न स्तरों पर प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु विभाग राज्य प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थानों को 4 लाख रूपए की सीमा तक निधियां उपलब्ध कराएगा। उपर्युक्त प्रस्ताव की कुल लागत 274 लाख रुपये हैं। चरण – 1 के लिए निधियां जारी कर दी गई हैं। चरण – 2 के लिए निधियां विकसित माड्यूलों के ब्यौरें तथा चरण – 1 के संबंध में उपयोगिता प्रमाणपत्र प्राप्त होने के बाद जारी की जाएगी।

(घ) उपायुक्तों / जिलाधिकारी के कार्यों का मूल्यांकन करने के लिए अध्ययन

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपनी 15वीं रिपोर्ट ''राज्य और जिला प्रशासन'' में उपायुक्तों / जिलाधिकारियों के कार्यों को सशक्त बनाने के लिए विभिन्न उपायों का सुझाव दिया है। तदनुसार, राष्ट्रीय प्रशासनिक अनुसंधान

संस्थान को ''राज्यों में जिलाधिकारियों के कार्यों का मूल्यांकन / प्रभाव का आकलन'' पर अध्ययन करने का कार्य सौंपा गया है जिस पर 76.93 लाख रूपये (छिहत्तर लाख तिरानवे हजार रूपये) का व्यय होगा।

(ड़) आईएमजी, तिरूवनंतपुरम, केरल में राष्ट्रीय भूमि शासन केंद्र की स्थापना का प्रस्ताव

(i) सरकार में प्रबंधन संस्थान, तिरूवनंतपुरम, केरल में राष्ट्रीय भूमि शासन केंद्र की स्थापना की गई है। चरण – 1 में 12 लाख रूपये और चरण – 2 में 18 लाख रूपये का व्यय होगा। चरण – 1 के लिए निधियां जारी कर दी गई हैं। चरण – 2 के लिए निधियां आईएमजी, केरल से चरण – 1 के संबंध में उपयोगिता प्रमाणपत्र प्राप्त होने के बाद अब जारी की गई है।

(ii) आईएमजी में प्रस्तावित राष्ट्रीय भूमि शासन केंद्र, भूमि शासन के क्षेत्र में क्षमता निर्माण के एक भाग के रूप में केंद्र और राज्य सरकार के अधिकारियों को प्रशिक्षण देने का कार्य करेगा। प्रशिक्षणों की परिकल्पना प्रवेश, सेवाकालीन और अनुकूलन कार्यक्रमों के फार्मेट में की गई है।

सिविल सेवा दिवस

(क) भारत सरकार द्वारा प्रत्येक वर्ष 21 अप्रैल को 'सिविल सेवा दिवस' के रूप में सिविल सेवकों को स्वयं को नागरिकों के लिए पुनर्समर्पित करने तथा लोक सेवा और कार्य में उत्कृष्टता हेतु अपनी वचनबद्धता को पुनर्सज्जित करने के लिए एक अवसर के रूप में मनाया जाता है। इस प्रकार का पहला समारोह 21.04.2006 को विज्ञान भवन में आयोजित किया गया। इस अवसर पर सिविल सेवकों को लोक प्रशासन के क्षेत्र में किए गए उनके उत्कृष्ट कार्य के लिए प्रधानमंत्री द्वारा पुरस्कृत किया जाता है। 21 अप्रैल का चयन इसलिए किया गया है क्योंकि इस तारीख को देश के प्रथम गृह मंत्री श्री वल्लभ भाई पटेल ने भारतीय प्रशासनिक सेवा अधिकारियों के पहले बैच को संबोधित किया था।

(ख) 21 अप्रैल, 2013 को आठवें सिविल सेवा दिवस के अवसर पर माननीय प्रधानमंत्री जी ने वर्ष 2011–12 हेतु लोक प्रशासन में उत्कृष्टता के लिए तीन श्रेणियों यथा वैयक्तिक, टीम और संगठन में सात पहलों को पुरस्कार प्रदान किया। इस अवसर पर प्रशासनिक सुधार पहलों पर अनुकरणीय लेखों के एक संकलन ''थिकिंग ऑऊट ऑफ दी बॉक्स'' का भी विमोचन किया गया। इस अवसर पर निम्नलिखित तीन विषयों – 'सिविल सेवा – भविष्य के लिए तैयार' – 'लोक सेवा प्रदायगी की चुनौतियों का समाधान' और 'रोजगार केंद्रित ग्रामीण अर्थव्यवस्था' पर पैनल चर्चा भी आयोजित की गई थी। समाज के विशिष्ट सदस्यों ने भी इसमें भाग लिया और अपने विचारों का आदान–प्रदान किया। इसके अतिरिक्त, श्री नरेश चन्द्र, पूर्व मंत्रिमंडल सचिव ने 'सिविल सेवाएं : अवसर और चुनौतियां' विषय पर व्याख्यान दिया।

लोक प्रशासन में उत्कृष्टता के लिए प्रधानमंत्री पुरस्कार योजना

(क) भारत सरकार ने केंद्र और राज्य सरकार के अधिकारियों द्वारा किये गये असाधारण और नव प्रवर्तनकारी कार्य–निष्पादन को अभिस्वीकृति एवं मान्यता देने और पुरस्कृत करने के लिए 'लोक प्रशासन में उत्कृष्टता हेतु प्रधानमंत्री पुरस्कार' शुरू किया है। इस योजना के अंतर्गत लोक सेवकों के उत्कृष्ट एवं अनुकरणीय कार्य निष्पादन के लिए पुरस्कार प्रदान किया जाता है। नेमी प्रकार की ड्यूटी और जिम्मेदारियों का निर्वहन और / अथवा सामान्य रूप से कार्यक्रमों / परियोजनाओं के कार्यान्वयन हेतु पुरस्कार का पात्र नहीं बनाया जाता है। वे पहल और परियोजनाएं जिनके गुणात्मक एवं मात्रात्मक निष्कर्ष / परिणाम बहुत ही ऊंचे हैं और जिनसे अनेक नागरिकों / पणधारियों को लाभ पहुंचा हो, उन पर विचार किया जा सकता है। केंद्र और राज्य सरकारों के सभी कार्यरत अधिकारी व्यक्तिगत रूप से अथवा एक समूह या संगठन के रूप

में पुरस्कारों के लिए पात्र हैं। समूह नामांकन के अंतर्गत, समूह के सभी सदस्यों को नामांकित की गई पहल में सक्रिय रूप से और प्रत्यक्ष रूप से शामिल होना चाहिए।

(ख) वैयक्तिक, टीम और संगठन श्रेणियों के अंतर्गत अधिकतम 15 पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं। इस पुरस्कार में निम्नलिखित शामिल हैं –

(i) एक पदक

(ii) एक स्क्रोल और

(iii) एक नकद पुरस्कार

वैयक्तिक श्रेणी में पुरस्कार की राशि 1 लाख रूपये है। टीम के मामले में कुल पुरस्कार की राशि 5 लाख रुपये है जिसमें प्रत्येक सदस्य के लिए अधिकतम राशि 1 लाख रुपये है। एक संगठन के लिए पुरस्कार की राशि 5 लाख रुपये है। किसी व्यक्ति अथवा अधिकारियों के किसी समूह या किसी संगठन के नामांकन केन्द्र सरकार के विभाग / मंत्रालय / राज्य सरकारों / गैर सरकारी संगठनों और अन्य स्टेकधारियों द्वारा किया जा सकता है। नामांकनों की जांच सचिव, प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समिति द्वारा की जाती हैं। यह समिति अपनी ओर से भी विचारणीय पहलों को शामिल कर सकती है। इस समिति द्वारा छांटी गई पहलों पर स्थल अध्ययन किये जाते हैं। यह समिति अध्ययन रिपोर्टों पर भी विचार करती है और मंत्रिमंडल सचिव की अध्यक्षता में गठित शक्ति प्राप्त समिति को अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करती है। उसके बाद शक्ति प्राप्त समिति पुरस्कारों के लिए सिफारिश किए गए अधिकारियों की सतर्कता स्थिति एवं समग्र कार्य निष्पादन का मूल्यांकन करने के बाद प्रधानमंत्री को विचार के लिए अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करती हैं। विशेषज्ञ समिति और शक्ति प्राप्त समिति दोनों में सदस्यों का नामांकन प्रधानमंत्री के अनुमोदन किया जाता है।

वर्ष 2011–12 हेतु लोक प्रशासन में उत्कृष्टता के लिए प्रधानमंत्री पुरस्कार की सूची अनुबंध–VIII में दी गई है।

जिलाधिकारियों का सम्मेलन

यह विभाग श्रेष्ठ प्रथाओं का प्रचार–प्रसार करने के लिए उनकी पहचान करने तथा अन्य राज्यों / संघ राज्यों क्षेत्रों में नव–प्रवर्तन / अपनाने / पुनः दोहराने को सुकर बनाने का प्रयास करता है। इस सम्मेलन ने उन जिलाधिकारियों के बीच आदान –प्रदान की प्रक्रिया का संस्थानीकरण किया है जिन्होंने अपने क्षेत्र में अनुकरणीय कार्य किया है। जिलाधिकारियों का द्वितीय सम्मेलन दिनांक 6–7 सितम्बर, 2013 को विज्ञान भवन सौध, नई दिल्ली में आयोजित किया गया था। डॉ० कवुरू सावासिवा राव, केंद्रीय मंत्री, वस्त्र और श्री वे०नारायणसामी, माननीय राज्य मंत्री कार्मिक, लोक शिकायत तथा प्रधानमंत्री कार्यालय ने इस आयोजन का शुभारंभ कर संबोधित किया। ग्रामीण विकास, शिक्षा, शहरी विकास, आपदा प्रबंधन और कानून एवं व्यवस्था सहित महिलाओं के मुद्दों पर विशेष ध्यान केंद्रित करते हुए तकनीकी सत्र का आयोजन किया गया। सचिव (ग्रामीण विकास), सचिव, (शहरी विकास), सचिव, सुरक्षा प्रबंधन (गृह मंत्रालय) और सचिव (महिला और बाल विकास), सचिव (योजना आयोग) और भारत सरकार के अन्य वरिष्ठ अधिकारियों ने पैनल चर्चा में भाग लिया और प्रशासन के क्षेत्र में अपने व्यापक अनुभवों का आदान–प्रदान किया। श्री अजीत सेठ, मंत्रिमंडल सचिव ने समापन संबोधन दिया था। इस दो दिवसीय सम्मेलन में लगभग 30 जिलाधिकारियों ने भाग लिया था।

कुछ संदर्भ

- द्वितीया ए०आ०सी० की रिपोर्ट देखें।

कुछ प्रश्न

- वित्तीय प्रबन्ध के क्षेत्र से सम्बन्धित द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशें बताए।
- वित्तीय प्रबन्ध में द्वितीय प्रशासनिक सुधार की सिफारिशों के क्रियान्वयन का मूल्यांकन करो।

अध्याय – 10

कर प्रशासन : अर्थ, महत्व, प्रकार, विशेषताएँ

(Taxation Administration : Meaning, Importance, Types, features)

रूपरेखा

- उद्गम
- अर्थ तथा उद्देश्य
- कर मशीनरी व प्रत्यक्ष कर वृद्धि–अप्रत्यक्ष कर वृद्धि
- विशेषताएँ
- करों के प्रकार
- जीएसटी
- सारांश
- कुछ उपयोगी पुस्तकें
- कुछ प्रश्न

प्राचीन काल में करों का राजकीय व्यवस्था में कोई स्थान नहीं था तथा सन् 1500 तक इसके बारे में सोचा भी नहीं गया था। 1500 के बाद ही करों से आय प्राप्त करने की पहल की गयी। कर मुख्यतया धन एकत्र करने के उद्देश्य से लगाये जाते थे। राज्य की आय के स्रोतों में करों का प्रमुख स्थान होता है। आधुनिक युग में 'कर' सार्वजनिक आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा वसूल किया जाने वाला अनिवार्य भुगतान कर कहलाता है। कल्याणकारी कार्यों को पूरा करने तथा आर्थिक विकास हेतु साधन एकत्रित करने हेतु सरकार करारोपण का सहारा लेती है।

सरकार की समस्त क्रियाओं का आधार उसकी आय होती है, जिसका राजस्व में महत्वपूर्ण स्थान है। सरकार के कर्त्तव्यों में वृद्धि होने से सार्वजनिक व्यय की मात्रा बढ़ती जाती है और उसे पूरा करने के लिए जनता पर कर लगाये जाते हैं जिसे जनता को सहन करना ही होता है। वर्तमान समय में प्रशुल्क नीति की सहायता से सरकार देश की आर्थिक समस्याओं को दूर करने के प्रयास कर रही हैं। सार्वजनिक आय सम्बन्धी नीतियों का प्रयोग बचत, विनियोग एवं उत्पादन को बढ़ाने के लिए किया जाता है। विकसित एवं अविकसित राष्ट्रों में आर्थिक स्थिरता लाने के लिये आय सम्बन्धी नीति का प्रयोग किया जाता है। एक अच्छी कर प्रणाली में विभिन्न करों को इस प्रकार से समायोजित किया जाता है कि उनका सामूहिक प्रभाव समाज पर अच्छा पड़े। 'कर' सार्वजनिक आय का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। 'कर' मुद्रा के रूप में एक अनिवार्य अंशदान है, जो नागरिकों के सामान्य हित एवं कल्याण के लिए सरकार द्वारा नागरिकों से वसूल किया जाता है। प्रो० सेलिगमैन के अनुसार, ''कर व्यक्तियों द्वारा सरकार को दिया गया वह अनिवार्य भुगतान है, जो सामान्य लाभ के कार्यों हेतु लिया जाता है जिसका मिलने वाला विशेष लाभ से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।''

कर के उद्देश्य (Objective of Taxation)

करारोपण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं –

1 **आय प्राप्त करना (To get Income)** : करारोपण का सबसे प्रमुख तथा प्राचीनतम उद्देश्य आय प्राप्त करना है। राज्य को विभिन्न कार्यों को पूरा करने के लिए कर लगाने पड़ते हैं और इसलिये राज्य को कर लगाते समय यह देखना होता है कि इस कर से अधिक आय प्राप्त हो सकती है या नहीं। जिन करों से राज्य सरकार अधिक आय प्राप्त नहीं कर पाती, उनको समाप्त कर दिया जाता है

2 **उपभोग पर रोक लगाना (To Restrict on Consumption)** : कर का उद्देश्य यह भी होता है कि कुछ वस्तुओं के उपभोग पर रोक लगाई जा सके। समाज में कुछ ऐसी वस्तुओं का उपयोग होता है जिससे नैतिक पतन होने लगता है तथा लोगों का स्वास्थ्य गिर जाता है और स्वास्थ्य के गिरने पर कार्य करने की क्षमता कम हो जाती है। आय का अधिकांश भाग इन मादक पदार्थों पर व्यय कर देता है और शेष आय इतनी रह जाती है कि जिससे अनिवार्य वस्तुओं तक का उपभोग करना कठिन हो जाता है। अतः मादक पदार्थों का उपभोग केवल उपभोक्ता के लिये हानिकारक नहीं होता, बल्कि देश के लिये भी वह हानिकारक होता है क्योंकि कार्य करने की क्षमता के कम होने से देश का उत्पादन घट जाता है। इन वस्तुओं के उपभोग को रोकने के लिये सरकार कर की सहायता लेती है।

3 **समाज में धन की असमानता कम करना (To Minimise the Unequality of Wealth in Society)** : आर्थिक असमानता देश की शत्रु होती है। एक लोक हितकारी राज्य (Welfare State) की स्थापना तभी हो सकती है जबकि देश में आर्थिक असमानता कम हो तथा धन का समान वितरण हो। इस असमानता को कर की सहायता से दूर किया जा सकता है। सरकार धनी वर्ग पर भी भारी मात्रा में प्रत्यक्ष कर (Direct Tax) लगाकर उनसे भारी मात्रा में धन खींच लेती है। जिससे वे अधिक धनी नहीं होने पाते। इन करों से जो आय प्राप्त होती है, उसे निर्धन वर्ग के हित पर व्यय किया जाता है जिससे निर्धनों का रहन–सहन का स्तर ऊँचा हो जाता है। इससे धनी और निर्धन के बीच असमानता की खाई कम होने लगती है।

4 **आयात–निर्यात पर रोक लगाना (To Restrict on Import and Export)** : कर लगाने का उद्देश्य कभी–कभी आयात–निर्यात पर रोक लगाने का भी होता है। जब सरकार यह समझती है कि वस्तुओं का उत्पादन देश में कम हो रहा है और वह देश के लिये पर्याप्त नहीं है तो सरकार उस पर भारी निर्यात कर (Export Duty) लगा देती है, जिससे विदेशी उपभोक्ता उसे खरीदना बन्द कर देते हैं जिससे उस वस्तु का निर्यात कम हो जाता है। इसी प्रकार यदि सरकार अपने देश में किसी उद्योग का विकास करना चाहती है तो वह वस्तु के आयात को कम करने के लिये भारी आयात कर (Import Duty) लगायेगी, जिससे उस विदेशी वस्तु की कीमत देशी बाजार में अधिक हो जायेगी और लोग अपने देश की बनी वस्तुओं का उपभोग करेंगे। इस प्रकार आयात–निर्यात पर रोक लगाने के लिये भी सरकार कर का सहारा लेती है।

5 **राष्ट्रीय आय में वृद्धि (To Increase the National Income)** : करों के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो जाती है तथा कर लगाने से इसका अच्छा प्रभाव उत्पादन व आय प्राप्त करने पर भी देखा जा सकता है।

लर्नर के अनुसार कराधान का मुख्य उद्देश्य व्यक्तियों की क्रय शक्ति को कम करना है। इसलिए सरकार मुद्रा–स्फीतिक परिस्थितियों में कराधान का प्रयोग करती है। इस प्रकार एक देश में कर प्रशासन को दो उद्देश्यों को पूरा करना पड़ता है प्रथम राष्ट्र की कर–संभाव्यता का दोहन करके राष्ट्रीय तंत्र को चलाने के लिए आगम एकत्र

करना और द्वितीय राजकोषीय प्रभावों के द्वारा समुदाय के सामाजिक आर्थिक ढ़ांचे में ऐच्छिक परिवर्तन लाना तथा कीमतों, उपभोग, रोजगार तथा आय–सम्पत्ति के वितरण को ऐच्छिक स्तर पर बनाए रखना।

एक देश की कर व्यवस्था उस देश की सरकार के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्यों को प्रतिबिम्बित करती है। सरकार के लिए पर्याप्त मात्रा में साधन एकत्र करने के अलावा कर नीति के उद्देश्य स्फीति पर नियन्त्रण, आय के पुन–र्वितरण को प्रभावित करना, आय व सम्पत्ति के वितरण की असमानताओं को कम करना, अनैच्छिक उपभोग अथवा उत्पादन पर नियंत्रण करना आदि हैं। कर नीति के इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सक्षम कर प्रशासन सरकार के हाथों में एक बहुत बड़ा अस्त्र है।

इसके अतिरिक्त, प्रभावी व सक्षम कर प्रशासन की सहायता से सरकार नीतियों के निर्माता उद्देश्यों को पूरी करने के लिए बड़े पैमाने पर क्रियाओं और उनके विभिन्न संयोगों को अपना सकते हैं।

भारत में कर प्रशासन की मशीनरी

(Machinery for Tax Administration in India)

केन्द्रीय करों के प्रशासन की जिम्मेदारी वित्त मंत्रालय, भारत सरकार की है। कर प्रशासन की दो शीर्ष संस्थायें केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क बोर्ड है। केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड में एक अध्यक्ष और तीन कार्यात्मक सदस्य (Functional Members) होते हैं। यह सभी सामूहिक रूप से प्रत्यक्ष कराधान से संबंधित नीतियों के निर्माण के लिए उत्तरदायी होते हैं। केन्द्रीय प्रत्यक्ष करों में निजी वैयक्तिक कर, निगम कर, सम्पत्ति कर, उपहार कर और पूंजीगत लाभ करों को शामिल किया जाता है। यह बोर्ड सम्पदा शुल्क के प्रशासन की भी देख–रेख करता है। बोर्ड स्वायत्त संस्था नहीं होती इसलिए बोर्ड के कार्यों में सरकार का हस्तक्षेप व प्रभाव इसकी एक सामान्य विशेषता है।

प्रत्यक्ष करों में निजी आय कर और निगम कर, कर राजस्व के प्रमुख स्त्रोत हैं। निजी आय प्रशासन में आयकर अधिकारी का महत्वपूर्ण पद है। प्रत्येक आयकर अधिकारी के अधिकार क्षेत्र में एक निश्चित इलाका अथवा आय अर्जित करने वाला वर्ग होता है। आय कर अधिकारी के कार्य की जांच और नियंत्रण का कार्य सहायक आयुक्त (Assistant Commissioner) करता है। प्रथम स्तर पर अपील की सुनवाई सहायक आयुक्त अपील (Appellate Assistant Commissioner) द्वारा की जाती है। आयकर अधिकार, सहायक आयुक्त (निरीक्षण) और सहायक कमीशनर, अपील सभी आय कर आयुक्त के अन्तर्गत कार्य करते हैं। 1969–70 में एक नये कैडर अतिरिक्त आयकर आयुक्त (Additional Commissioner of Income Tax) का सृजन किया गया। आयकर आयुक्त पद के समकक्ष जांच निदेशक (निरीक्षण), अखिल भारतीय अपील, सम्पदा शुल्क नियंत्रक, जांच निदेशक (आय कर अंकेक्षण), जांच निदेशक (अनुसंधान, सांख्यिकी और प्रकाशन) और CPM निदेशक के अलावा तीन अन्य निदेशक हैं जो प्रत्यक्ष कर प्रशासन के समूचे तंत्र का पर्यवेक्षण और नियंत्रण करते हैं।

1972 में जांच निदेशालय (निरीक्षण) में एक विशिष्ट कक्ष का सृजन किया गया। यह भारत के बड़े व्यवसायिक घरानों के कर–मूल्यांकन पर नजर रखता है। 'विदेशी कर प्रभाग' के नाम से एक अलग प्रभाग को कायम किया गया। बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के सबसे वरिष्ठ आय कर आयुक्तों को उनके क्षेत्रों में जांच निदेशक के तौर पर काला धन निकालने के लिए नियुक्त किया जाता है। इन जांच निदेशकों को काफी अधिकार और शक्तियां प्राप्त होती हैं।

संघ द्वारा लगाये गये प्रमुख अप्रत्यक्ष करों में सीमा और उत्पाद शुल्क हैं। अप्रत्यक्ष कर का केन्द्रीय बोर्ड अप्रत्यक्ष करों से सम्बन्धित नीतियों को संचालित करने में सरकार को सलाह देने वाली सबसे शीर्ष संस्था है। यह संस्था भारत सरकार की अप्रत्यक्ष करों के प्रशासन और निर्देशित करने में भी सहायक होती है। इसमें एक अध्यक्ष और तीन सदस्य होते हैं। विशिष्ट ड्यूटी पर कुछ अधिकारी और निदेशक इसके अन्तर्गत कार्य करते हैं।

बोर्ड में एक प्रशासनिक और अपील खंड होता है। अप्रत्यक्ष कर प्रशासन का सीमा व उत्पादन शुल्क सम्बन्धी सारा दायित्व संग्राहकों (Collectors) पर होता है। इन अधिकारियों की एक खंड से दूसरे खंड में बदली होती रहती है।

कर प्रशासन की मुख्य विशेषतायें

(Main Features of Tax Administration)

भारत को ब्रिटिश साम्राज्य से कर प्रशासन विरासत में प्राप्त हुआ। इस कर प्रशासन को मिलीटरीनुमा प्रशासन चलाने अथवा एक नीति को क्रियान्वित करने के लिए कायम किया गया ताकि ज्यादा से ज्यादा वसूली की जा सके। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इसी प्रशासन का उपयोग प्रजातांत्रिक कल्याणकारी राजस्व जिसके कुछ विशिष्ट आर्थिक–सामाजिक उद्देश्य थे, की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया गया।

कर प्रशासन की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं –

1 **जनता के विश्वास का अभाव (Lack of Public Confidence) :** हमें यह समझना चाहिए कि कोई भी प्रशासन शून्य (vacuum) में कार्य नहीं करता। प्रत्येक चरण पर इसका सम्बन्ध जनता के साथ होता है और चूंकि एक रूप में अथवा अन्य रूप में एक कर या करों का प्रभाव लगभग प्रत्येक व्यक्ति तक अवश्य पहुंचता है। इसलिए कर प्रशासन को समूचे देश के साथ सम्बन्ध बनाना पड़ता है। कर अधिकारियों का आम जनता के प्रति जो दृष्टिकोण होता है उसके कारण आम जनता का कर प्रशासन में विश्वास नहीं होता। करदाताओं के साथ समझदारी व नम्रता के साथ पेश आना चाहिए। प्रजातांत्रिक देशों में यह महसूस किया गया है कि करों का संग्रह अविवेकपूर्ण और असुविधाजनक होता है। हाल ही में कर अधिकारियों के दृष्टिकोण व जो कुछ बदलाव आया है उसमें अभी और परिवर्तन की जरूरत है।

सामान्य अर्थव्यवस्था पर कर कानूनों और नीति का प्रभाव कर प्रशासन द्वारा की गयी व्याख्या (Interpretation) पर निर्भर करता है यदि कर प्रशासन इतना कमजोर अथवा भ्रष्ट है कि कर चोरी की दर काफी अधिक है तब नीतिगत निर्णयों का क्रियान्वयन व्यर्थ हो जाता है और इसके परिणामस्वरूप समाज का सामाजिक–आर्थिक ढांचा विकृत हो जाता है।

एक अच्छी या श्रेष्ठ कर प्रणाली के लिए निम्न मूल दशाओं का होना आवश्यक है –

(i) कर कानून सरल और स्पष्ट भाषा में होना चाहिए जिससे प्रशासन सुचारू रूप से कार्य कर सके और करदाता भी आसानी से समझ सके।

(ii) अतार्किक और अविवेकी करों से जहाँ तक संभव हो, बचा जाना चाहिए।

(iii) निजी और निगम आय कर का आधार व्यापक होना चाहिए जिससे करों की दरों को बढ़ाये बिना पर्याप्त मात्रा में राजस्व प्राप्त हो सके। कर की दरें कम होने पर करों की चोरी की संभावना भी कम होगी।

(iv) जिस वस्तु अथवा सेवा पर कर लगाया जा रहा है जहाँ तक संभव हो, उसके बारे में पूरी और सही सूचना प्राप्त की जानी चाहिए।

कर प्रशासन के कर्मचारियों को इस कार्य के लिए पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित और प्रबंध की आधुनिक तकनीकों से सुसज्जित करना चाहिए। कर प्रशासन प्रवैगिक होना चाहिए जो समाज के आर्थिक और सामाजिक ढांचे के अनुसार परिवर्तित हो सके तथा जनता का विश्वास जीत सके।

2 **कर कानूनों में कमी के फलस्वरूप करों की चोरी (Loop-holes in Taxes Laws Resulting in Tax Evasion)** : जनता को यह विश्वास दिलाना जाना चाहिए कि कर उचित ही लगाए हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग का भुगतान करता है। यदि आम जनता में यह भावना घर कर जाती है कि कर व्यवस्था कर चोरी और कमियों का पुलिंदा है तो इससे ईमानदार कर दाता नैतिक रूप से हतोत्साहित हो जाएगा। अब कर चोरी लगातार बड़े पैमाने पर हो तो यह कर दाता, अधिकारी और राजनीतिज्ञों के गठबंधन के कारण ही संभव होती है। कर चोरी काली मुद्रा के सृजन का एक बहुत बड़ा कारण है।

3 **जटिल कर व्यवस्था और कानून (Complex Tax Laws and System)** : भारत में साधारणतया कर कानून जटिल और उलझनपूर्ण हैं। यह कानून संशोधनों और पुनः संशोधनों की उपज है। औपचारिक ढांचे में यह काफी परिनिष्ठत और सुरक्षित दिखायी पड़ते हैं लेकिन वास्तविकता में यह कमियों और अस्पष्टताओं से भरे पड़े हैं जिसमें मनमर्जीपन, अक्षमता और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।

4 **कर संग्रह में बहु–सत्ता (Multiple-Authorities for Tax Collection)** : केन्द्र और राज्यों द्वारा लगाए गए विभिन्न करों का संग्रहण अलग–अलग सत्ताधारियों द्वारा किया जाता है। राज्य में भूमि राजस्व, शहरी भूमि पर कर उसे प्रत्यक्ष कर और बिक्री कर व राज्य उत्पाद शुल्क जैसे अप्रत्यक्ष कर होते हैं। इन करों का प्रशासन राज्य के विभिन्न कर सत्ताधारियों के हाथों में होता है। संघ सरकार भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों का संग्रहण विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं के माध्यम से करती है। सही कर–आधार की जांच के लिए न तो इनमें आपस में कोई राय होती है और न ही तिरछी जांच (Cross-Checking) की जाती है। एक उत्पाद पर प्रारम्भ में उत्पादन शुल्क की, की गई चोरी आयकर, बिक्री कर आदि चोरी के लिए प्रेरित करती है। अतः कर प्रशासन की विभिन्न व्यवस्थाओं में समन्वय होना बहुत आवश्यक है ताकि करों की चोरी को रोका जा सके।

5 **कर प्रशासन के द्वारा कराधान में न्याय संभव नहीं (Justice in Taxation could not be achieved by the Tax Administration)** : भारतीय कराधान जांच आयोग ने इस पक्ष पर जोर देते हुए यह पाया है कि ''राज्य–नागरिकों के सम्बन्धों में करों के अलावा शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जहां यह इतना आवश्यक है कि न्याय केवल किया ही नहीं जाना चाहिए बल्कि न्याय होता हुआ दिखाई भी देना चाहिए।'' इसलिए कर कानून स्पष्ट होने चाहिए तथा कर संग्रहण शीघ्रतापूर्वक किया जाना चाहिए। कर संग्रहण के कार्य में जो कर्मचारी कार्यरत हैं। उन्हें पूरी क्षमता के साथ धैर्य व चतुराई से अपने कार्य को अंजाम देना चाहिए।

भारतीय कर प्रशासन कर संग्रहण के कार्य को बहुत अच्छी प्रकार से पूरा करती है लेकिन यह उस स्तर से यह कार्य नहीं कर पायी जिसकी एक विकासशील समाजवादी अर्थव्यवस्था में आशा की जाती है।

6 **आदाताओं की संख्या में वृद्धि (Growth in the Number of Assesscees)** : भारत में कर आदाताओं (Assessees) की संख्या में भारी वृद्धि हुई है जिसके कारण कर प्रशासनिक मशीनरी पर कार्य का बोझ और तनाव बढ़ गया है। कानूनों और प्रक्रियाओं की जटिलता तथा कार्य भार में बढ़ोत्तरी के कारण बकाया राशि

में भारी वृद्धि हुई है। 31 दिसम्बर, 1971 तक बकाया राशि की मात्रा बढ़कर 1009 करोड़ रूपए हो गयी। बकाया राशि का संचय भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है।

7 **संघीय उत्पाद शुल्क का प्रशासन (Union Excise Tax Administration) :** संघीय उत्पादन शुल्क का प्रशासन सीधा और प्रभावशाली है। यह व्यवस्था भी काफी व्यापक है। विनिर्माताओं को लाइसेंस जारी किया जाता है और उत्पाद शुल्क अधिकारी फैक्ट्री परिसर में ही कार्य करते हैं। इनको प्रवेश, तलाशी, पकड़ने व रोकने (Detention) संबंधी काफी अधिकार होते हैं। विनिर्माताओं पर अधिकारियों का पूर्ण नियंत्रण रहता है। कर का संग्रहण निकासी (Clearance) पर किया जाता है।

8 **बिक्री कर प्रशासन (Sales Tax Administration) :** भारत में बिक्री कर कानूनों में तीन प्रमुख कमियां हैं – प्रथम, कर कानून अस्पष्ट और काफी जटिल हैं जिसमें करों की चोरी आसानी से हो जाती है। द्वितीय, जांच (Assessment) के कार्य में काफी देरी हो जाती है जिससे ईमानदार कर दाता के विश्वास को ठेस पहुंचती है। तीसरे, जांच व निरीक्षण के कार्य में अधिकारियों द्वारा लापरवाही बरती जाती है।

कर प्रशासन लोक आर्थिक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण खंड है जिसके द्वारा राजकोषीय उपायों के माध्यम से सामाजिक–आर्थिक उद्देश्यों और ठोस वित्तीय शस्त्र की प्राप्ति की जाती है। इस खंड की दक्षता सरकारी प्रशासन की एक पूर्व दशा है। राष्ट्रीय आर्थिक–सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों की सफलता काफी कुछ कर प्रशासन की कुशलता पर निर्भर करते हैं। अतः समाजवादी विकासशील अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भारतीय कर प्रशासन पर ध्यान देने की आवश्यकता काफी अधिक है।

करों को विभिन्न व्यक्तियों पर पड़ने वाले प्रभावों के आधार पर दो भागों में बांटा जाता है – (i) प्रत्यक्ष कर एवं (ii) अप्रत्यक्ष कर। इन दोनों प्रकार के करों में अन्तर समझने से पूर्व हमें इनके अर्थ को भली प्रकार समझ लेना चाहिए।

प्रत्यक्ष कर (Direct Taxes)

प्रत्यक्ष कर वह है जो कि उन्हीं व्यक्तियों द्वारा भुगतान किए जाते हैं जिन पर कि ये लगाये जाते हैं अर्थात् उनका भार किसी दूसरे व्यक्ति पर नहीं डाला जा सकता। प्रत्यक्ष करों का भार उसी व्यक्ति को अन्तिम रूप से वहन करना पड़ता है जिन पर इसे लगाया जाता है। ये कर प्रायः किसी व्यक्ति की आय और धन पर लगाया जाता है। भारत में आय–कर व धन–कर इसके अच्छे उदाहरण हैं। प्रो० मेहता के अनुसार, ''प्रत्यक्ष कर वह कर है जो उसी व्यक्ति द्वारा पूर्ण रूप से दिया जाता है जिस पर कि यह लगाया जाता है।''

अप्रत्यक्ष कर (Indirect Taxes)

प्रत्यक्ष कर के विपरीत अप्रत्यक्ष कर वे कर हैं जो कि जिन व्यक्तियों पर लगाया जाता है वे यद्यपि सरकार को इसका भुगतान करने के लिए उत्तरदायी हैं लेकिन वे इस कर को किसी दूसरे व्यक्ति से वसूल कर सकते हैं अतः कर का भार दूसरे व्यक्ति को विवर्तित (Shift) किया जा सकता है। इस प्रकार वे कर लगाये किसी व्यक्ति पर जाते हैं जबकि इसका अन्तिम भार अन्य व्यक्तियों पर पड़ता है। इस प्रकार के कर प्रायः वस्तुओं पर उनके उत्पादन अथवा बिक्री के समय लगाये जाते हैं। भारत में उत्पादन कर, बिक्र कर, मनोरंजन कर आदि अप्रत्यक्ष कर के उदाहरण हैं। करदाता इन करों को वस्तुओं के मूल्य में जोड़कर उपभोक्ता से वसूल कर लेते हैं।

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों में अन्तर

(Difference Between Direct and Indirect Taxes)

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों में अन्तर का मुख्य आधार कर का दायित्व (Impact) एवं कर का भार (Incidence) है। प्रत्यक्ष कर में कर का दायित्व एवं भार एक ही व्यक्ति पर होता है अर्थात् ये जिस व्यक्ति पर लगाये जाते हैं उसी व्यक्ति द्वारा वास्तव में भुगतान भी किए जाते हैं। इनका विर्वतन संभव नहीं है। जबकि दूसरी ओर अप्रत्यक्ष करों में कर का दायित्व एवं कर का भार अलग–अलग व्यक्तियों पर होता है। जिस व्यक्ति पर कर का दायित्व डाला जाता है वास्तव में वह व्यक्ति उस कर को वस्तुओं के मूल्यों में जोड़कर वस्तु के क्रेता से वसूल कर लेता है और इस प्रकार उसका भार विवर्त (Shift) कर दिया जाता है और वह अन्तिम रूप से उसके द्वारा वहन नहीं किया जाता जिस पर यह डाला गया था। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष कर व्यक्तियों पर लगाये जाते हैं जबकि अप्रत्यक्ष कर जैसे बिक्री कर उत्पादन कर आदि वस्तुओं पर लगाये जाते हैं।

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों के सापेक्षिक गुण–दोष

(Relative Merits and Demerits of Direct and indirect Taxes)

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों का अर्थ समझ लेने के पश्चात् अब हम उनके सापेक्षिक गुण–दोषों पर विचार करेंगे।

प्रत्यक्ष करों के गुण (Merits of Directs Taxes)

प्रत्यक्ष करों के निम्न मुख्य गुण हैं –

1 **न्यायशील (Equitable) :** ये कर समानता एवं न्यायशीलता के आधार पर लगाये जाते हैं क्योंकि ये कर प्रत्येक वर्ग की भुगतान–क्षमता (Ability to Pay) के आधार पर लगाये जाते हैं। अतः इनका भार धनी वर्ग पर अधिक ओर निर्धन वर्ग पर कम होता है। एक निश्चित सीमा तक आय वाले व्यक्ति इन करों से मुक्त रखे जाते हैं।

2 **मितव्ययी (Economical) :** ये कर मितव्ययी होते हैं क्योंकि इनको वसूल करने में अधिक व्यय नहीं करना पड़ता है। ये कर या तो स्रोत पर ही काट लिए जाते हैं या उस व्यक्ति द्वारा सीधे खजाने में जमा कर दिए जाते हैं जिन पर ये लगाये गये हैं।

3 **निश्चितता (Certainty) :** इन करों में निश्चितता का गुण पाया जाता है। करदाता यह जानते हैं कि कर कितना, कब व किस दर पर भुगतान किया जाता है।

4 **लोचदार (Elastic) :** प्रत्यक्ष कर लोचपूर्ण होते हैं। कर की दरों में थोड़ा सा परिवर्तन कर देने से आय में आसानी से वृद्धि की जा सकती है। आर्थिक संकट के समय सरकार इन करों की दरों में वृद्धि करती है।

5 **सामाजिक चेतना (Civic Consciousness) :** प्रत्यक्ष कर सामाजिक चेतना को जागृत करते हैं। व्यक्ति जो कर देता है वह इस बात में भी दिलचस्पी लेता है कि सरकार कर द्वारा प्राप्त आय का प्रयोग किस प्रकार करती है। सरकार द्वारा उसका गलत प्रयोग करने पर वह उसके विरुद्ध आवाज उठाता है।

प्रत्यक्ष कर के दोष (Demerits of Direct Taxes)

प्रत्यक्ष करों के मुख्य दोष अथवा सीमायें इस प्रकार हैं –

1 **असुविधाजनक (Uncomfortable)** : प्रत्यक्ष कर करदाता के लिए असुविधाजनक एवं कष्टदायक होते हैं। कोई भी व्यक्ति खुशी से कर का भुगतान नहीं करता है। ये कर कष्टदायक होते हैं क्योंकि करदाता को अनेक खाते व हिसाब– किताब रखने पड़ते हैं व अनेक औपचारिकतायें पूरी करनी होती हैं। इसके अतिरिक्त ये कर एक साथ ही भारी मात्रा में भुगतान करने पडते हैं जबकि करदाता को आय धीरे–धीरे प्राप्त होती है।

2 **कर चोरी (Tax-evasion Simpler)** : प्रत्यक्ष करों में चोरी की संभावना होती है। जिन व्यक्तियों की आय निश्चित नहीं होती वे अपने हिसाब–किताब गलत बनाकर कर से बच जाते हैं। भारत में काले धन की समस्या का मूल कारण यही है।

3 **मनचाही कर–दर (Arbitrary Rates of Tax)** : प्रत्यक्ष करों की दर का निर्धारण सरकार की इच्छा पर निर्भर करता है। इसके लिए कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है।

4 **सीमित क्षेत्र (Limited Scope)** : इन करों का क्षेत्र बहुत सीमित है। एक बहुत बड़ी संख्या में लोग इन करों के क्षेत्र में नहीं आते। इस कर का प्रभाव बहुत कम लोगों पर ही पड़ता है।

5 **लोकप्रिय नहीं (Unpopular)** : इन करों का दायित्व एवं भार एक ही व्यक्ति पर होने के कारण इनका भार करदाता द्वारा अधिक महसूस किया जाता है। अतः वह कर को न देने का प्रयास करता है।

6 **प्रशासनिक व्यय अधिक (More Administrative Cost)** : प्रत्यक्ष करों के लिए एक अलग से संगठन बनाना पड़ता है जोकि प्रत्येक करदाता को मिल सके व उनसे कर वसूल कर सके। इस प्रकार कर वसूली की लागत बहुत अधिक आती है तथा सरकार को इस स्रोत से शुद्ध आय (Net Revenue) कम होती है।

7 **उत्पादन पर बुरा प्रभाव (Bad Effect on Production)** : प्रत्यक्ष करों का लोगों पर काम करने की इच्छा व बचत करने की इच्छा पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। लोग यह सोचते हैं कि वे जितना ज्यादा कमायेंगे उतना अधिक दर से उन्हें कर देना होगा। इसके अतिरिक्त कर बचाने के उद्देश्य से वह अपनी आय को कम दिखाता है लेकिन इस बची हुई आय का प्रयोग वह उत्पादन के लिए नहीं कर सकता। अतः उत्पादन व पूंजी निर्माण पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अप्रत्यक्ष करों के गुण (Merits of Indirect Taxes)

अप्रत्यक्ष करों के मुख्य गुण इस प्रकार हैं –

1 **सुविधाजनक (Convenient)** : ये कर करदाता और सरकार दोनों के लिए ही सुविधाजनक हैं। करदाता इसका भुगतान वस्तु खरीदते समय उनके मूल्य के एक भाग के रूप में अदा कर देते हैं अतः उन्हें इनका भार महसूस नहीं होता है। इसके अतिरिक्त करदाता इन करों का भुगतान एक–साथ नहीं करता बल्कि जब भी वह वस्तुएं खरीदेगा केवल तभी उसका भुगतान किया जाएगा। सरकार के लिए भी इनकी वसूली सुविधाजनक है क्योंकि वह इनकी वसूली वस्तु के उत्पादकों एवं विक्रेताओं से आसानी से कर लेते हैं।

2 **प्रत्येक व्यक्ति का योगदान (Contribution by Everyone)** : ये कर क्योंकि वस्तुओं पर लगाये जाते हैं और प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ क्रय करता ही है इसलिए वस्तुओं के क्रय करते समय वह कुछ न कुछ कर का भी भुगतान करता है। इस प्रकार प्रत्येक नागरिक का राजस्व में कुछ–न–कुछ योगदान रहता है।

3 **कर बचाना संभव नहीं (Non Possibility of Evasion)** : अप्रत्यक्ष करों में कर बचना संभव नहीं है क्योंकि कर वस्तु के मूल्य का ही एक भाग होता है। अतः यदि कोई व्यक्ति वस्तु खरीदता है तो उसे कर देना ही पड़ता है।

4 **लोचदार (Elastic)** : कुछ वस्तुएं इस प्रकार की होती हैं जिनकी मांग पर उनके मूल्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सरकार ऐसी वस्तुओं की कर की दरों में थोड़ा सा संशोधन करने पर भी अधिक राजस्व प्राप्त कर लेती है।

5 **सामाजिक कल्याण (Social Welfare)** : अप्रत्यक्ष कर सामाजिक कल्याण में वृद्धि करते हैं। सरकार उन वस्तुओं पर अधिक कर लगाती है जो कि हानिकारक हैं और इस प्रकार उन वस्तुओं के मूल्य बढ़ाकर उनके उपभोग को नियंत्रित करती है। इसलिए सरकार शराब, अफीम, सिगरेट आदि पर भारी कर लगाती है। इसी प्रकार सरकार कुछ वस्तुओं के उपभोग में वृद्धि करने के लिए करों को कम कर सकती है अथवा उनकों करों से मुक्त कर सकती है।

6 **विस्तृत आधार (Broad Basis)** : अप्रत्यक्ष कर किसी एक वस्तु पर नहीं लगाया जाता है। एक बड़ी संख्या में वस्तुओं पर कर लगाकर सरकार बड़ी मात्रा में राजस्व प्राप्त करती है। अनेक वस्तुओं पर कर लगने से किसी एक मद के क्रेता पर ही अधिक कर–भार नहीं पड़ता है।

7 **न्यायशीलता (Equitable)** : अप्रत्यक्ष कर समानता एवं न्यायशीलता के आधार पर लगाये जाते हैं। ऐसी वस्तुओं पर जिनका प्रयोग केवल धनी वर्ग करता है, कर की दर अधिक होती है। इसके विपरीत कुछ आवश्यक वस्तुओं पर तथा उन वस्तुओं पर जिनका प्रयोग निम्न आय वर्ग करता है कर की दर बहुत कम होती है अथवा उन पर कोई कर नहीं लगाया जाता है। इस प्रकार ये न्यायशीलता व समानता के सिद्धान्त पर आधारित हैं।

अप्रत्यक्ष करों के दोष (Demerits of Indirect Taxes)

अप्रत्यक्ष कर की प्रमुख सीमाएं इस प्रकार हैं –

1 **न्यायपूर्ण नहीं (Inequitable)** : अप्रत्यक्ष कर इस कारण न्यायपूर्ण नहीं कहे जा सकते क्योंकि वे उपभोक्ता वस्तुओं पर लगाये जाते हैं और सभी व्यक्तियों से जो भी उनको खरीदता है समान कर वसूल किया जाता है। इस प्रकार कर का भार धनी वर्ग की अपेक्षा गरीबों पर अधिक पड़ता है।

2 **आर्थिक विषमता में सहायक (Promotes Economic Inequality)** : अप्रत्यक्ष करों से आर्थिक विषमता बढ़ती है। ये कर प्रायः आवश्यक वस्तुओं (लोचहीन मांग वाली) पर अधिक लगाये जाते हैं। एक निर्धन व्यक्ति अपनी आय का एक बड़ा भाग इन वस्तुओं पर खर्च करता है अतः उस पर इनका भार अधिक होता है। इस प्रकार समाज में आर्थिक विषमता बढ़ती है।

3 **अमितव्ययी (Uneconomical)** : इस कर की वसूली पर आय का बड़ा भाग व्यय हो जाता है क्योंकि राज्य को इन करों की वसूली के लिए विभिन्न संगठन बनाने पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त इन करों की चोरी व्यापारियों एवं उपभोक्ताओं की सांठगांठ से बहुत अधिक होती है जिसका रोकने के लिए अनेक अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है। इस प्रकार ये कर अमितव्ययी हैं।

4 **अनिश्चितता (Uncertainty) :** इन करों को लगाते अथवा वृद्धि के समय सरकार इनसे प्राप्त राजस्व का ठीक–ठीक अनुमान नहीं लगा सकती। इसका प्रमुख कारण यह है कि कर से वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि हो जाती है जिसके कारण इसकी मांग कम हो जाती है। कर वृद्धि का वस्तु की मांग पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। अतः कर द्वारा प्राप्त राजस्व के बारे में अनिश्चितता बनी रहती है।

5 **सामाजिक चेतना का अभाव (Lack of Civic Consciousness) :** अप्रत्यक्ष कर सामाजिक चेतना उत्पन्न नहीं करते। इसका प्रमुख कारण यह है कि वस्तु को क्रय करते समय ही उसके मूल्य के साथ अदा कर दिया जाता है जिसका उसे अधिक भार महसूस नहीं होता। अतः वह इस बात के लिए जागरूक नहीं रहता कि उस कर का प्रयोग सरकार द्वारा ठीक किया जा रहा है या नहीं।

6 **बेईमानी को बढ़ावा (Encourage Dishonesty) :** अप्रत्यक्ष कर बेईमानी को बढ़ावा देते हैं क्योंकि (i) दुकानदार वस्तुओं का मूल्य कर की राशि से अधिक बढ़ा देता है, (ii) पुराने कर मुक्त स्टॉक को भी वह टैक्स सहित बेचता है और (iii) दुकानदार साधारणतया विक्रय के लिए कोई कैशमीमों नहीं देता और न ही ग्राहक मांगता है, (iv) गलत हिसाब–किताब बनाकर प्रस्तुत किए जाते हैं।

दोनों ही कर आवश्यक (Both One are Necessary)

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों के गुण–दोषों का विश्लेषण करने पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि दोनों में से कोई भी कर दोषमुक्त नहीं है। ये दोनों प्रकार के कर दूसरे के पूरक हैं। सरकार को एक विकासात्मक वित्त व्यवस्था के एक स्रोत के रूप में दोनों प्रकार के करों का उचित समावेश करना चाहिए जिससे एक ओर सरकार को अधिक कर मिल सके तथा दूसरी ओर समानता व न्यायशीलता के सिद्धान्त को बनाये रखते हुए उसका भार गरीब वर्ग पर कम–से–कम हो।

भारत में भी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के कर लगाये जाते हैं। आयकर, धनकर, निगम कर आदि प्रत्यक्ष कर के उदाहरण हैं जबकि विक्रय–कर, उत्पाद–शुल्क, सीमा–शुल्क आदि अप्रत्यक्ष कर के उदाहरण हैं। सरकार इन दोनों प्रकार के करों के माध्यम से कर की वसूली करती है। लेकिन दोनों में उचित सामंजस्य का अभाव है। प्रत्यक्ष कर व अप्रत्यक्ष करों का कुल राजस्व में योगदान 1991–92 में क्रमशः 17 व 83 प्रतिशत था जो कि 2000–2001 में क्रमशः 36 व 64 प्रतिशत है। इस प्रकार भारत में अप्रत्यक्ष करों के योगदान में अत्यधिक वृद्धि हुई है जोकि न्यायसंगत नहीं कही जा सकती। अप्रत्यक्ष करों का प्रभाव गरीब वर्ग पर अधिक पड़ता है जबकि प्रत्यक्ष करों का उत्पादन क्षमता व बचत पर कुप्रभाव पड़ता है। भारत में अप्रत्यक्ष करों का योगदान अधिक होने के कारण यह गरीब वर्ग हित में नहीं है। इससे आर्थिक विषमता बढ़ती है।

कर प्रणाली की आलोचना (Critcism of Tax System)

भारतीय संविधान एक अर्द्ध गण राज्य (Quasi Federal) है जहां पर त्रि–स्तरीय सरकारें (Three-tier Government) कार्य करती हैं। यह सरकारें केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार और स्थानीय सरकारें हैं। भारतीय संविधान स्थानीय सरकारों को कराधान के कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं देता। यह सरकारें सीधे तौर पर राज्य सरकारों के प्रभुत्व में होती हैं। कराधान के क्षेत्र में केन्द्र व राज्य सरकारों के बीच विवाद उत्पन्न न हो, इसलिए विभिन्न स्तर की सरकारों को कराधान के स्वतंत्र व अलग अधिकार प्रदान किए गए हैं। उदाहरण के लिए कराधान के क्षेत्र में तीन प्रमुख करों उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क व कम्पनी आय कर को केन्द्र सरकार को सौंपा गया तथा वस्तुओं की बिक्री और गतिशीलता पर कर लगाने का अधिकार राज्य सरकारों को सौंप दिया गया। प्रत्यक्ष करों के क्षेत्र में, गैर–कृषि

आय और परिसम्पत्तियों के पूंजीगत मूल्य, कम्पनी कर, मृत्यु कर आदि कर केन्द्र को सौंपे गए। दूसरी तरफ कृषि आय, भूमि, भवन तथा कृषि सम्पत्ति के सम्बन्ध में उत्तराधिकार कर लगाने का अधिकार राज्य सरकार को सौंपा गया है।

केन्द्र सरकार मुख्य रूप से तीन कर–आयकर, सीमा शुल्क व संघीय उत्पाद शुल्क लगाती है। योजना के प्रारंभिक वर्षों में सीमा शुल्क केन्द्र सरकार के कर राजस्व का प्रमुख स्रोत था। परन्तु बाद के वर्षों में इसका महत्व कम हो गया। इसका मुख्य कारण उत्पाद शुल्क के सीमा क्षेत्र का विस्तार था। आजकल केन्द्र सरकार को सबसे अधिक कर राजस्व उत्पाद शुल्क से ही प्राप्त होता है। राज्य सरकारों को कर राजस्व स्टाम्प शुल्क, भूमि का रजिस्ट्रेशन शुल्क, बिक्री कर, अल्कोहल व नशीले पदार्थों पर उत्पाद शुल्क आदि से प्राप्त होता है। अन्य करों के अलावा राज्य सरकार की बिक्री कर पर निर्भरता लगातार बढ़ रही है। राज्य सरकारों को कर राजस्व का 40 प्रतिशत भाग बिक्री कर से ही प्राप्त होता है। अब हम भारत में लगाये गए प्रमुख करों का अध्ययन करेंगे।

व्यक्तिगत आय–कर (Personal Income Tax)

आय–कर की वर्तमान प्रणाली में आय–कर लगाया जाता है। 1965 में कर की दरों के ढांचे का समाजीकरण किया गया, जिसके परिणामस्वरूप इसे कर के साथ मिला दिया गया। सन् 1960 के बाद आय कर में समय–समय पर अनेक परिवर्तन किये गये तथा करदाताओं को अनेक प्रकार की छूट भी दी गयी। आय कर के वर्तमान ढांचे में आय कर के अतिरिक्त आय–कर पर अधिभार, सुपरटैक्स व सुपरटैक्स पर अधिभार सम्मिलित है। आय–कर व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति, अविभाजित हिन्दू परिवार, फर्म एवं कम्पनियों के लिए आय–कर की दरें भिन्न–भिन्न हैं। आय–कर की दरों का निर्धारण प्रत्येक वर्ष पारित होने वाले वित्त अधिनियम के आधार पर किया जाता है। 1966 से आय–कर की राशि पर 10 प्रतिशत से विशेष अधिभार लगाने का प्रावधान किया गया। भारत में आय कर को आय का मुख्य साधन माना गया है, फिर भी सरकार को इस मद से वांछित आय प्राप्त नहीं हो पाती। 1979–80 वर्ष में आयकर व निगम कर के रूप में 901 करोड़ रुपये जनता पर बकाया थे। भारत में आय–कर की प्रारम्भिक दरें अन्य देशों की तुलना में नीची हैं, परन्तु इन दरों में प्रगतिशीलता का अंश ऊँचा है। इसी कारण कर की चोरी होती है। इसे रोकने हेतु आय–कर की अधिकतम दर 1985 बजट से 50 प्रतिशत कर दी गयी है। वर्ष 1990–91 में व्यक्तिगत आय कर से 5,274 करोड़ रुपये की प्राप्ति हुई।

सीमा शुल्क (Custom Duty)

ऐतिहासिक दृष्टि में सीमा शुल्क विश्व में सबसे पुराना शुल्क है। प्रारम्भ में यह कर व्यापारियों के व्यापारिक लाभ पर लगाया जाता था, परन्तु आजकल उत्पादन कर की भांति यह कर वस्तुओं पर लगाया जाता है। देश के आयातों एवं निर्यातों पर लगाये जाने वाले कर को शुल्क कहते हैं। अतः आयात की गयी वस्तुओं पर जो कर लगाये जायें उसे आयात कर तथा निर्यात होने वाली वस्तुओं पर लगाये कर को निर्यात कर कहते हैं। सीमा–शुल्कों में दो प्रकार के कर सम्मिलित किये जाते हैं – (क) निर्यात कर, (ख) आयात कर। सीमा–शुल्क दो आधारों पर लगाये जा सकते हैं – मूल्यानुसार कर (Ad Valorem Duty) जो वस्तु के मूल्य पर लगाये जाते हैं तथा विशिष्ट कर (Specific Duty) जो वस्तु के परिमाण पर लगाये जाते हैं। प्रो० जे०के० मेहता के अनुसार, ''सीमा शुल्क इतिहास में अति प्राचीन करों में से एक है जो उस समय व्यापारियों के लाभ पर एक कर के रूप में लगाये जाते थे, परन्तु आजकल ये कर लाभ पर न लगाकर उत्पादन करों की भांति वस्तुओं पर लगाये जाते हैं।''

इन करों का भार आयात तथा निर्यात होने वाली वस्तु की मांग एवं पूर्ति की लोच के आधार पर उत्पादक एवं उपभोक्ता पर पड़ता है। यदि वस्तु की मांग बेलोचदार है तो सीमा शुल्क का भार उपभोक्ता पर पड़ेगा। यदि वस्तु की मांग लोचदार है तो सीमा कर का भार उत्पादक वर्ग पर पड़ता है। इसी प्रकार पूर्ति लोचदार होने पर सीमा–शुल्क का भार उपभोक्ता पर तथा बेलोचदार पूर्ति में भार उत्पादक को स्वयं सहन करना होगा।

सन् 1945 में भारत में टेरिफ बोर्ड की स्थापना की गयी। इस बोर्ड ने अनेक बातों पर जांच करने का सुझाव दिया था। 1945 की नीति भेदमूलक नीति की तुलना में उदार थी परन्तु यह नीति विस्तृत नहीं थी।

सीमा–शुल्क दो उद्देश्यों से लगाये जाते हैं –

(i) सरकार आय में वृद्धि करने हेतु, एवं

(ii) स्वदेशी उद्योगों को संरक्षण देने हेतु।

भारत में सीमा–कर मुस्लिम काल से ही लगता आया है। उसके पश्चात् इसकी दरों में निरन्तर वृद्धि कम होती गयी। स्वतंत्रता के पश्चात् इन करों की दरों में और अधिक वृद्धि कर दी गयी। वर्तमान समय में अनेक प्रकार की वस्तुओं पर सरकार द्वारा आयात कर तथा निर्यात कर लगाया जाता है। सीमा–शुल्क या तो मूल्यानुसार लगाये जाते हैं, या परिमाणनुसार। जब ये मूल्यानुसार लगाये जाते हैं तो इसे यथा मूल्य कहते हैं और जब परिमाणनुसार लगाते हैं, तो इसे परिमाणिक कहते हैं। सीमा–शुल्क का भार वस्तुओं पर लगे हुए अन्य करों की भांति आयातकर्त्ता एवं निर्यातकर्त्ता देशों की वस्तुओं की मांग और पूर्ति की सापेक्षिक लोचों पर निर्भर करता है।

सीमा–शुल्क के इतिहास के अध्ययन को निम्न प्रकार से रखा जा सकता है –

(क) आयात कर : (i) यद्यपि भारत में आयात कर प्राचीन समय से लगाये जाते रहे हैं, फिर भी इसका महत्व प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् काफी बढ़ गया। (ii) आयात कर की दरें भारतीय प्रशुल्क अधिनियम, 1934 के अनुसार लगायी जाती हैं, जिनमें समय–समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। (iii) भारत में इस प्रकार का उद्देश्य आय प्राप्ति के साथ–साथ स्वदेशी उद्योगों को संरक्षण प्रदान करना है। (iv) अनेक उपभोग व उत्पादक वस्तुओं पर यह कर लगाया जाता है। सीमा शुल्क से 1980–81 में 3,190 करोड़ रूपये, 1981–82 में 4,140 करोड़ रूपये तथा 1982–83 में 4,997 करोड़ रूपये की आय हुई। 1985–86 में 6,000 करोड़ रूपये की आय प्राप्त हुई।

(ब) निर्यात–कर : (i) निर्यात कर का देश की अर्थ–व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है। (ii) वित्तीय कठिनाइयों को दूर करने हेतु 1857 में दर 5 प्रतिशत से बढ़ाकर 10 प्रतिशत कर दी गयी। (iii) 1867 से निर्यात कर को हटा दिया गया और 1914 में केवल चावल पर ही लगाया गया। (iv) इस समय महत्वपूर्ण वस्तुओं पर भी निर्यात कर लगाए जाते हैं। निर्यात कर से 1980–81 में 118 करोड़ रूपये की आय हुई। 1981–82 में 44 करोड़ रूपये की आय हुई। 1985–86 में 60 करोड़ रूपये की आय हुई।

सीमा–शुल्क लगाने का महत्वपूर्ण कारण आय प्राप्त करना न होकर विदेशी व स्वदेशी व्यापार को प्रभावित करना है। इससे दोहरा लाभ प्राप्त होता है तथा आन्तरिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को मार्गदर्शन मिलता है। इससे कोई भी देश व्यापार में संतुलन स्थापित कर सकता है। कुछ वस्तुओं पर नये निर्यात–शुल्क और कुछ पर नये आयात–शुल्क लगाये गये।

'कराधान जांच आयोग' का मत था कि राजस्व प्राप्ति एवं कीमतों में स्थिरता लाने के उद्देश्य से निर्यात करों का अधिकाधिक उपभोग किया जाना चाहिए। भारत में निर्यात कर राजस्व एवं संरक्षण दोनों ही दृष्टिकोणों से लागू किये गये। 1980 के राजकोषीय आयोग ने उद्योगों को तीन भागों में बांटा –

(i) प्रतिरक्षा व अन्य सैनिक उद्योग,

(ii) मूलभूत एवं महत्वपूर्ण उद्योग

(iii) अन्य उद्योग

इन तीनों प्रकार के उद्योगों के संबंध में आयोग ने पृथक–पृथक संरक्षण सम्बन्धी सुझाव दिये थे। 1952 में एक स्थानीय टैरिफ बोर्ड की स्थापना की गयी।

निगम कर (Corporation Tax)

निगम कर उस कर को कहते हैं जो निगमों व व्यावसायिक कम्पनियों पर लगाये जाते हैं और उसे कम्पनियों द्वारा भुगतान किया जाता है। यह कर उन करों से भिन्न होते हैं जो हिस्सेदारों द्वारा लाभांश के रूप में प्राप्त की गयी आय पर लगाये जाते हैं। यह कर आय का प्रधान स्रोत बन गया है। 1959–60 तक यह सुपर टैक्स के नाम से विख्यात था। 1960–61 से आय–कर को निगम कर में सम्मिलित कर लिया गया है। समय–समय पर अधिनियम में संशोधन करते हुए निगम कर की सीमा एवं छूट में भी परिवर्तन किये गये। 1970–71 में निगम कर से लगभग 320 करोड़ रूपये प्राप्त हुये। प्रत्येक राष्ट्र में पूंजी कर लगाने पर विशेष जोर दिया गया है जिसे अनेक रूपों में लगाया जाता है।

केन्द्रीय उत्पादन शुल्क (Union Excise Duties)

भारत में उत्पादन शुल्क मुगलों के समय से लगाया जा रहा है। 1950–51 में केन्द्रीय उत्पादन कर 67.54 करोड़ रूपये था जो 1988–89 में बढ़कर 18,000 करोड़ रूपये हो गया। देश में वस्तु को उत्पादन करने के पश्चात् उपभोक्ता तक पहुंचने से पूर्व जो कर लगाये जाते हैं उसे उत्पादन कर कहते हैं। संविधान के अनुसार केन्द्रीय सरकार को शराब, अफीम तथा भांग जैसी नशीली वस्तुओं व औषधियों को छोड़कर अन्य वस्तुओं पर उत्पादन कर लगाने का अधिकार है। वर्तमान समय में 70 ऐसे पदार्थ हैं जिन पर भारत सरकार द्वारा उत्पादन कर लगाया जाता है। प्रो० जे०के० मेहता के अनुसार, ''उत्पादन शुल्क से सामान्यतया अभिप्राय घरेलू उत्पादित माल पर लगे कर से है जो कि या तो उत्पादन प्रक्रिया में हो या जो ग्राहकों को बेचने से पूर्व लगे जिससे उसके उपभोग को सीमित किया जा सके।'' संघ सरकार को वस्तुओं पर ऐसे उत्पादन कर लगाने के अधिकार प्राप्त हैं। इस कर से प्राप्त आय को वित्तीय आयोग की सिफारिशों के आधार पर केन्द्र एवं राज्य सरकारों के मध्य विभाजित कर दिया जाता है। यह कर दो उद्देश्यों से लगाया जाता है : (i) उपभोग को नियन्त्रित करने एवं (ii) आय प्राप्त करने हेतु।

उत्पादन शुल्क को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(1) आधारभूत उत्पादन कर,

(2) विशेष कर,

(3) बिक्री कर के स्थान पर अतिरिक्त उत्पादन कर।

भारत में केन्द्रीय उत्पादन कर मुगलकाल में भी लगाया जाता था और इसे नशीले पदार्थों पर लगाते थे। 1909 में प्रान्तों को भी इस कर को लगाने के अधिकार सौंप दिये गये और उत्पादन करों को दो भागों में विभाजित कर दिया गया : (i) केन्द्रीय उत्पाद कर, (ii) प्रान्तीय उत्पाद कर। वर्तमान समय में केन्द्र को अनेक वस्तुओं पर उत्पादन कर लगाने का अधिकार दिया गया है। उत्पादन करों की दरों में समय– समय पर परिवर्तन होते रहते हैं तथा प्रत्येक वर्ष सरकार नवीन वस्तुओं पर उत्पादन कर लगा देती है। इसके साथ–ही–साथ अनेक वस्तुओं पर उत्पादन कर की छूट प्रदान की जाती है। सन् 1957 से अतिरिक्त उत्पादन कर भी लगाया गया है। यह कर राज्यों द्वारा लगाये जाने वाले बिक्री–कर की जगह लगाया गया है। अतिरिक्त उत्पादन करों को भी राज्यों में वितरित कर दिया जाता है। 1975 से परीक्षण के तौर पर छूटी हुई वस्तुओं पर 1 प्रतिशत की दर से उत्पादन कर लगाया गया था, 1977–78 से इस दर को बढ़ाकर 2 प्रतिशत कर दिया गया है। 1988–89 बजट में अनेक वस्तुओं पर रियायतें दी गयीं जिससे सरकार को काफी हानि हुई। वर्ष 1990–91 में उत्पादन शुल्क से 24,356 करोड़ रुपये की प्राप्ति हुई जो 1991–92 में बढ़कर 27,696 करोड़ रुपये हो गई।

उत्पादन कर के पक्ष में निम्न तर्क दिये जा सकते हैं –

(i) **उत्पादक :** यह कर उत्पादक होते हैं, और थोड़ी सी दर बढ़ाने से ही आय में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है।

(ii) **विलासिता पर कर :** इन करों को विलासिता की वस्तुओं पर कर लगाने से धनी वर्ग से अधिक कर राशि वसूल की जा सकती है। इस प्रकार की आय की असमानता को दूर करने में यह कर सहायक सिद्ध होता है।

(iii) **सुविधाजनक :** इस कर को माल क्रय करते समय ही उपभोक्ता से वसूल करने के कारण यह सुविधाजनक होते हैं। इस कर की अदायगी एक प्रकार से किस्तों में की जाती है, जिसका भार उपभोक्ता अनुभव नहीं करते हैं।

(iv) **उपभोग पर रोक :** हानिकारक वस्तुओं पर भारी कर लगाकर उसके उपभोग को रोका जा सकता है।

उत्पादन–शुल्क के सम्बन्ध में निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं –

(i) उत्पादन करों को उपभोग नियंत्रण के उद्देश्य से लगाकर राजस्व प्राप्ति की दृष्टि से लगाया जाना चाहिए।

(ii) उत्पादक शुल्कों से प्राप्त होने वाली राशि का अधिकांश भाग राज्यों में वितरित कर दिया जाना चाहिए।

(iii) उत्पादन शुल्क उन वस्तुओं पर लगाया जाना चाहिए, जिनका उत्पादन बड़ी मात्रा में किया जाता हो।

(iv) धनी व्यक्तियों द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं पर ही यह कर लगाया जाना चाहिए।

(v) उत्पादन कर की दरों का विवेकीकरण किया जाना चाहिए।

राज्य सरकार के कर (State Excise Duties)

राज्य उत्पादन कर (State Excise Duties) : भारतीय संविधान में केन्द्र एवं राज्य सरकारों को उत्पादन–कर लगाने का अधिकार दिया गया है। इस कर को लगाने का मुख्य कारण आय प्राप्त करने के साथ–साथ नशीली वस्तुओं के उपयोग पर रोक लगानी थी। वह अधिकार निम्न वस्तुओं पर उत्पादन कर लगाने को प्राप्त है – (i) देशी शराब, (ii) भांग, (iii) चावल व जौ की शराब, (iv) निद्राकारक वस्तुएं, (v) औषधियां, (vi) चरस, (vii) गांजा, (viii) अफीम। इन करों को लगाने के दो उद्देश्य होते हैं जैसे आय प्राप्त करना एवं इन पदार्थों का उपयोग कम

करना। जिन वस्तुओं पर केन्द्रीय सरकार के द्वारा उत्पादन कर लगाया जाता है उसे केन्द्रीय उत्पादन कर एवं राज्यों के द्वारा लगाये जाने वाले करों को राज्य उत्पादन कर कहा जाता है। 1974 से राज्य सरकारों के द्वारा उत्पादन कर लगाया जाने लगा था। भारत में यह दो भागों में विभाजित किया जा सकता है – (i) वे कर जो देश में उत्पादित वस्तु पर लगाये जाएं, (ii) दूसरे, जबकि उस वस्तु के उपभोग को कम करना हो।

भारत में नशीले पदार्थों पर करारोपण प्राचीनकाल से ही होता आया है। ब्रिटिश काल में यह कर जमींदारों द्वारा लगाया जाता था जिसे 1770 में समाप्त कर दिया गया। कुछ समय पश्चात् शराब के बनाने एवं बेचने के लिए अनुज्ञापत्र प्रणाली को प्रारम्भ किया गया परन्तु राज्य सरकारों की नीतियों में समानता का अभाव था। 10 वर्षों के बाद शराब बनाने व बेचने के लिये लाइसेंस प्रणाली की स्थापना हुई और केन्द्रीय शराब बनाने के कारखाने कुछ बड़े–बड़े शहरों में स्थापित किये गये। 1820 के अधिनियम के अन्तर्गत अधिकृत व्यक्ति ही ताड़ी का उत्पादन तथा विक्रय कर सकते थे। यह प्रथा 40 वर्षों तक चलती रही और इसके बाद उसके स्थान पर उत्पादन कर लगाया गया। 1894 में हेम्प औषधि आयोग (Hemp Drug Commission) की नियुक्ति की गयी जिसने उत्पादन को नियन्त्रित करने के उद्देश्य से कर लगाने की सिफारिश की।

मद्य निषेध नीति (Prohibition Policy) : 1919 से नशीले पदार्थों पर कर लगाने के अधिकार राज्य सरकारों को प्राप्त हो गये। 1921 से मद्य निषेध की नीति पर विचार किया जा रहा था, परन्तु 1937 में प्रान्तीय स्वशासन प्रारम्भ होने से विभिन्न राज्यों ने मद्य निषेध की नीति को अपनाया। युद्धकाल से बढ़ती आवश्यकता के कारण मत निषेध नीति का परित्याग कर दिया गया है। 1964 में प्रान्तों में स्थापित सरकारों ने मद्य निषेध की नीति को फिर से स्वीकार किया। विभिन्न राज्यों में मद्य निषेध की पृथक्– पृथक् नीति अपनायी जाती है। देश का 28 प्रतिशत भाग मद्य निषेध के अन्तर्गत आता है और यह 36 प्रतिशत जनसंख्या पर लागू होता है। सन् 1954 में श्रीमननारायण अग्रवाल की अध्यक्षता में एक मद्य निषेध नीति का समर्थन किया गया था। वर्तमान समय में मद्य निषेध पूर्णरूप से लागू हो गया है तथा सम्पूर्ण जनसंख्या इसके अन्तर्गत आती है। भारतीय संविधान में नीति निर्देशक तत्वों में भी मद्य निषेध को स्वीकार किया गया है। संविधान की धारा 47 में कहा गया है कि ''राज्य केवल औषधि संबंधी उद्देश्यों को छोड़कर, स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद मादक पदार्थों के उपभोग का निषेध करेगा।'' इसी प्रकार 31 मार्च 1956 को लोकसभा में यह प्रस्ताव पारित किया गया है कि ''यह सदन इस मत का है कि मद्य निषेध को द्वितीय पंचवर्षीय योजना का एक अभिन्न अंग माना जाये और सुझाव देता है कि नियोजन आयोग को सम्पूर्ण देश में मद्य निषेध को शीघ्रता एवं प्रभावपूर्ण रूप से अपनाने हेतु कार्यक्रम अपनाने चाहिए।''

बिक्री–कर (Sales Tax) : यह कर वस्तुओं की बिक्री के समय लगाया जाता है और बेचने वाले से लिया जाता है। आजकल यह राज्य सरकारों की आय का एक मुख्य स्रोत है। बिक्री–कर प्रायः आराम और विलासिता की वस्तुओं पर लगाया जाता है। आवश्यकता की वस्तुओं पर नहीं लगाया जाता। बिक्री–कर दो प्रकार का हो सकता है – (i) एक बिन्दु कर (Single Point Sales Tax) और (ii) बहु बिन्दु कर (Multiple Point Sales Tax) इस प्रणाली में बिक्री कर उत्पादक से उपभोक्ता तक माल पहुंचाने की सारी प्रक्रिया में केवल एक बार या तो आरम्भ में उत्पादक से उत्पादित माल बेचते समय या अन्त में फुटकर विक्रेता से उपभोक्ता को माल बेचते समय वसूल किया जाता है। दिल्ली, पश्चिमी बंगाल आदि में इसी प्रणाली के अनुसार बिक्री–कर लगाया जाता है। दूसरी प्रणाली में बिक्री–कर, बिक्री के हर बिन्दु पर अर्थात् उत्पादक से उपभोक्ता के पास पहुंचने तक वस्तु जितनी बार बेची जाती है, उतनी ही बार कर लगाया जाता है। मद्रास, मैसूर आदि में इस प्रणाली के अनुसार बिक्री कर लगाया जाता है।

बिक्री–कर चाहे किसी भी प्रणाली के अनुसार लगाया जाये, इसका द्रव्य भार उपभोक्ताओं (Consumers) पर ही पड़ता है, क्योंकि विक्रेता कर की रकम को मूल्य के साथ ही ग्राहक से वसूल कर लेता है। इसलिए यह एक अप्रत्यक्ष–कर (Indirect Tax) है। यह कर प्रतिगामी (Regressive) भी है। इसका अधिक भारत गरीब लोगों पर पड़ता है। यह कर असुविधाजनक तथा खर्चीला है। व्यापारियों को अपनी बिक्री का पूरा–पूरा हिसाब रखना पड़ता है और सरकार को इसे एकत्र करने पर काफी खर्चा करना पड़ता है। इससे प्राप्त होने वाली आय अनिश्चित भी होती है।

इसके कुछ दोषों को दूर करने के लिए विधान में यह प्रबन्ध किया गया है कि कोई एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने वाले माल तथा विदेशों को निर्यात किये जाने वाले माल पर बिक्री–कर न लगायेगा। साथ ही यह भी आदेश है कि संसद जिन वस्तुओं को सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक घोषित कर दे उन पर बिक्री–कर नहीं लगाया जा सकता।

करारोपण जांच आयोग का मत है कि ''बिक्री–कर अब केवल राज्य सरकारों की आय के स्रोतों में से अकेला सबसे बड़ा स्रोत ही नहीं है, वरन् यह एक ऐसा स्रोत है जिनमें आय की प्राप्तियों के रूप में बड़ी लचक दिखाई है। इसके अतिरिक्त बिक्री– कर राज्य की वित्तीय पद्धति का एक अभिन्न अंग बन गया है और कुछ राज्यों में यह 10 से 15 वर्षों पूर्व से प्रचलित है।''

आयोग के द्वारा जो सुझाव दिये गये थे उन सुझावों को आधार मानकर सरकार ने निम्नलिखित कार्यक्रम प्रस्तुत किया था –

(i) 1956 के संविधान में संशोधन करके अन्तर्राज्य व्यापार की वस्तुओं पर करारोपण करने का अधिकार संघ सरकार को दे दिया गया था।

(ii) 1956 अधिनियम के अन्तर्गत कपास, पटसन, कोयला, लोहा व तिलहन आदि पर बिक्री–कर के संबंध में राज्य–सरकारों पर प्रतिबन्ध लगा दिये थे।

(iii) 1957 से मिल में बने कपड़े, चीनी व तम्बाकू पर अतिरिक्त बिक्री–कर, उत्पादन कर संघ सरकार के द्वारा लगाया जाने लगा तथा वित्त आयोग की सिफारिशों पर उस कर को राज्यों में बांटा जाने लगा।

(iv) सितम्बर 1958 में केन्द्रीय बिक्री–कर अधिनियम में सुधार किया गया।

(v) कर–जांच आयोग की सिफारिशों पर अनेक राज्यों में बिक्री–कर सलाहकार समितियों की रचना की गई।

निरपेक्ष रूप से वर्ष 1980–81 में केन्द्र व राज्य सरकार को 19,844 करोड़ रूपये का कर राजस्व प्राप्त हुआ। इनमें से 3268 करोड़ रूपये प्रत्यक्ष करों से तथा 16,576 करोड़ अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त हुए। वर्ष 1990–91 में सरकार को कर राजस्व से 89,183 करोड़ रूपये प्राप्त होने का अनुमान था जिनमें से 13,047 करोड़ रूपये प्रत्यक्ष करों से व 76,136 करोड़ रूपये अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त होने थे। अप्रत्यक्ष करों में जहां सीमा शुल्क के योगदान में कमी आई है वहाँ संघीय उत्पाद शुल्क का अनुपात 1950– 51 में 10.78 प्रतिशत से बढ़कर 1991–92 में 27.0 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार इसी अवधि के दौरान बिक्री कर का कुल कर राजस्व में अनुपात 9.29 से बढ़कर 21. 2 प्रतिशत है। पिछले 40 वर्षों में सीमा शुल्क के योगदान में कुछ गिरावट आई है। 1950 –51 में इसका अनुपात 25.07 प्रतिशत था जो 1991–92 में घटकर 22.4 प्रतिशत रह गया है। सीमा शुल्क में कमी और संघीय उत्पाद शुल्क में वृद्धि भारतीय कर ढांचे का एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है।

भारतीय कर ढांचे का मूल्यांकन

(Evaluation of Indian Tax Structure)

भारतीय कर ढांचा काफी विस्तृत है। इस समय देश में अनेक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर लगाए जाते हैं और इनसे राजस्व प्राप्ति इतनी है कि अब भारत विश्व में सबसे अधिक करारोपित देशों की श्रेणी में पहुंच गया है। इस पर भी सरकार को यदि वित्तीय साधनों का प्रायः अभाव महसूस होता है और उसे लोक ऋण तथा घाटे के वित्त प्रबन्धन का सहारा लेना होता है तो उसकी वजह यह है कि सरकान ने गैर विकास खर्चों को बहुत बढ़ा रखा है और लोक व्यय के मितव्ययिता के सिद्धान्त का पालन गंभीरतापूर्वक नहीं किया है।

भारतीय कर ढांचे का मूल्यांकन करने पर इसके बारे में प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं –

1 **लचीलापन और प्रफुल्लता (Elasticity and Buoyancy) :** किसी भी कर प्रणाली में लचीलेपन का अर्थ यह होता है कि करों में आय लोच (Income Elasticity) काफी है। दूसरे शब्दों में, जब राष्ट्रीय आय में वृद्धि से ही कर–राजस्व में अनुपात से अधिक वृद्धि हो जाती है तो कर ढांचा लचीला माना जाता है। करों की प्रफुल्लता (Buoyancy of Taxes) की अवधारणा व्यापक है। जब करों की दरों में परिवर्तन, कराधान के आधार में विस्तार अर्थात् नए लोगों और नई वस्तुओं पर कराधान को भी ध्यान में रखकर आय के प्रति कर–राजस्व की प्रतिक्रिया (Responsiveness) की जांच की जाती है तो दरअसल हम करों की प्रफुल्लता मालूम करते हैं।

हाल में नेशनल इंस्टीच्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेंस एण्ड पॉलिसी ने भारत में लगाए जाने वाले विभिन्न करों की 1970–71 से 1983–84 की अवधि में लोच और प्रफुल्लता का अनुमान लगाया है। इस अध्ययन से पता चला है कि जहां सभी कर राजस्व की लोच इकाई से कम (0.96) थी, वहां उसकी प्रफुल्लता इकाई से ज्यादा थी। इसके अलावा राज्यों के कर–राजस्व में केन्द्र के कर– राजस्व से लोच और प्रफुल्लता दोनों ही ज्यादा थी।

2 **न्यायशीलता (Equity) :** भारतीय कर प्रणाली कुल मिलाकर प्रगामी (Progressive) बताई जाती है, यद्यपि कुछ वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क और बिक्री कर प्रतिगामी (Regressive) हैं। भारतीय आय कर का ढांचा प्रगामी है। एक सीमा तक आय कर मुक्त है और इस सीमा के आगे आय बढ़ने पर आय कर की दर बढ़ती जाती है। अप्रत्यक्ष करों के बारे में आम धारणा यह है कि वे प्रतिगामी हैं क्योंकि उत्पादन शुल्क के राजस्व का अधिकांश भाग सूती कपड़ा, चीनी, मिट्टी का तेल, चाय, तम्बाकू, दियासलाई जैसी जनसाधारण उपभोग की वस्तुओं से प्राप्त होता है, लेकिन कराधान जांच समिति (Taxation Enquiry Committee) के अनुसार 1953–54 में अप्रत्यक्ष कर प्रणाली प्रगामी थी। 1958– 59 में यह और अधिक प्रगामी हो गई थी। हाल में झा समिति ने भी इसी बात की पुष्टि की है कि भारतीय अप्रत्यक्ष कर प्रणाली प्रगामी है। विशुद्ध टैक्नीकल दृष्टिकोण अपनाकर हम मान सकते हैं कि भरतीय कर व्यवस्था प्रगामी है और इसमें न्यायशीलता के सिद्धांत का पालन होता है, लेकिन गहराई में जाकर समस्या का विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय कर ढांचा अन्यायपूर्ण है। इस सारणी से स्पष्ट है कि अप्रत्यक्ष करों का भार गरीबों पर कितना अधिक था।

3 **प्रशासनिक कुशलता (Administrative Efficiency) :** भारतीय कर ढांचा प्रशासनिक दृष्टि से कार्यकुशल नहीं है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर दोनों ही बहुत जटिल (Complex) हैं जिससे लोगों को करों से कानूनी

ढंग से बचने और करों की चोरी करने का काफी मौका मिलता है। भारतीय कर प्रणाली में सरलता और निश्चितता के सिद्धान्तों की अवहेलना की गई है। केल्डोर के अनुसार भारत के कर कानूनों में परिभाषा सम्बन्धी दोष भी है। परिणाम यह होता है कि कर अधिकारी अपने ढंग से कर कानूनों की व्याख्या कर करदाताओं को परेशान करते हैं। दरअसल कर विभाग में व्यापक भ्रष्टाचार को बढ़ाने में इस कारक का योगदान काफी है।

4 **करों की अवहेलना और एकीकरण का अभाव (Multiplicity of Taxes and Lack of Integration) :** भारत में बहुत सारे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर लगाए गए हैं। उदाहरणार्थ आय कर, अधिकार, सम्पत्ति कर और उपहार कर प्रत्यक्ष करों की श्रेणी में आते हैं। चूंकि इन करों के आधार परस्पर निर्भर हैं, इसलिए प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि इनका एकीकरण करके एक प्रत्यक्ष कर लगाया जाना चाहिए। केल्डोर का सुझाव था कि कर तो अलग–अलग ही लगाए जाने चाहिए लेकिन करदाताओं को इन करों के निर्धारण के लिए केवल एक विस्तृत विवरणी (Single Comprehensive Reture) भरना चाहिए। इससे प्रशासनिक कुशलता बढ़ेगी और करों की चोरी को रोका जा सकेगा। प्रत्यक्ष कर कानून समिति (The Direct Tax Law Committee) जिसके अध्यक्ष एस०पी० चोकसी थे, ने सिफारिश की है कि इन चारों प्रत्यक्ष करों के लिए एक ही कानून ''प्रत्यक्ष कर प्रबन्ध एवं प्रशासन अधिनियम (The Direct Taxes Management and Administration Act)'' होना चाहिए। इसी प्रकार अप्रत्यक्ष करों में भी एकीकरण का अभाव है। उत्पादन शुल्क केन्द्रीय सरकार द्वारा, बिक्री कर राज्य सरकारों द्वारा और चुंगी (Octroi) स्थानीय प्रशासन द्वारा लगाई जाती है। अप्रत्यक्ष कराधान जांच समिति ने इन करों के बीच तालमेल के अभाव को स्पष्ट किया है। समिति की राय में चुंगी अवांछनीय कर है और इसे हटाया जाना चाहिए। इसके अलावा उत्पादन शुल्क और बिक्री कर की जगह वधित मूल्य योग (VAT) लगाने की प्रक्रिया शुरू की जानी चाहिए।

5 **कर ढांचे में अन्तर्क्षेत्रीय असंतुलन (Inter-sectoral Imbalances in the Tax Structure)** : भारत में कृषि क्षेत्र पर उचित कराधान नहीं है। आजादी मिलने के समय कृषि क्षेत्र में बड़ी संख्या में ऐसे लोग नहीं थे जिन पर आय कर लगाया जा सकता था। लेकिन भूमि सुधार लागू होने के बाद कृषि में हरित क्रांति से बड़े किसानों का वर्ग पैदा हुआ है। इनकी आय अच्छी खासी होने के बावजूद वे कर मुक्त हैं। इसके अलावा कुछ राज्यों ने मालगुजारी को कम कर दिया गया है। परिणाम यह हुआ कि कर ढांचें में अन्तर्क्षेत्रीय असंतुलन पैदा हो गया है। चौकसी समिति (The Choksi Committee) के अनुसार कृषि आय और गैर–कृषि आय में समन्वय किया जाना चाहिए। इससे कर ढांचे में अन्तर्क्षेत्रीय असंतुलन दूर होगा, सरकार की आमदनी में वृद्धि होगी और काले धन के विस्तार पर रोक लगाई जा सकेगी।

कर सुधार (Taxation Reforms)

कर सुधार के लिए मुख्य कदम इस प्रकार हैं –

मूल्य वर्धित कर (VAT) : यह वस्तुतः विक्रय कर का एक विकल्प है। यह एक ऐसी कर प्रणाली है जिसके अनुसार कर (Tax) केवल उत्पादन प्रक्रिया में की गई मूल्य वृद्धि पर ही लगाया जाता है। मूल्य की यह वृद्धि उत्पादन या विक्रेता द्वारा की जाती है। श्री एल०के० झा समिति के अनुसार, ''मूल्य वर्धित कर (VAT) व्यापक रूप से समस्त वस्तुओं और सेवाओं पर लगाया गया एक कर है जिसमें निर्मित वस्तुओं एवं शासकीय सेवाओं को पृथक् कर दिया

जाता है। यह कर प्रत्येक स्तर पर होने वाली व्यवसाय की मूल्य वृद्धि पर जोड़ा जाता है अतः इसे मूल्य वर्द्धित कर (VAT) कहते है।''

इस प्रकार वर्धित मूल्य = [वस्तु का कुल मूल्य]–[क्रय की गई कच्ची सामग्री एवं अन्य सामग्री का मूल्य]

मूल्य वर्धित कर (VAT) यद्यपि विक्रय कर का विकल्प है, किन्तु दोनों करों में अन्तर है। विक्रय कर वस्तु के कुल मूल्य पर केवल एक बार ही लगाया जाता है जबकि VAT उत्पादन की प्रत्येक अवस्था में केवल बढ़े मूल्य पर लगाया जाता है।

(I) मूल्य वर्धित कर के विभिन्न रूप (Various Forms of VAT)

(i) उत्पादन पर आधारित मूल्य वर्धित कर : प्रत्येक फर्म उत्पादन करने के लिए अन्य फर्मों से कच्चा माल क्रय करती है और अपने निर्मित उत्पादन को बेचकर आय प्राप्त करती है। इस प्राप्त आय में से क्रय की गई सामग्री का मूल्य घटा देने से फर्म के उत्पादन का वर्धित मूल्य ज्ञात हो जाता है। इसी वर्धित मूल्य पर लगाये गये कर को उत्पादन पर आधारित मूल्य वर्धित कर कहते हैं।

(ii) उपभोग पर आधारित मूल्य वर्धित कर : राष्ट्रीय उत्पाद में से कुछ विनियोग राशि को घटा देने पर जो शेष बचता है, उस पर लगाया गया कर उपभोग आधारित मूल्य वर्धित कर कहलाता है। यह कर उन वस्तुओं पर लगाया जाता है जिनका प्रयोग अन्तिम उपभोग हेतु किया जाता है।

(iii) आय आधारित मूल्य वर्धित कर : यह कर निगम कर (Corporation Tax) के विकल्प के रूप में लगाया जाता है। उदाहरण प्रक्रिया में उत्पत्ति के विभिन्न साधन पारिश्रमिक के रूप में आय प्राप्त करते हैं। इन पारिश्रमिकों का योग करके यदि उसे आधार मानकर होने वाली मूल्य वृद्धि पर कर लगाया जाए तो उसे आय आधारित मूल्य वर्धित कर कहते हैं।

(iv) मजदूरी आधारित मूल्य वर्धित कर : एक फर्म द्वारा उत्पादन इकाइयों के मूल्यों में से उसमें प्रयुक्त विभिन्न आदाओं (Inputs) के साथ मशीन की घिसावट, ब्याज आदि को घटाकर जो शेष बचता है वह वर्धित मूल्य होता है जो मजदूरी भुगतान के बराबर होता है। इस रीति से लगाया गया कर मजदूरी आधारित मूल्य वर्धित कर कहलाता है।

(II) संशोधित मूल्य वर्धित कर (MODVAT)

भारत में मूल्य वर्धित कर विक्रय कर के स्थान पर न लगाकर उत्पादन शुल्क के स्थान पर लगाया गया है। भारत में मूल्य वर्धित कर के संशोधित रूप को अपनाए जाने के कारण संशोधित मूल्य वर्धित कर (MODVAT) कहा जाता है।

भारत में सर्वप्रथम भूतलिंगम समिति ने उत्पादन शुल्क के नाम से मूल्य वर्धित कर का समर्थन किया। अप्रत्यक्ष करों में सुधार हेतु गठित एल०के० झा समिति ने वर्ष 1978 में कुछ निर्मित वस्तुओं पर मूल्य वर्धित कर लगाने का सुझाव दिया जिसे MANVAT (Manufactured VAT) का नाम दिया गया। बाद में इसे 1 मार्च, 1986 से संशोधित करके MODVAT कर दिया गया। वर्तमान में MODVAT के स्थान पर CENVAT लागू है।

भारत में कर ढांचा

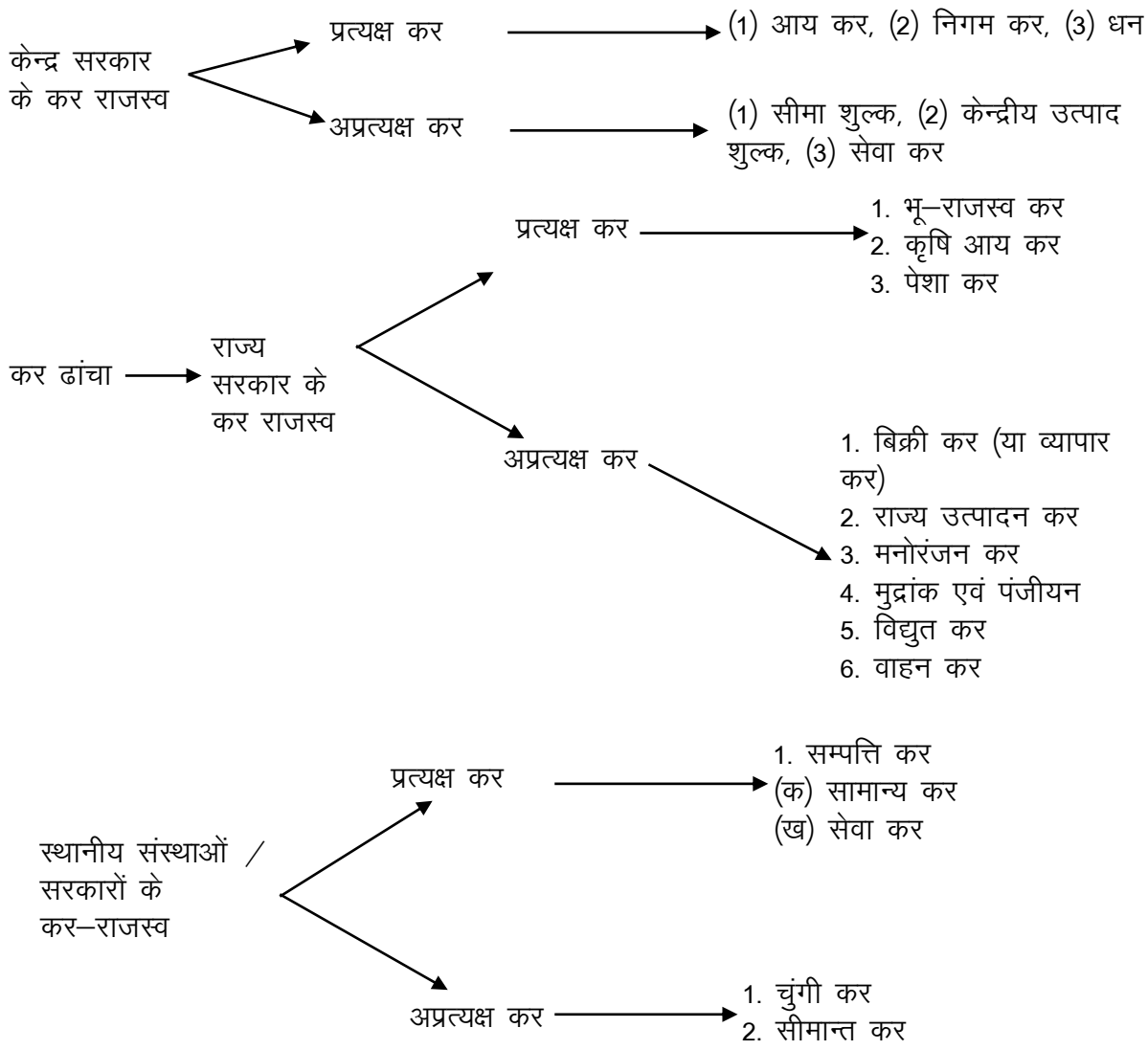

(III) सेनवेट (CENVAT)

वित्त अधिनियम 2000 द्वारा केन्द्रीय उत्पाद–शुल्क अधिनियम में एक महत्त्वपूर्ण संशोधन किया गया और MODVAT के स्थान पर CENVAT (केन्द्रीय मूल्य सम्बर्द्धित कर) लागू किया गया है। वर्ष 2002–03 के बजट प्रस्तावों में CENVAT में संशोधन करके इसे और अधिक सरल बना दिया गया है।

(IV) चेलैया समिति की प्रमुख सिफारिशें

(Silent Recommendations of Chelliah Committee)

केन्द्र सरकार ने कर ढांचे की जांच एवं उसके सुधार की सिफारिश करने के लिए 1991 में प्रोफेसर राजा जे० चेलैया की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया तथा समिति को निम्नांकित बिन्दुओं पर अपने सुझाव प्रस्तुत करने को कहा –

- प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर के वर्तमान ढांचे की जांच करना।
- कर ढांचे को अधिक लोचपूर्ण बनाने के सुझाव देना।
- कर प्रशासन (Tax Administration) को अधिक कुशल बनाने के लिए कराधान नियमों को सरल बनाने के सुझाव देना।

समिति ने अपनी अन्तरिम रिपोर्ट दिसम्बर, 91 में प्रस्तुत की जिसे फरवरी 1992 में संसद में प्रस्तुत किया गया। समिति ने अपनी अन्तिम रिपोर्ट दो भागों में प्रस्तुत की। रिपोर्ट का प्रथम भाग समिति द्वारा सरकार को अगस्त 1992 में सौंपा गया जबकि रिपोर्ट का दूसरा भाग जनवरी 1993 में प्रस्तुत किया। इस समिति की सिफारिशों को सरकार ने 1993–94 के बजट प्रस्तावों में सम्मिलित कर लिया।

समिति द्वारा प्रस्तुत प्रमुख सिफारिशें हैं –

1. अन्तिरम रिपोर्ट (दिसम्बर 1991) में प्रस्तुत सिफारिशें :

(क) आय कर (Income Tax)

(i) व्यक्तिगत आय सीमा छूट 28,000/– वार्षिक पर स्थिर की जानी चाहिए तथा उत्तरोत्तर बढ़ती आय पर बढ़ती दर से छूट दी जानी चाहिए –
आय (रूपये 28,000 – 50,000) 20 प्रतिशत कर की दर
(रूपये 50,000 – 2,00,000) 27.5 प्रतिशत कर की दर
(रूपये 2,00,000 से अधिक) 40 प्रतिशत कर की दर

(ii) रिलीफ बाण्ड पर ब्याज [धारा 10(15) (iic)] सार्वजनिक क्षेत्र कम्पनी से प्राप्त ब्याज [धारा 10(15)(iv)h], सरकार की जमाओं पर प्राप्त ब्याज [धारा 10(15)(iv)(i)], धारा 80C धारा 80CCA तथा धारा 80CCB आदि के अन्तर्गत दी जाने वाले कर राहतें समाप्त की जानी चाहिए।

(ख) व्यापारियों के लिए एक मुश्त कर योजना : 3 लाख से 5 लाख तक वार्षिक व्यापार वाले व्यापारियों के लिए 1,000 रूपये वार्षिक कर (Tax) लगाकर उन्हें अपना आय विवरणी प्रस्तुत करने से छूट दे दी जानी चाहिए।

(ग) अनुमानित आय योजना : 5 लाख रूपये से अधिक वार्षिक व्यापार वाले व्यक्तियों अथवा 10,000 रूपये से अधिक आय–स्रोत वाले व्यक्तियों के लिए अनुमानित आय योजना लागू की जानी चाहिए जिसमें व्यवसाय की शुद्ध आय कुल व्यापार राशि का 8 प्रतिशत कमीशन के मामले में कुल कमीशन का 50 प्रतिशत तथा निर्माण कार्य के ठेंकों से प्राप्त राशि का 10 प्रतिशत शुद्ध आय मानकर कर निर्धारित किया जाना चाहिए। यह योजना 25 लाख रूपये से अधिक वार्षिक व्यापार वाले व्यक्तियों पर लागू नहीं की जानी चाहिए।

(घ) आयात प्रशुल्क : आयात करों में आगामी चारी वर्षों तक 50 प्रतिशत की कटौती की जानी चाहिए और वर्ष 1998–99 तक इसे 25 प्रतिशत न्यूनतम स्तर तक घटाया जाना चाहिए।

(ड़) सम्पत्ति कर : अनुत्पदाकीय मदों पर सम्पत्ति कर समाप्त किया जाना चाहिए। पहले 15 लाख तक की सम्पत्ति को धन कर से पूर्णतः मुक्त रखा जाना चाहिए तथा इससे ऊपर की सम्पत्ति पर 1 प्रतिशत की दर से धन कर लगाया जाना चाहिए।

(च) मूल्य संबर्धित कर (VAT) पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।

(छ) उत्पाद शुल्क (Excise Duty) के परिक्षेत्र का विस्तार किया जाना चाहिए।

2. अन्तिम रिपोर्ट – प्रथम भाग की सिफारिशें

- वर्ष 1993–94 तक निगम कर पर लगे सरचार्ज को समाप्त करके निगम कर की दर को 51.75 प्रतिशत से घटाकर 45 प्रतिशत किया जाना चाहिए तथा वर्ष 1994–95 में इस कर को पुनः घटाकर 40 प्रतिशत किया जाना चाहिए।
- ब्याज कर समाप्त किया जाना चाहिए।
- उपहार कर की छूट सीमा को 20,000 रूपये से बढ़ाकर 30,000 रूपये किया जाना चाहिए।
- गैर–कृषकों की 25,000 रूपये से अधिक कृषि आय पर कर लगाया जाना चाहिए।
- निर्माण स्तर पर VAT योजना का विस्तार किया जाना चाहिए।
- बिक्री कर को राज्य VAT (State VAT) में बदला जाना चाहिए।
- करदाताओं की पहचान हेतु वर्तमान स्थायी खाता संख्या (PAN) प्रणाली के स्थान पर करदाता पहचान संख्या (TIN) लागू की जानी चाहिए।

3. अन्तिम रिपोर्ट – द्वितीय भाग की सिफारिशें

- आयात शुल्क की अधिकतम 110 प्रतिशत की दर को घटाकर 50 प्रतिशत करना चाहिए।
- भिन्न–भिन्न वस्तुओं के लिए आयात शुल्क की भिन्न–भिन्न दरों को अपनाया जाना चाहिए।
- करों की दरों को कम करना चाहिए।
- 1997–98 तक की दरों का समायोजन चरणबद्ध तरीके से लागू किया जाना चाहिए।
- अनाज और चावल के आयात को आयात शुल्क से मुक्त रखा जाना चाहिए, किन्तु दालों एवं तिलहनों के आयात पर 10 प्रतिशत आयात शुल्क लगाया जाना चाहिए।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- प्रथा सारथी सोम, इंडियन टेक्स एडमिनिस्ट्रेशन : ए० डॉयलोग, ओरियन्ट, 2013
- एच०डी० महरोत्रा, कराधान : सिद्धान्त एवं व्यवहार, आगरा , साहित्य, 2020–21
- एच०सी० महरोत्रा और बी०पी० अग्रवाल, माल और सेवा कर, आगरा, साहित्य, 2020
- अटल कुमार, कराधान विधियाँ सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, 2020
- एच०सी० महरोत्रा और वी०पी० अग्रवाल, अप्रत्यक्ष कर जी०एस०टी० सहित, साहित्य, 2019
- अनूप मोदी, वस्तु एवं सेवा कर तथा सीमा शुल्क, जी०एस०टी०, साहित्य भवन, 2019
- गिरिश आहूजा और रवि गुप्ता, सिस्टेमैटिक अप्रोच टू टैक्सेशन, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर, 2019

कुछ प्रश्न

- भारत में कर–मशीनरी तथा प्रशासन की विशेषताएं बताए।
- भारत में करों के प्रकार तथा उद्देश्य बताए।

अध्याय – 11

केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड

(Central Board of Direct Taxes)

रूपरेखा

- बोर्ड का गठन तथा संगठन
- कार्य
- सी०बी०डी०टी० और ई०बी०आई०सी० का विलय नहीं
- कुछ उपयोगी संदर्भ
- कुछ प्रश्न

संगठन, कार्यों और कर्तव्य (Organisation and Functions)

केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड, वित्त मंत्रालय के राजस्व विभाग का एक भाग है। एक तरफ, केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड भारत में प्रत्यक्ष करों की नीति और नियोजन के लिए आवश्यक इनपुट प्रदान करता है, वहीं यह आयकर विभाग के माध्यम से प्रत्यक्ष कर कानूनों के प्रशासन के लिए भी जिम्मेदार है। केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड केंद्रीय राजस्व बोर्ड अधिनियम 1963 के तहत एक वैधानिक प्राधिकरण है। बोर्ड के अधिकारी अपनी पदेन क्षमता में मंत्रालय के एक प्रभाग के रूप में भी कार्य करते हैं, जो प्रत्यक्ष करों के उदग्रहण और संग्रहण से संबंधित मामलों पर कार्यवाही करते हैं।

केंद्रीय राजस्व बोर्ड करों के प्रशासन के प्रभारित विभाग के सर्वोच्च निकाय के रूप में केंद्रीय राजस्व बोर्ड अधिनियम, 1924 के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया। प्रारंभ में यह बोर्ड प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों दोनों का प्रभारी था। हालॉकि, जब कर प्रशासन को एक बोर्ड द्वारा संभालना कठिन हो गया, तो बोर्ड को दिनांक 01.01.1964 में दो भागों में विभाजित किया गया अर्थात् केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड केंद्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क बोर्ड। राजस्व बोर्ड अधिनियम 1963 की धारा 3 के अंतर्गत दो बोर्ड के गठन से यह विभाजन हुआ।

केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड की संगठनात्मक संरचना

अध्यक्ष, जो भारत सरकार के पदेन विशेष सचिव भी हैं, केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के प्रमुख हैं। इसके अलावा, केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड में छह सदस्य हैं, जो भारत सरकार के पदेन अपर सचिव हैं।

- सदस्य (आयकर) (Member, Income Tax)
- सदस्य (विधान और कम्प्यूटरीकरण) (Member Law and Computerisation)
- सदस्य (राजस्व) (Member, Revenue)
- सदस्य (कार्मिक और सतर्कता) (Member, Personnel and Vigilance)
- सदस्य (अन्वेषण) (Member, Innovation)
- सदस्य (लेखा परीक्षा और न्यायिका) (Member, Audit and Judicial)

केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के अध्यक्ष और सदस्यों का चयन भारतीय राजस्व सेवा (IRS) से किया जाता है जो भारत की एक प्रमुख सिविल सेवा है, जिसके सदस्य आयकर विभाग के शीर्ष प्रबंधन का गठन करते हैं।

केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के अध्यक्ष और सदस्यों की जिम्मेदारियां

केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के विभिन्न कार्यों और जिम्मेदारियों को अध्यक्ष और छह सदस्यों के बीच वितरित किया जाता है, जिसमें केवल मौलिक मुद्दे केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड द्वारा सामूहिक निर्णय के लिए आरक्षित होते हैं। इसके अलावा केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के अध्यक्ष और प्रत्येक सदस्य आयकर विभाग के फील्ड कार्यालयों के निश्चित क्षेत्रों पर पर्यवेक्षी नियंत्रण के लिए जिम्मेदार हैं, जिन्हें जोन के रूप में जाना जाता है।

केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड द्वारा सामूहिक निर्णय के लिए क्षेत्र

विभिन्न प्रत्यक्ष कर कानूनों के तहत केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड और संघ सरकार के वैधानिक कार्यों के निर्वहन के संबंध में नीति।

सामान्य नीति से संबंधित

- आयकर विभाग का ढांचा और संरचना
- केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के काम के तरीके और प्रक्रियाएं
- निर्धारण के निपटान के लिए उपाय, करों का संग्रह, कर अपवचन व कर से बचने की रोकथाम व इसका पता लगाना
- आयकर विभाग के सभी कर्मियों की सेवा शर्तों और कैरियर की संभावनाओं से संबंधित भर्ती, प्रशिक्षण और अन्य सभी मामले
- निर्धारण के निपटान व कर के संग्रहण और अन्य सम्बन्धित मामलों के लिए लक्ष्यों को निर्धारित करना और प्राथमिकताओं को निश्चित करना
- प्रत्येक मामले में रूपये 25 लाख से अधिक की कर माँग को बट्टे खाते डालना
- पुरस्कार और प्रशंसा प्रमाणपत्र प्रदान करने के संबंध में नीति
- कोई भी अन्य मामला, जिसे अध्यक्ष या बोर्ड का कोई भी सदस्य, अध्यक्ष के अनुमोदन से, बोर्ड के संयुक्त विचार के लिए प्रस्तुत कर सकता है।

अध्यक्ष (President)

- प्रशासनिक योजना
- मुख्य आयुक्त आयकर और आयकर आयुक्त संवर्ग के अधिकारियों का स्थानांतरण और तैनाती
- विदेशी प्रशिक्षण से संबंधित सभी मामले
- सार्वजनिक शिकायतें
- आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 80–ओ के तहत मामलों को छोड़कर, विदेशी कर और कर अनुसंधान प्रभाग में निपटाए जाने वाले मामले
- सदस्य (एल एंड सी) द्वारा अध्यक्ष को भेजे गए कर योजना और प्रत्यक्ष करों से संबंधित सभी कानूनी मामले

- बोर्ड के काम का समन्वय और समग्र पर्यवेक्षण
- कोई अन्य मामला जो बोर्ड के अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य को अध्यक्ष को भेजना आवश्यक लगता है
- आयकर महानिदेशक (अंतर्राष्ट्रीय कराधान) पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण

सदस्य (आयकर) (Member Income Tax)

- आयकर अधिनियम, सुपर प्रॉफिट – टैक्स, कंपनी लाभ (अतिकर) अधिनियम और होटल प्राप्तियां कर अधिनियम से संबंधित सभी मामले उन मामलों को छोड़कर, जो विशेष रूप से अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य को आबंटित किए गए हैं;
- ब्याज कर अधिनियम, 1974, अनिवार्य जमा अधिनियम, 1974 से संबंधित सभी मामलें;
- आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 36(1)(viii) और (viii a) के तहत अनुमोदन;
- आयकर महानिदेशक (छूट) और आयकर निदेशक (आईटी) के कार्य पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण, परीक्षा से संबंधित कार्य को छोड़कर, जिसकी सदस्य (पी एंड वी) द्वारा देख–रेख की जाती है।

सदस्य, विधान और कम्प्यूटरीकरण (Member Law and Computerisation)

- विभिन्न प्रत्यक्ष करों और बेनामी लेनदेन (निषेध) अधिनियम, 1988 से संबंधित कर योजना और कानून के सभी मामले;
- कर परिहार उपायों की निगरानी और विधायी उपचारात्मक कार्यवाही का सुझाव देना;
- आयकर विभाग का कम्प्यूटरीकरण।
- आयकर महानिदेशक (पद्धति) और आयकर महानिदेशक (बीपीआर) पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण।

सदस्य (राजस्व) (Member Revenue)

- राजस्व बजट से संबंधित सभी मामले, जिसमें बजटीय लक्ष्य निर्धारित करना शामिल है;
- संपूर्ण देश के मुख्य आयकर आयुक्त;
- करों की वसूली (आयकर का अध्याय XVII), इसके भाग एफ के अतिरिक्त आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 179, 281 281बी, 289, दूसरी अनुसूची और तीसरी अनुसूची;
- विभागीय लेखा प्रणाली से संबंधित मामले।
- आयकार अधिनियम, 1961 के अध्याय XIVA, XXA, XXC के अंतर्गत आने वाले सभी मामले;
- केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड में कार्य का सामान्य समन्वय;
- आयकर निदेशालय (वसूली), आयकर निदेशालय (पीआर, पीपी एंड ओएल) और आयकर निदेशालय (ओ एंड एमएस) से संबंधित कार्य;
- मुख्य अभियंताओं (मूल्यांकन सेल) पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण;
- कर आधार के विस्तार से संबंधित सभी मामले;
- आयकर निदेशालय (टीडीएस) से संबंधित कार्य;

- कर से बचाव की रोकथाम और इसे पता लगाने से संबंधित मामलों को छोड़कर धन कर अधिनियम, व्यय कर अधिनियम, संपदा शुल्क कर और बेनामी लेनदेन (निषेध) अधिनियम से संबंधित सभी मामले।

सदस्य, कार्मिक और सतर्कता (Member, Presonnel and Vigilance)

- आयकर स्थापना से संबंधित सभी प्रशासनिक मामले मुख्य आयकर आयुक्त और आयकर आयुक्त के स्तर के अधिकारियों के स्थानांतरण और तैनाती को छोड़कर, आयकर उपायुक्त और आयकर सहायक आयुक्त के स्तर पर स्थानांतरण और तैनाती अध्यक्ष के अनुमोदन से किए जाएंगे;
- संवर्ग बाह्य पदों पर आयकर अधिकारी, आयकर सहायक आयुक्त और आयकर उपायुक्त के प्रतिनियुक्ति से संबंधित सभी मामले;
- विदेशी प्रशिक्षण को छोड़कर, प्रशिक्षण से संबंधित सभी मामले;
- राजभाषा नीति के कार्यान्वयन से संबंधित सभी मामले;
- कार्यालय के उपस्कर;
- आयकर विभाग के लिए कार्यालय स्थान और आवासीय व्यवस्था;
- परीक्षा से संबंधित मामलों में आयकर निदेशालय (आयकर) से संबंधित कार्य; आयकर निदेशालय (इनफ्रास्ट्रक्चर), आयकर महानिदेशालय (सतर्कता), आयकर महानिदेशालय (मानव संसाधन विकास) और आयकर महानिदेशालय (एनएडीटी) से संबंधित सभी कार्य।

सदस्य, अन्वेषण (Member, Innovation)

- कर अपवंचन को रोकने और पता लगाने से संबंधित तकनीकी और प्रशासनिक मामले, विशेष रूप से अध्याय XIIB के अंतर्गत आने वाले मामले जो आयकर महानिदेशक (अन्वेषण) और मुख्य आयकर आयुक्तों (केंद्रीय) के कामकाज से जहां तक संबंधित हों। आयकर अधिनियम 1961 के अध्याय XIIV, अध्याय XIXA, अध्याय XXB, अध्याय XXI, अध्याय XXII, अध्याय XXIII की धारा 285बी, 287, 291, 292 और 292ए और अन्य प्रत्यक्ष कर अधिनियमों के सदृश प्रावधान के अंतर्गत आने वाले सभी मामले;
- कर अपवचन के संबंध में शिकायतों पर कार्यवाही;
- आयकर अधिनियम के अध्याय XXII और अन्य प्रत्यक्ष करों में सदृश प्रावधानों में उल्लिखित अपराधों के संबंध में अभियोजन मामलों को दायर करने, छोड़ने या वापस लेने के लिए प्रशासनिक अनुमोदन से संबंधित सभी मामले;
- आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 147 से 153 (दोनों सम्मिलित) के प्रावधानों से संबंधित सभी तकनीकी और प्रशासनिक मामले;
- तलाशी, अभिग्रहण और सूचना देने वालों को इनाम;
- सर्वेक्षण;
- स्वैच्छिक प्रकटीकरण योजनाएं;
- तस्कर और विदेशी मुद्रा छलसाधक (संपत्ति समपहरण) अधिनियम, 1976 से संबंधित मामले;
- उच्च मूल्य बैंक नोट्स (विमुद्रीकरण) अधिनियम, 1978 से जुड़े कार्य;

- आयकर महानिदेशक (अन्वेषण), आयकर महानिदेशक (आसूचना) और मुख्य आयकर आयुक्तों (केंद्रीय) के कार्यों पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण।

सदस्य, लेखा परीक्षा और न्यायिक (Member, Audit and Judicial)

- आयकर अधिनियम, 1961 के अध्याय XX और धारा 288 के तहत सभी न्यायिक मामले;
- हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के समक्ष आयकर विभाग के लिए स्थायी काउंसिल, अभियोजन काउंसिल और विशेष काउंसिल्स की नियुक्ति से संबंधित मामले;
- लेखापरीक्षा और लोक लेखा समिति से संबंधित सभी मामले;
- आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 72ए और 80–ओ के तहत आने वाले सभी मामले;
- कर से बचाव और पहचान से संबंधित सभी मामलों को छोड़कर कर, धन–कर अधिनियम, व्यय–कर अधिनियम, संपत्ति शुल्क अधिनियम और बेनामी लेनदेन (निषेध) अधिनियम से संबंधित सभी मामले;
- आयकर महानिदेशक (विधि एवं अनुसंधान) और आयकर निदेशक (लेखा परीक्षा) के काम पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण।

केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड और फील्ड फार्मेशनस के बीच एक सकारात्मक संपर्क विकसित करके महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के संलग्न कार्यालयों के रूप में 8 निदेशालय हैं। निम्नलिखित आयकर महानिदेशक सीधे केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के प्रशासनिक नियंत्रण में हैं –

- आयकर महानिदेशक (प्रशासन)
- आयकर महानिदेशक (पद्धति)
- आयकर महानिदेशक (सतर्कता)
- आयकर महानिदेशक (प्रशिक्षण)
- आयकर महानिदेशक (विधि और अनुसंधान)
- आयकर महानिदेशक (व्यवसाय प्रक्रिया री–इंजीनियरिंग)
- आयकर महानिदेशक (आसूचना)
- आयकर महानिदेशक (मानव संसाधन विकास)

उपर्युक्त के अलावा तीन और निदेशालय हैं और फील्ड के स्तर पर भी मुख्य आयुक्तालय हैं जो निम्नानुसार हैं –

- आयकर महानिदेशक (अन्वेषण)
- आयकर महानिदेशक (छूट)
- आयकर महानिदेशक (अंतर्राष्ट्रीय कराधान)
- 18 संवर्ग नियंत्रक मुख्य आयकर आयुक्त

आयकर निदेशकों के नियंत्रण वाले विभिन्न निदेशालयों को आयकर महानिदेशकों के अधीन रखा गया है एवं जिनके माध्यम से केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड को रिपोर्ट किया जाता है –

(i) आयकर महानिदेशक (प्रशासन) निम्नलिखित निदेशालयों के कामकाज का पर्यवेक्षण करता है –

- आयकर निदेशालय (जन संपर्क, मुद्रण प्रकाशन एवं राजभाषा)
- आयकर निदेशालय (निरीक्षण एवं परीक्षा)
- आयकर निदेशालय (लेखा परीक्षा)
- आयकर निदेशालय (वसूली)
- आयकर निदेशालय (टीडीएस)

(ii) आयकर महानिदेशक (पद्धति) निम्नलिखित निदेशालयों पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण रखता है –

- आयकर निदेशालय (पद्धति)
- आयकर निदेशालय (संगठन और प्रबंधन सेवाएं)
- आयकर निदेशालय (इन्फ्रास्ट्रक्चर)

(iii) आयकर महानिदेशक (सतर्कता) निम्नलिखित चार क्षेत्रीय आयकर निदेशालयों (सतर्कता) के प्रमुख हैं –

- आयकर निदेशालय (सतर्कता) (उत्तर), दिल्ली
- आयकर निदेशालय (सतर्कता) (दक्षिण), चैन्नई
- आयकर निदेशालय (सतर्कता) (पूर्व), कोलकाता
- आयकर निदेशालय (सतर्कता) (पश्चिम), मुंबई

(iv) आयकर महानिदेशक (प्रशिक्षण), एन०ए०डी०टी० नागपुर में राष्ट्रीय प्रत्यक्ष कर अकादमी के प्रमुख हैं। क्षेत्रीय प्रशिक्षण संस्थान (RTIs) और अनुसचिवीय कर्मचारी प्रशिक्षण इकाईयाँ (MSTUs) भी आयकर महानिदेशक (प्रशिक्षण) के अंतर्गत कार्य करती हैं।

(v) आयकर महानिदेशक (मानव संसाधन विकास) आयकर निदेशालय (मानव संसाधन विकास) के प्रमुख हैं।

आयकर महानिदेशक (प्रशासन) के कार्य

निम्नलिखित निदेशालयों में कार्य पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण –

- आयकर निदेशालय (निरीक्षण और परीक्षा)
- आयकर निदेशालय (लेखा परीक्षा)
- आयकर निदेशालय (जन संपर्क, मुद्रण प्रकाशन एवं राजभाषा)
- आयकर निदेशालय (वसूली)

प्रशासनिक कार्य

आयकर महानिदेशक (प्रशासन) निम्नलिखित प्रशासनिक कार्य करते हैं –

- उपर्युक्त निदेशालयों के अंतर्गत अपर / संयुक्त आयकर निदेशक के स्तर तक के ''समूह क'' अधिकारियों के स्थानांतरण व तैनाती।

- अपने प्रशासनिक नियंत्रण में काम कर रहे राजपत्रित अधिकारियों के सतर्कता और अनुशासनात्मक मामलों को संभालना। संबंधित फाइलों को संबंधित आयकर निदेशक के माध्यम से आयकर महानिदेशक (प्रशासन) के समक्ष उचित आदेशों के लिए प्रस्तुत करना।
- सीधे उनके अधीन काम करने वाले अधिकारियों के अतिरिक्त उनके प्रभार में काम कर रहे आयकर निदेशकों की गोपनीय रिपोर्टें लिखना।
- आयकर निदेशक द्वारा लिखित अधिकारियों की गोपनीय रिपोर्टों की समीक्षा करना। वह संबंधित आयकर निदेशकों से रिपोर्ट प्राप्त करते हैं और प्रतिकूल टिप्पणियों के सम्प्रेषण सहित आगे की आवश्यक कार्यवाही करते हैं। आयकर महानिदेशक (प्रशासन) का मुख्यालय प्रतिकूल टिप्पणियों के सम्बन्ध में प्राप्त अभ्यावेदनों को देखता है और संबंधित फाइल को संबंधित आयकर निदेशक के माध्यम से आयकर महानिदेशक (प्रशासन) को प्रस्तुत करता है। संबंधित निदेशक को अपने अधीन काम करने वाले सभी अधिकारियों की विधिवत रूप से भरी वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट की दो प्रतियों को आयकर महानिदेशक (प्रशासन) को अग्रेषित करनी होती है, जो अपने रिकॉर्ड के लिए एक प्रति रखने के बाद, दूसरी प्रति बोर्ड को भेजता है।

अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत अचल संपत्ति रिटर्नों की जांच करना –

- अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत अचल संपत्ति रिटर्नों की जांच करना।
- सभी वित्तीय अनुमोदन संबंधित नियमों के तहत आयकर महानिदेशक (प्रशासन) या उनके द्वारा अधिकृत अधिकारियों द्वारा जारी की जाएगी। ऊपर निर्दिष्ट निदेशालयों के संबंध में अवशिष्ट वित्तीय शक्तियां और बजटीय नियंत्रण आयकर महानिदेशक (प्रशासन) के पास होंगे।

अन्य कार्य

- आयकर महानिदेशक (प्रशासन), आयकर निदेशक (आई एंड ई) द्वारा टिप्पणी की गई निरीक्षण रिपोर्टों से उत्पन्न होने वाले महत्वपूर्ण बिंदुओं का ध्यान रखेगा। आयकर महानिदेशक (प्रशासन) निरीक्षण अधिकारियों द्वारा देखे जाने वाले बिंदुओं के बारे में निर्देश जारी करने के संबंध में आयकर निदेशक (आई एंड ई) का मार्गदर्शन करेंगे। वह यह सुनिश्चित करेगा कि आयकर आयुक्त / अपर आयकर आयुक्त / संयुक्त आयकर आयुक्त की निरीक्षण रिपोर्टों के आधार पर फील्ड अधिकारियों द्वारा समय पर उपचारात्मक कार्यवाही की जाए और इसके अतिरिक्त जहाँ निदेशालय या बोर्ड द्वारा सामान्य निर्देश जारी किए जाने की आवश्यकता है, ऐसे निर्देश समय पर जारी किए जाएं।
- आयकर महानिदेशक (प्रशासन) ऑडिट आपत्तियों के मामलों में अनुवर्ती कार्यवाही का समन्वय और निगरानी करेगा जो अन्य प्रभारों में उत्पन्न होने वाले मुद्दों को जन्म देती है या जिनमें एक से अधिक आयकर आयुक्त की सक्रिय भागीदारी की आवश्यकता होती है। वह यह सुनिश्चित करेगा कि फील्ड को उपयुक्त निर्देश जारी किए जाएं। जहां भी कानून या प्रक्रिया में संशोधन को आवश्यक माना जाता है वह आगे की उचित कार्यवाही के लिए बोर्ड में मामले की जांच करवाएगा।
- आयकर महानिदेशक (प्रशासन) मौखिक उत्तर के लिए चुने गए सभी विशिष्ट ऑडिट पैरा की जाँच करेंगे और बोर्ड को प्रभावी ढंग से सहायता करने की स्थिति में होंगे।
- आयकर महानिदेशक (प्रशासन) आयकर निदेशक (गवेषणा, सांख्यिकी, प्रकाशन व जनसंपर्क) के मुद्रण और प्रकाशन कार्यक्रमों की जांच करेंगे और उनके सफल कार्यान्वयन की निगरानी करेंगे।

- आयकर महानिदेशक (प्रशासन) परिपत्रों, निर्देशों, पुस्तकों, ब्रोशरों इत्यादि के वास्तविक वितरण में आने वाली अड़चनों को देखेंगे और यह सुनिश्चित करेंगे कि ये प्रकाशन उन व्यक्तियों तक पहुँचे जिनके प्रयोजनार्थ हैं अर्थात् फील्ड के मूल्यांकन और संग्रह प्राधिकारियों तक।
- वर्ष के अंत में, आयकर महानिदेशक (प्रशासन) उसके अधीन प्रत्येक आयकर निदेशक के कार्य निष्पादन की एक वार्षिक रिपोर्ट प्राप्त करेगा और अपनी टिप्पणी के साथ उसकी एक प्रति अध्यक्ष, केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड या संबंधित कार्यात्मक सदस्यों को भेजेगा।
- आयकर महानिदेशक (प्रशासन) उनके नियंत्रण में कार्य कर रहे विभिन्न निदेशालयों की गतिविधियों का समन्वय करेगा और उनके कामकाज को सुव्यवस्थित करेंगे।

1(ए) आयकर निदेशालय (जनसंपर्क, मुद्रण, प्रकाशन और राजभाषा) की संरचना और कार्य

आयकर निदेशक की अध्यक्षता में इस निदेशालय के कार्य निम्नानुसार हैं –

मुद्रण और प्रकाशन विंग :

- यह विभागीय अधिकारियों द्वारा उपयोग हेतु तकनीकी व प्रशासनिक प्रकृति के अप–टू–डेट बुलेटिनों और मोनोग्राफ को निकालने हेतु एक व्यवस्थित कार्यक्रम को विकसित करने के लिए जिम्मेदार है और फील्ड कार्यालयों में अधिकारियों को इनकी आपूर्ति के लिए भी जिम्मेदार है।
- यह रिफंड ऑर्डर बुक–दोनों एमआईसीआर और गैर–एमआईसीआर सहित फॉर्मो और रजिस्टरों, वैधानिक और गैर–वैधानिक की छपाई और आपूर्ति के लिए भी जिम्मेदार है।

प्रचार और जनसंपर्क विंग :

- यह विंग करदाताओं की सूचना पुस्तिकाओं का अद्यतन संस्करण निकालता है।
- यह राष्ट्रीय दैनिक समाचार पत्रों में अंग्रेजी, हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं में विज्ञापन तैयार और जारी करता है।
- यह आयकर से संबंधित विषयों पर रेडियो स्पॉट, टीवी क्किकिज़ और फिल्मों को तैयार और प्रसारित करता है।
- यह टीवी और आकाशवाणी पर इन जन मीडिया एजेंसियों के वरिष्ठ अधिकारियों के साथ लगातार संपर्क करके कार्यक्रम आयोजित करने में शामिल है।
- यह वार्षिक प्रशासनिक हैंडबुक को संकलित, प्रिंट और वितरित करता है।
- यह पॉकेट साइज टेलीफोन डायरेक्टरी को संकलित, प्रिंट और वितरित करता है।
- यह इंटरनेट के माध्यम से वेब साइटों पर विज्ञापन तैयार और जारी करता है।
- यह होर्डिंग्स पर प्रदर्शन, बसों पर बिल–बोर्ड और सिनेमाघरों में स्लाइड जारी करने के माध्यम से आउटडोर प्रचार का समन्वय करता है।
- यह पोस्टर, पर्चे, टुकड़े टुकड़े में दीवार–हैंगर, कैप, टी–शर्ट, स्टिकर आदि के रूप में प्रचार सामग्री तैयार और जारी करता है।
- यह विभाग की वेब–साइट के माध्यम से सूचना का रखरखाव और प्रसार करता है।

राजभाषा नीति विंग :

- विभाग में सरकार की राजभाषा नीति का कार्यान्वयन।
- सरकारी कार्यों में हिंदी के प्रगामी प्रयोग की निगरानी के लिए विभाग के फील्ड कार्यालयों का निरीक्षण।
- आयकर विभाग की राजभाषा विंग में कार्यरत कर्मियों की भर्ती, पदोन्नति आदि के लिए कैडर नियंत्रण प्राधिकरण

1(बी) आयकर निदेशालय (आयकर) की संरचना और कार्य

आयकर निदेशालय (आयकर) को निरीक्षण निदेशक के अधीन 1940 में बोर्ड के संलग्न कार्यालय के रूप में बनाया गया था। पहले, ऑडिट कार्य का समन्वय भी इस निदेशालय का हिस्सा था। इसे 1982 में अलग कर दिया गया।

आयकर निदेशालय (आयकर) के कार्य निम्नानुसार हैं –

निरीक्षण विंग

- मुख्य आयकर आयुक्तों, आयकर आयुक्तों, अपर / संयुक्त आयकर आयुक्तों द्वारा निरीक्षण के लिए सामान्य दिशा–निर्देश देना।
- आयकर आयुक्तों, मुख्य आयकर आयुक्तों, आयकर निदेशकों, आयकर महानिदेशकों से निरीक्षण कार्यक्रम प्राप्त करना और निरीक्षण की प्रगति की निगरानी करना।
- प्राप्त रिपोर्टों की जाँच और उनकी समीक्षा करना और निरीक्षण अभिलेखों के अध्ययन के आधार पर निर्धारित आकलन और निरीक्षणों की गुणवत्ता पर फील्ड फार्मेशनस को सुझाव देना।
- निरीक्षण समीक्षा से निकलने वाले निष्कर्षों पर समय–समय पर बोर्ड को रिपोर्ट करना।
- निरीक्षण की वार्षिक समीक्षा करना।

परीक्षा विंग

निम्नलिखित के लिए विभागीय परीक्षाएँ आयोजित करना –

- संघ लोक सेवा आयोग द्वारा भर्ती सहायक आयकर आयुक्त (परिवीक्षाधीन अधिकारी)
- आयकर अधिकारी (ग्रुप ख)
- आयकर निरीक्षक
- अनुसचिवीय कर्मचारी वर्ग
- ग्रुप डी कम्रचारी

इनके अलावा, इस विंग को अन्य कार्यों और जिम्मेदारियों जैसे कि विभिन्न परीक्षाओं के नियमों और पाठ्यक्रम की समीक्षा, संशोधन और व्याख्या करना तथा विभिन्न विभागीय परीक्षाओं के लिए केंद्रों के निर्माण और उन्मूलन के कार्यों को सौंपा गया है। निदेशालय अन्य सभी संबंधित कार्य भी करता है।

1(सी) आयकर निदेशालय (लेखा परीक्षा) की संरचना और कार्य

आयकर निदेशक की अध्यक्षता में आयकर निदेशालय (लेखा परीक्षा) के कार्य, निम्नानुसार हैं –

- आंतरिक लेखा परीक्षा कार्यों को नियंत्रित और समीक्षा करना।
- आंतरिक लेखा परीक्षा और राजस्व लेखा परीक्षा के संबंध में फील्ड अधिकारियों को सामान्य निर्देश जारी करना।
- विभिन्न आयकर आयुक्त प्रभारों के लेखा परीक्षा विंग के कार्य का निरीक्षण करना।
- उन महत्वपूर्ण क्षेत्रों के बारे में जानकारी के संग्रह और प्रतिक्रिया को व्यवस्थित करना जहाँ राजस्व लेखा परीक्षा और आंतरिक लेखा परीक्षा द्वारा गलतियों का पता लगाया गया है।
- आंतरिक लेखा परीक्षा के प्रयोजन हेतु मैनुअल, बुलेटिन, परिपत्र आदि को निकालना।
- वार्षिक आंतरिक लेखा परीक्षा रिपोर्ट तैयार करना।
- राजस्व लेखा परीक्षा आपत्तियों का शीघ्र निपटान और समाधान सुनिश्चित करना।
- पीएसी की बैठक में चर्चा किए जाने वाले ड्राफ्ट पैरा के संबंध में बोर्ड के लिए सामग्री एकत्र करना और संक्षिप्त विवरण तैयार करना और अन्य पीएसी मामलों में भी बोर्ड की सहायता करना।
- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक रिपोर्ट, वित्त मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्टों और बोर्ड द्वारा विशेष रूप से मांगे गए अन्य कोई डाटा को रिपोर्ट में शामिल करने के लिए सांख्यिकीय डाटा एकत्र और संकलित करना।

1. (डी) आयकर निदेशालय (वसूली) की संरचना और कार्य

आयकर निदेशक की अध्यक्षता में इस निदेशालय के कार्य नीचे सूचीबद्ध हैं –

- पूरे देश के सभी मु०आ०आ० / आ० महानिदेशक (अन्वे०) प्रभारों से 1 करोड़ रुपये और उससे अधिक (फिल्म डोजियर के मामले में एक लाख और अधिक) आयकर और संपत्ति कर की कर बकाया राशि की वसूली से संबंधित आंकड़ों का संग्रह, संकलन और मिलान।
- मु०आ०आ० / आ० महानिदेशक (अन्वे०) प्रभारों से प्राप्त डोजियरों का अध्ययन, बकाया मांग के संग्रह / बकाया मांग में कमी की निगरानी करना, मामलों के तथ्यात्मक और कानूनी जटिलताओं का विश्लेषण करने और आगे की कार्यवाही के लिए टिप्पणियों और सुझावों की पेशकश के बाद विस्तृत समीक्षा तैयार करना।
- सीबीडीटी द्वारा उच्च मांग के मामलों की निगरानी के लिए रूपये 25 करोड़ और उससे अधिक के डोजियर के विश्लेषण की तिमाही रिपोर्ट तैयार करना।
- कर बकाया के संग्रह / कमी में तेजी लाने के लिए क्षेत्रीय कार्यालयों का निरीक्षण।
- सांख्यिकीय आंकड़ों का संकलन और विश्लेषण करना और विभिन्न संसदीय प्रश्नों के उत्तर के लिए बोर्ड को प्रस्तुत करना।

- मुख्य आयकर आयुक्त प्रभारों से प्राप्त राइट–ऑफ (बट्टे खाते में डालना), आंशिक राइट–ऑफ और बकाया मांग में कमी के प्रस्तावों को प्रोसेस करना।
- पुनर्वास प्रक्रिया में बीमार (SICK) कंपनियों को आयकर अधिनियम के तहत राहत / रियायतें देने के संदर्भ में बीआईएफआर / एएआईएफआर मामलों की प्रोसेसिंग करना, इसमें शामिल है –
- निर्धारण अधिकारी के माध्यम से ''बीमार'' (SICK) औद्योगिक कंपनी के दावों की वास्तविकता को सत्यापित करना;
- बीमार (SICK) औद्योगिक कंपनियाँ (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1985 की धारा 19(2) के तहत राहत के लिए के०प्र०क०बो० से अनुमोदन हेतु मामले की जाँच करना और आयकर अधिनियम के तहत बीआईएफआर के अंतिम आदेश द्वारा जिन मामलों में राहत प्रदान की गई है, से फील्ड फार्मेसंस से संवाद करना।
- बीआईएफआर के समक्ष सुनवाई में उपस्थित होना आवश्यकता के अनुसार और एएआईएफआर / उच्च न्यायालय आदि में अपील दायर करना;
- बीमार (SICK) औद्योगिक कंपनियाँ, 1985 की धारा 22 के अधीन वसूली के लिए बीआईएफआर की सहमति प्राप्त करने हेतु समन्वय और प्रोसेसिंग करना।
- वसूली / बीआईएफआर से संबंधित मामलों में नीति निर्माण में के०प्र०क० बोर्ड की सहायता करना।

2. आयकर महानिदेशक (पद्धति) के कार्य

आयकर महानिदेशक (पद्धति) के निम्नलिखित कार्य करता है –

- वह निम्नलिखित निदेशालयों में कार्य का पर्यवेक्षण और नियंत्रण करता है –
  - आयकर निदेशालय (पद्धति)
  - आयकर निदेशालय (संगठन और प्रबंधन सेवाएं)
  - आयकर निदेशालय (इन्फ्रास्ट्रक्चर)
- वह समूह 'ख' के अधिकारियों के साथ ही ऊपर के निदेशालयों में तैनात स्टॉफ और अपने कार्यालय में तैनात स्टॉफ के संवर्ग नियंत्रण प्राधिकारी के रूप में भी कार्य करता है।
- वह अपने प्रशासनिक नियंत्रण में काम कर रहे राजपत्रित अधिकारियों की सतर्कता और अनुशासनात्मक मामलों को संभालता है। संबंधित फाइलों को आयकर महानिदेशक (पद्धति) के समक्ष संबंधित आयकर निदेशक के माध्यम से उचित आदेशों के लिए रखा जाएगा।
- अपने अधीनस्थ कार्यरत अधिकारियों के साथ ही वह उसके प्रभार में कार्यरत आयकर निदेशकों की भी गोपनीय रिपोर्ट लिखता है।
- वह आयकर निदेशक द्वारा लिखित अधिकारियों की गोपनीय रिपोर्टों की समीक्षा करते हैं। आयकर महानिदेशक (पद्धति) संबंधित आयकर निदेशकों से रिपोर्ट प्राप्त करता है और प्रतिकूल टिप्पणी के संप्रेषण सहित 9 आवश्यक कार्यवाही करता है। आयकर महानिदेशक (पद्धति) का मुख्यालय कार्यालय प्रतिकूल टिप्पणियों के संबंध में अभ्यावेदनों को देखेगा और संबंधित फाइल को आयकर निदेशक (पद्धति) संबंधित आयकर निदेशक के माध्यम से प्रस्तुत करेगा। संबंधित आयकर निदेशक अपने अधीन काम करने वाले सभी अधिकारियों की विधिवत रूप से भरी वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट की दो प्रतियों को आयकर महानिदेशक

(पद्धति) को अग्रेषित कर देगा, जो अपने रिकॉर्ड के लिए एक प्रति रखने के बाद बोर्ड को दूसरी प्रति प्रेषित करेगा।

- वह अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत अचल संपत्ति रिटर्न की जांच करता है।
- वर्ष के अंत में, वह उसके अधीन प्रत्येक आयकर निदेशक के कार्य निष्पादन की एक वार्षिक रिपोर्ट प्राप्त करेगा और अपनी टिप्पणी के साथ एक प्रति अध्यक्ष, के०प्र०क० बोर्ड या संबंधित कार्यात्मक सदस्य को भेजेगा।
- वह अपने नियंत्रण में कार्य कर रहे विभिन्न निदेशालयों की गतिविधियों का समन्वय करेगा और उनके कामकाज को सुव्यवस्थित करेगा।
- सभी वित्तीय अनुमोदन संबंधित नियमों के तहत अथवा उसके द्वारा अधिकृत अधिकारी द्वारा जारी किए जाएंगे। ऊपर निर्दिष्ट निदेशालयों के संबंध में अवशिष्ट वित्तीय शक्तियाँ और बजटीय नियंत्रण आयकर महानिदेशक (पद्धति) के साथ होंगे।

2 (ए) आयकर निदेशालय (पद्धति) की संरचना और कार्य

यह निदेशालय, जो एक आयकर निदेशक की अध्यक्षता में है, 1981 में शीर्ष स्तर पर, आयकर विभाग में कम्प्यूटीकरण की शुरूआत से संबंधित सभी गतिविधियों में समन्वय और निम्नलिखित कार्य करने के लिए बनाया गया था –

- सॉफ्टवेयर विकास
- कम्प्यूटरीकरण के लिए उपयुक्त क्षेत्रों की पहचान करने हेतु व्यवहारिकरण और प्रणालियों के अध्ययन का संचालन।
- एप्लिकेशन सॉफ्टवेयर पैकेजों का विकास, परीक्षण और प्रलेखन।
- ऑन–द–जॉब प्रशिक्षण और कार्यान्वयन की प्रगति की निगरानी सहित विभाग के विभिन्न कम्प्यूटर केंद्रों पर सॉफ्टवेयर पैकेजों का कार्यान्वयन।
- हार्डवेयर इन्स्टालेशन।
- विभाग के विभिन्न उपयोगकर्ताओं के लिए उपयुक्त हार्डवेयर के चयन हेतु बेंच – मार्क परीक्षणों का संचालन और उपयुक्त प्राधिकारियों की मंजूरी के साथ खरीद के लिए नियम और शर्तों को अंतिम रूप देना।
- कंप्यूटर हार्डवेयर की स्थापना के लिए साइटों का चयन, उपयुक्त सरकारी संस्था की मदद से साइटों की तैयारी, कंप्यूटर सिस्टम की स्थापना, स्वीकृति परीक्षण आयोजित करना और सिस्टम को चालू करना।
- उपयुक्त एजेंसियों के माध्यम से कंप्यूटर हार्डवेयर का रखरखाव और वार्षिक रखरखाव अनुबंध के नियमों और शर्तों को अंतिम रूप देना, जो संबंधित क्षेत्र के CCIT के माध्यम से केंद्रीय और / या विकेंद्रीयकृत तरीके से लिया जा सकता है।
- स्थापित कंप्यूटर हार्डवेयर के प्रदर्शन की निगरानी और अतिरिक्त हार्डवेयर की जरूरतों का आवधिक मूल्यांकन करना।
- प्रशिक्षण और समन्वय।

- कंप्यूटर के क्षेत्र में विभाग की प्रशिक्षण आवश्यकताओं की पहचान।
- विभिन्न परिचालन स्तरों पर कंप्यूटर के क्षेत्र में आंतरिक विशेषज्ञता (in-house expertise) का निर्माण करने के लिए विभाग के विभिन्न कंप्यूटर केंद्रों पर विभिन्न पाठ्यक्रमों का संचालन।
- विभाग के सभी कंप्यूटर केंद्रों के सुचारू कामकाज से संबंधित सभी गतिविधियों का समन्वय।
- विभाग के कंप्यूटर केंद्रों के लिए तकनीकी कार्मिक संख्या की आवश्यकताओं का मूल्यांकन करना और विभाग के भीतर और बाहर से इस कार्मिक संख्या की नियुक्ति के लिए उपयुक्त भर्ती नियमों को बनाना।
- राष्ट्रीय कंप्यूटर केंद्र
- राष्ट्रीय कंप्यूटर केंद्र की स्थापना और कामकाज से संबंधित सभी गतिविधियों की योजना और समन्वय।
- विभागीय एप्लिकेशन सॉफ्टवेयर्स से संबंधित राष्ट्रीय डेटाबेस का रखरखाव।
- राष्ट्रीय डेटाबेस की सुरक्षा सुनिश्चित करना।
- अनुसंधान और विकास

बेहतर करदाता सेवाओं और कर अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए विभाग में काम की गति को बढ़ाने हेतु विशेष परियोजनाओं को आरंभ करना।

2(बी) आयकर निदेशालय (संगठन और प्रबंधन सेवाएं) की संरचना और कार्य

प्रत्यक्ष कर जांच समिति (वांचू कमेटी) की सिफारिशों पर आयकर निदेशालय (संगठन और प्रबंधन सेवाएं) जो एक आयकर निदेशक के नेतृत्व में है, वर्ष 1972 में अस्तित्व में आया। अप्रैल 1973 में इसके कार्य करना प्रारंभ कर दिया। यह निदेशालय बोर्ड का एक संलग्न कार्यालय है और एक आंतरिक प्रबंधन सलाहकार के रूप में कार्य करता है।

इस निदेशालय के कार्यों का मूल चार्टर हैं –

- कार्य की प्रक्रियाओं और प्रणालियों की समीक्षा करना
- काम / स्टाफिंग मानदंडों को निर्धारित करना
- आयकर विभाग में मौजूदा फॉर्म और रजिस्टरों, कार्यालय लेआउट आदि की उपयोगिता की निगरानी करना।

पिछले कुछ वर्षों में, निदेशालय ने न केवल इन कार्यों को पूरा किया है, बल्कि जटिल प्रबंधन और संगठन की समस्याओं के कारण अपने कार्यों के मूल चार्टर के दायरे को काफी बढ़ा दिया है। निदेशालय ने समय–समय पर बोर्ड को उनके समाधान की सलाह दी है। यह वर्तमान में बोर्ड के आंतरिक प्रबंधन सलाहकार के रूप में मुख्य रूप से निम्नलिखित कार्य करता है –

- संगठन और प्रबंधन अध्ययन का संचालन।
- प्रक्रिया और प्रबंधन पद्धतियों में सुधार के लिए कार्य प्रक्रियाओं की निरंतर समीक्षा करना। निदेशालय कमी वाले क्षेत्रों की पहचान करता है और काम के अधिक कुशल तरीकों को विकसित करता है।
- कार्य / स्टाफिंग मानदंडों को निर्धारित करना।

- क्षेत्रीय कार्यालयों के लिए बनाए गए लक्ष्यों की तुलना में उनके कार्य निष्पादन को नियमित रूप से निगरानी करके आयकर विभाग के लिए कार्य योजना तैयार करने व उसके मूल्यांकन में के०प्र०क० बोर्ड की सहायता करना। मासिक आधार पर या निदेशालय केंद्रीय कार्य योजना विवरणों को एकत्र करता है, जिसमें निगम कर / आयकर की बकाया एवं वर्तमान माँगों के संग्रह / कमी और प्रगतिशील कार्यभार और आयकर निर्धारण के निपटान के आंकड़े दर्शाए जाते हैं। निदेशालय फील्ड कार्यालयों के लिए निर्धारित त्रैमासिक लक्ष्यों की तुलना में उनके कार्य निष्पादन की निगरानी भी करता है।

- मौजूदा फॉर्म, रजिस्टर आदि की उपयोगिता की निगरानी करना।

2(सी) आयकर निदेशालय (इन्फ्रास्ट्रक्चर) की संरचना और कार्य

यह निदेशालय, विभाग के पुनर्गठन के बाद बनाया गया है। यह सभी स्तरों पर सुविधाओं के उन्नयन के लिए एक रणनीतिक योजना तैयार करना है और विभाग में बुनियादी ढांचे के निर्माण और खरीद से संबंधित निर्णयों को प्राथमिकता देने के लिए एक नोडल एजेंसी के रूप में कार्य करता है। निदेशालय दिल्ली में स्थित है और इसका अध्यक्ष आयकर निदेशक (आयकर आयुक्त के रैंक का अधिकारी) होता है, जो आयकर महानिदेशक (पद्धति) के प्रशासनिक नियंत्रण में काम करता है। आयकर निदेशक (इन्फ्रास्ट्रक्चर) निम्नलिखित कार्य करता है, जो पहले बोर्ड द्वारा किए जाते थे –

- अखिल भारतीय आधार पर आयकर विभाग के लिए निर्माण कार्यक्रम तैयार करना।
- निर्माण कार्यक्रम का कार्यान्वयन।
- भवनों के निर्माण के संबंध में मु०आ०आ० / आ० आयुक्तों से प्राप्त व्यक्तिगत प्रस्तावों की जाँच जिसमें निम्नलिखित शामिल हैं –
  - आवास की अनुसूची तैयार करना।
  - योजनाओं और अनुमानों की जांच।
  - जहाँ आवश्यक हो, व्यय वित्त समिति की स्वीकृति प्राप्त करना तथा
  - प्रशासनिक स्वीकृति और व्यय अनुमोदन जारी करना।
- विभागीय भवनों के निर्माण के लिए भूमि के अधिग्रहण से संबंधित प्रस्तावों की जांच –
  - कर्मचारियों की संख्या आदि के आधार पर कार्यालय और आवास के लिए आवश्यकताओं की विस्तृत जांच तथा
  - प्रशासनिक अनुमोदन और व्यय स्वीकृति जारी करना।
- भवनों की खरीद के संबंध में प्रस्तावों की जांच।
- विभागीय भवनों की मरम्मत और लघु कार्यों के बारे में प्रस्तावों की जांच।
- विभागीय भवनों के निर्माण, भूमि के अधिग्रहण और भवनों की खरीद के संबंध में बजट प्रस्तावों को अंतिम रूप देना।
- संलग्न और अधीनस्थ कार्यालयों के संबंध में कार्यालय / कार्यालय–सह– रिहायशी आवास और गोदाम आवास को किराये पर लेने के बारे में प्रस्तावों की जांच।
- कर्मचारियों को रियायती आवास का प्रावधान।

- इन्फ्रास्ट्रक्चर से संबंधित मामलों के संबंध में कोर्ट केसों की प्रोसेसिंग करना।
- भवनों की मांग करने और मांगी गई सम्पत्तियों से संबंधित मामले।
- आयकर विभाग के विभागीय पूल में रिहायशी आवास के आबंटन के संबंध में नियमों को बनाना एवं उनकी व्याख्या करना।
- अधिशेष भूमि एवं भवनों का निपटान।
- विभागीय भवनों, कार्यालय और रिहायशी से संबंधित सभी विविध मामले।
- आयकर विभाग के विभिन्न कर्मचारी संघों से प्राप्त अभ्यावेदनों को प्रोसेस करना।
- विशिष्ट भवनों (बिल्डिंगों) में स्थित कार्यालयों के स्थानों के संबंध में शिकायत एवं अभ्यावेदनों को प्रोसेस करना।

3. आयकर महानिदेशक (सतर्कता) के कार्य

आयकर महानिदेशक (सतर्कता) आयकर विभाग के मुख्य सतर्कता अधिकारी हैं। उन्हें केंद्रीय सतर्कता आयोग की सहमति से नियुक्त किया जाता है और वे सीधे केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के अधीन कार्य करते हैं। वे सदस्य (कार्मिक) और अध्यक्ष, सीबीडीटी को रिपोर्ट करते हैं।

CBDT और EBIC का विलय नहीं

हाल ही में एक प्रमुख समाचार पत्र में 'केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड' (Central Board of Direct Taxes – CBDT) और 'केंद्रीय अप्रत्यक्ष कर और सीमा शुल्क बोर्ड' (Central Board of Indirect Taxes and Customs - CBIC) के विलय का अप्रमाणित समाचार प्रकाशित होने के बाद केंद्र सरकार को मामलें में स्पष्टीकरण देना पड़ा।

प्रमुख बिंदु

- केंद्र सरकार ने स्पष्ट किया है कि इन दो बोर्डों के विलय का अभी तक कोई प्रस्ताव नहीं है।
- CBDT और CBIC बोर्डों का गठन 'केंद्रीय राजस्व बोर्ड अधिनियम' (Central Board of Revenue Act) – 1963 के तहत किया गया है।
- प्रकाशित अप्रमाणित न्यूज़, पत्रकारिता में निम्नस्तरीय गुणवत्ता को दर्शाता है।

क्या था मामला ?

- एक प्रमुख समाचार पत्र ने अपनी रिपोर्ट को प्रकाशित करने के लिये 'कर प्रशासनिक सुधार आयोग' (Tax Administrative Reforms Commission - TARC) की सिफारिशों को आधार बनाया तथा न्यूज़ से जुड़े तथ्यों को वित्त मंत्रालय के आवश्यक सत्यापन के बिना मुख्य पेज पर प्रकाशित किया।
- यहाँ ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि सरकार द्वारा TARC के दोनों बोर्डों के विलय की सिफारिश को पहले ही अस्वीकार कर दिया गया था।

TARC की सिफारिशें

- वर्ष 2014 में 'कर प्रशासनिक सुधार आयोग' (TARC) ने CBDT तथा CBEC (वर्ष 2014 में CBIC को CBEC के रूप में जाना जाता था) के विलय की सिफारिश की थी।

- TARC द्वारा CBDT और CBEC को अगले 10 वर्षों में पूरी तरह से एकीकृत किये जाने की सिफारिश की गई थी।
- TARC ने अगले 5 वर्षों में केंद्रीय प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के तहत एक एकीकृत प्रबंधन संरचना को अपनाने की भी सिफारिश की थी।

TARC का अवलोकन

- वर्तमान संगठनात्मक संरचना में 'केंद्रीय प्रशासन प्रत्यक्ष कर बोर्ड' (CBDT) और 'केंद्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क बोर्ड' (CBEC) में शीर्ष कर प्रशासक राजस्व सचिव होता है। राजस्व सचिव एक कर प्रशासन विशेषज्ञ न होकर समान्यज्ञ होता है।
- प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर प्रशासन के बीच एक कृत्रिम अलगाव है। CBDT और CBEC के बीच सहयोग का अभाव है।
- भारत में कर प्रशासन और करदाताओं के बीच सबसे अधिक कर विवाद देखने को मिलते हैं जिसमें बकाया कर की वसूली का अनुपात बहुत कम है।
- CBDT और CBEC सदस्यों का चयन विशेषज्ञता, नीति अनुभव आदि पर विचार किये बिना वरिष्ठता के आधार पर किया जाता है।

सरकार का पक्ष

सरकार द्वारा दोनों बोर्डों के विलय के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया गया तथा करदाताओं के लिये अन्य मैत्रीपूर्ण सुधारों जैसे इलेक्ट्रॉनिक सत्यापन या लेन–देन को लागू करना आदि के कार्यान्वयन पर बल दिया गया।

CBIC और CBDT

- 'केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड' और 'केंद्रीय अप्रत्यक्ष कर और सीमा शुल्क बोर्ड' का गठन वर्ष 1963 में 'केंद्रीय राजस्व बोर्ड अधिनियम' – 1963 के माध्यम से केंद्रीय वित्त मंत्रालय के राजस्व विभाग के अधीन किया गया था।
- ये दोनों ही संस्थाएँ सांविधिक निकाय (Statutory Body) हैं।
- CBIC के कार्य :
  - 'केंद्रीय अप्रत्यक्ष कर और सीमा शुल्क बोर्ड' (CBIC) को पूर्व में 'केंद्रीय उत्पाद और सीमा शुल्क बोर्ड' (CBEC) के रूप में जाना जाता था।
  - CBIC के कार्यों में लेवी और सीमा शुल्क संग्रहण, केंद्रीय उत्पाद शुल्क, 'केंद्रीय माल और सेवा कर' (CGST) और 'एकीकृत माल और सेवा कर' (IGST) के संग्रह तथा संबंधित कार्यों के संबंध में नीति तैयार करना शामिल है।

CBDT के कार्य

CBDT प्रत्यक्ष करों से संबंधित नीतियों एवं योजनाओं के संबंध में महत्त्वपूर्ण इनपुट प्रदान करने के साथ–साथ आयकर विभाग की सहायता से प्रत्यक्ष करों से संबंधित कानूनों को प्रशासित करता है।

उपयोगी संदर्भ

- एच०सी० महरोत्रा और एम०पी० गोयल, कराधान : सिद्धान्त एवं व्यवहार, आगरा, साहित्य भवन, 2020–21
- आर०के० जैन, इनकम टैक्स लॉ और प्रेकटिस, साहित्य, 2020

कुछ प्रश्न

- केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के संगठन तथा कार्यों का वर्णन करो।
- केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड की कार्य प्रणाली का वर्णन और टैक्स प्रशासनिक सुधार आयोग की इस सम्बन्ध में सिफारिशे बताए।

अध्याय – 12

केन्द्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क बोर्ड

(Central Board of Excise and Customs)

रूपरेखा

- उत्पाद शुल्क – अर्थ
- सीमा शुल्क अर्थ एवं प्रकार
- सीमा शुल्क की गणना
- बोर्ड के कार्य
- बोर्ड का नया नाम
- कुछ उपयोगी संदर्भ
- कुछ प्रश्न

केंद्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क बोर्ड (सीबीईसी) भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के अधीन राजस्व विभाग का एक हिस्सा है। यह लेवी और केंद्रीय उत्पाद शुल्क व सीमा शुल्क की वसूली से संबंधित नीतियां तैयार करता है। साथ ही सीबीईसी के अधिकार क्षेत्र में आने वाले प्रशासन से संबंधित तस्करी की रोकथाम और सीमा शुल्क, केंद्रीय उत्पाद शुल्क और नारकोटिक्स से संबंधित मामले देखता है। बोर्ड कस्टम हाऊसेज, केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्तालय और केंद्रीय राजस्व नियंत्रण प्रयोगशाला सहित अपने अधीनस्थ संगठनों का प्रशासनिक प्राधिकरण है।

अध्यक्ष, जो कि भारत सरकार के पदेन सचिव होते हैं, सीबीईसी का प्रमुख होता है। इसके अलावा, सीबीईसी में पाँच सदस्य होते हैं, जो भारत सरकार के पदेन अपर सचिव होते हैं। सीबीईसी के अध्यक्ष और सदस्यों का चयन भारतीय राजस्व सेवा (आईआरएस), भारत की प्रमुख सिविल सेवा, से की जाती है। ये सदस्य केंद्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क विभाग के शीर्ष प्रबंधन का गठन करते हैं। सीबीईसी के समर्थन सदस्यों को आईआरएस और देश के अन्य प्रमुख सिविल सेवाओं से चुना जाता है और इससे संबद्ध कई कार्यालय इसकी सहायता करते हैं।

उत्पाद कर (Excise)

'उत्पाद शुल्क' या आबकारी एक अप्रत्यक्ष कर है जो भारत में विनिर्माण की जाने वाली उन वस्तुओं पर लगाया जाता है जो घरेलू खपत के लिए होती हैं। कर 'विनिर्माण' पर लगाया जाता है और जैसे ही वस्तुओं का विनिर्माण हो जाता है। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क देय हो जाता है। यह विनिर्माण पर लगाया गया कर है जो विनिर्माता द्वारा अदा किया जाता है, जो अपना कर भार ग्राहकों पर डाल देते हैं। उत्पाद शुल्क योग्य वस्तुएं शब्द का अर्थ है वे वस्तुएं जिन्हें केन्द्रीय उत्पाद प्रशुल्क अधिनियम, 1985, से संलग्न पहली अनुसूची और दूसरी अनुसूची में उत्पाद शुल्क योग्य वस्तुओं के रूप में निर्दिष्ट किया गया है जिनमें नमक भी शामिल है। ऐसी कोई भी प्रक्रिया शामिल है जो,

किसी उत्पाद का विनिर्माण पूरा होने से जुड़ी हैं अथवा उसमें सहायक है और केन्द्रीय उत्पाद प्रशुल्क अधिनियम, 1985 से संलग्न पहली अनुसूची के खण्ड अथवा अध्याय की टिप्पणियों में विनिर्माण के लिए उल्लिखित किन्हीं वस्तुओं के संबंध में विनिर्दिष्ट है और तीसरी अनुसूची में निर्दिष्ट वस्तुओं के संबंध में वस्तुओं के खुदरा बिक्री मूल्य की घोषणा करने अथवा उनमें परिवर्तन करने अथवा उत्पाद को उपभोक्ता के लिए विपणन योग्य बनाने के लिए वस्तुओं के संबंध में कोई अन्य कार्यवाही करने सहित उन वस्तुओं की किसी यूनिट पात्रों (कंटेनर) में पैकिंग अथवा पुनः लेबल लगाने से संबंधित हो। वस्तुओं का उत्पादन अथवा विनिर्माण होने के बाद उत्पाद शुल्क का करागार शुरू हो जाता है, विधि के तहत एक अनिवार्य शर्त के रूप में विनिर्माण स्थल से वस्तुओं बिक्री करना अपेक्षित नहीं हे। सामान्यतः कर वस्तुओं को वहां से 'ले जाने' पर देय होता है। केंद्रीय उत्पाद शुल्क नियमावली में यह उपबंध है कि ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो किन्हीं उत्पाद शुल्क योग्य वस्तुओं का उत्पादन अथवा विनिर्माण करता है अथवा इन वस्तुओं का उत्पादन अथवा विनिर्माण करता है अथवा इन वस्तुओं का भांडागार में संचयन करता है, इन वस्तुओं पर देय शुल्क का भुगतान इन नियमावली अथवा अन्य किसी नियम में दी गई विधि से करेगा। कोई भी उत्पाद – शुल्क योग्य वस्तु जिस पर कोई शुल्क देय है, शुल्क का भुगतान किए बिना उस स्थान से जहां इनका उत्पादन अथवा विनिर्माण हुआ हो अथवा भांडागार से 'उठाई' नहीं जा सकती जब तक कि अन्यथा व्यवस्था न की गई हो। जरुरी नहीं है कि 'उइाना' (रिमूवल) शब्द को बिक्री के अर्थ में लिया जाए।

उठाने (रिमूवल) का अर्थ निम्नलिखित हो सकता है –

बिक्री डिपो को अंतरण आदि सीमित उपभोग किसी अन्य यूनिट को अंतरण निःशुल्क वितरण इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि इस बात को ध्यान में रखे बगैर कि रिमूवल बिक्री के लिए है अथवा अन्य प्रयोजन के लिए, शुल्क देय हो जाता है।

केंद्रीय उत्पाद शुल्क लगाने के लिए नियम

(Rules for living the Central Excise)

भारत में उत्पाद शुल्क केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1944 के उपबंधों के अनुसार लगाया जाता है। यह एक मूलभूत अधिनियम है जो केंद्रीय उत्पाद शुल्क लगाने और करने के संबंध में नियम निर्धारित करता है। यह अधिनियम केंद्रीय सरकार को इस अधिनियम के अनुसरण में नियम बनाने की शक्तियां प्रदान करता है। तदनुसार निम्नलिखित नियमों के सैट तैयार किए गए हैं – केंद्रीय उत्पाद शुल्क नियमावली, 2002 (वित्त अधिनियम, 2002 की धारा 43)।

केंद्रीय उत्पाद शुल्क (मामलों का निपटान) नियमावली, 2001

केंद्रीय उत्पाद शुल्क (उत्पाद शुल्क योग्य वस्तुओं के विनिर्माण के लिए रियायती शुल्क दर पर वस्तुओं को उठाना) नियमावली, 2001

केंद्रीय उत्पाद शुल्क निर्धारण (उत्पाद–शुल्क योग्य वस्तुओं के मूल्य का निर्धारण) नियमावली, 2000

उपभोक्ता कल्याण निधि नियमावली, 1992

केंद्रीय उत्पाद–शुल्क (अग्रि व्यवस्था) नियमावली, 2002

केंद्रीय उत्पाद शुल्क (अपराधों का समझौते के जरिए निपटारा) नियमावली, 2005 केंद्रीय उत्पादक शुल्क केंद्रीय उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क बोर्ड (सीबीईसी) द्वारा प्रशासित होता है। केंद्रीय उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क बोर्ड वित्त मंत्रालय भारत सरकार के अधीन राजस्व विभाग का एक हिस्सा है। यह सीमा शुल्क और केंद्रीय उत्पाद शुल्क लगाने और वसूल करने से संबंधित नीतियाँ तैयार करने, तस्करी को रोकने और सीबीईसी के अधिकार क्षेत्र में आने वाले सीमा शुल्क, केन्द्रीय उत्पाद–शुल्क और स्वापक से संबंधित मामलों के प्रशासन संबंधित कार्य करता है। यह बोर्ड अपने– अपने अधीनस्थ संगठनों जैसे कि कस्टम हाउस, केंद्रीय उत्पाद शुल्क कमशिनरेटों और केंद्रीय राजस्व नियंत्रण प्रयोगशाला का प्रशासनिक प्राधिकरण है।

उत्पाद शुल्कों के भिन्न

परिभाषा (Definition)

देश के अनुसार उत्पाद कर की परिभाषा बदलती रहती है जैसे –

- भारत में उत्पाद कर से आशय उस कर से है जो भारत में उत्पादित वस्तुओं पर लगाया जाता है।
- यू०के० में उत्पाद कर कुछ विशेष प्रकार के नशीले पदार्थों पर, पर्यावरण कर, जुआ, हवाला तम्बाकू आदि इस श्रेणी में आते हैं। इनमें से अधिकांश उत्पाद ना होकर सेवाएं हैं जिन पर ये कर लगाया जाता है।
- ऑस्ट्रेलिया में उत्पाद कर तेल, तम्बाकू, मदिरा व वैकल्पिक ईंधनों पर लगाया जाता है।

सीमा शुल्क का अर्थ और इसके प्रकार

(Meaning and Types of Custom)

सीमा शुल्क शुल्क उस कर को संदर्भित करता है जो अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं के पार माल के परिवहन पर लगाया जाता है। यह एक तरह का अप्रत्यक्ष कर है जो सरकार द्वारा वस्तुओं के आयात और निर्यात पर लगाया जाता है। निर्यात–आयात व्यवसाय में शामिल कंपनियों को इन नियमों का पालन करने और आवश्यकतानुसार सीमा शुल्क का भुगतान करने की आवश्यकता है। अलग तरीके से कहें तो सीमा शुल्क एक तरह की फीस है, जो उस देश से माल और सेवाओं की आवाजाही के लिए सीमा शुल्क अधिकारियों द्वारा एकत्र की जाती है। उत्पादों के आयात के लिए लगाए जाने वाले कर को आयात शुल्क के रूप में जाना जाता है, जबकि किसी अन्य देश को निर्यात किए जाने वाले माल पर लगाए गए कर को निर्यात शुल्क के रूप में जाना जाता है।

सीमा शुल्क का प्राथमिक उद्देश्य अन्य देशों के शिकारी प्रतिस्पर्धियों से राजस्व जुटाना, घरेलू व्यापार, नौकरियों, पर्यावरण और उद्योगों आदि की सुरक्षा करना है। इसके अलावा, यह धोखाधड़ी गतिविधियों और काले धन के संचलन को कम करने में मदद करता है।

सीमा शुल्क की गणना (Calculation of Custom)

सीमा शुल्क की गणना विभिन्न कारकों के आधार पर की जाती है जैसे कि निम्नलिखित –

- अच्छे के अधिग्रहण का स्थान।
- वह स्थान जहाँ माल बनाया जाता था।
- माल की सामग्री।
- वजन और अच्छे के आयाम आदि।

इसके अलावा, यदि आप भारत में पहली बार एक अच्छा ला रहे हैं, तो आपको इसे सीमा शुल्क नियम के अनुसार घोषित करना चाहिए।

भारत में सीमा शुल्क (Custom in India)

भारत में एक अच्छी तरह से विकसित कराधान संरचना है। भारत में कर प्रणाली मुख्य रूप से एक त्रिस्तरीय प्रणाली है जो केंद्र, राज्य सरकारों और स्थानीय सरकारी संगठनों के बीच आधारित है। भारत में सीमा शुल्क ड्यूटी के अंतर्गत आता है सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 और सीमा शुल्क 1975 का शुल्क अधिनियम।

भारत की नई कराधान प्रणाली के कार्यान्वयन के बाद से जीएसटी किसी भी आयातित सामान के मूल्य पर एकीकृत माल और मूल्य वर्धित सेवा कर (IGST) वसूला जा रहा है। IGST के तहत, सभी उत्पादों और सेवाओं पर 5 प्रतिशत, 12 प्रतिशत, 18 प्रतिशत और 28 प्रतिशत के चार मूल स्लैब के तहत कर लगाया जाता है।

इसके अलावा, विदेश व्यापार महानिदेशक का कार्यालय किसी भी आयात और निर्यात गतिविधियों में संलग्न होने से पहले सभी आयातकों के पंजीकरण को मान्य करता है।

सीमा शुल्क की संरचना (Structure of Custom)

आमतौर पर, देश में आयात किये जाने वाले सामान पर शैक्षिक उपकर के साथ सीमा शुल्क लगाया जाता है। औद्योगिक उत्पादों के लिए दर को घटाकर 15 प्रतिशत कर दिया गया है। माल की लेन–देन के मूल्य पर सीमा शुल्क का मूल्यांकन किया जाता है। भारत में आयात और निर्यात शुल्क की मूल संरचना में शामिल हैं –

- मूल बातें सीमा शुल्क
- अतिरिक्त ड्यूटी
- विशेष अतिरिक्त कर्त्तव्य
- शिक्षा का मूल्यांकन या उपकर
- अन्य राज्य स्तरीय कर

अतिरिक्त शुल्क शराब, आत्माओं और मादक पेय को छोड़कर सभी आयातों पर लागू होता है। इसके अलावा, विशेष अतिरिक्त शुल्क की गणना मूल कर्तव्य और अतिरिक्त शुल्क के आधार पर की जाती है। इनके अलावा, अधिकांश वस्तुओं पर लगाए गए उपकर का प्रतिशत 3 प्रतिशत है।

सीमा शुल्क के प्रकार (Types of Custom)

देश में आयात होने वाले लगभग सभी सामानों पर सीमा शुल्क लगाया जाता है। दूसरी ओर, निर्यात शुल्क कुछ वस्तुओं पर लगाया जाता है जैसा कि दूसरी अनुसूची में उल्लिखित है। जीवन रक्षक दवाओं, उर्वरकों और खाद्यान्नों पर सीमा शुल्क नहीं लगाया जाता है। सीमा शुल्क को विभिन्न करों में विभाजित किया गया है, जैसें –

1 **मूल सीमा शुल्क :** यह उन आयातित वस्तुओं पर लगाया गया है जो सीमा शुल्क अधिनियम, 12 की धारा 1962 का हिस्सा हैं। कर की दर सीमा शुल्क अधिनियम, 1975 की पहली अनुसूची के अनुसार लगाई जाती है।

2 **अतिरिक्त सीमा शुल्क** : यह उन सामानों पर लगाया जाता है जो सीमा शुल्क अधिनियम, 3 की धारा 1975 के तहत बताए गए हैं। कर की दर कमोबेश भारत के भीतर उत्पादित वस्तुओं पर लगाए गए केंद्रीय उत्पाद शुल्क के समान है। यह कर अब जीएसटी के तहत लिया गया है।

3 **सुरक्षात्मक कर्तव्य** : यह विदेशी आयातों के खिलाफ स्वदेशी व्यवसायों और घरेलू उत्पादों की रक्षा के उद्देश्य से लगाया जाता है। दर का निर्धारण टैरिफ आयुक्त द्वारा किया जाता है।

4 **शिक्षा उपकर** : सीमा शुल्क में शामिल अतिरिक्त 2 प्रतिशत के अतिरिक्त 1 पर यह शुल्क लिया जाता है।

5 **डंपिंग रोधी शुल्क** : यह लगाया जाता है अगर एक विशेष अच्छा आयात किया जा रहा है उचित बाजार मूल्य से नीचे है।

6 **सुरक्षा शुल्क** : यह सीमा शुल्क अधिकारियों द्वारा लगाया जाता है कि ऐसा लगता है कि किसी विशेष अच्छे के निर्यात से देश की अर्थव्यवस्था को नुकसान हो सकता है।

सीमा शुल्क की गणना (Cacluation of Custom)

पिछली कक्षा का सीमा शुल्क की गणना आमतौर पर की जाती है माल के मूल्य के आधार पर Ad valorem पर। माल के मूल्य की गणना सीमा शुल्क नियमावली, 3 के नियम 2007(i) के तहत बताए गए नियमों के अनुसार की जाती है।

तुम भी का उपयोग कर सकते हैं सीमा शुल्क कैलकुलेटर यह CBEC वेबसाइट पर उपलब्ध है। वर्ष 2009 में कम्प्यूटरीकृत और इलेक्ट्रॉनिक सर्विस ड्राइव के हिस्से के रूप में, भारत ने एक वेब–आधारित प्रणाली शुरू की, जिसे ICEGATE के रूप में जाना जाता है। ICEGATE, भारतीय सीमा शुल्क इलेक्ट्रॉनिक वाणिज्य / इलेक्ट्रॉनिक डाटा इंटरचेंज प्रवेश द्वार का संक्षिप्त नाम है। यह शुल्क दरों की गणना, आयात–निर्यात माल घोषणा, शिपिंग बिल, इलेक्ट्रॉनिक भुगतान, आयात और निर्यात लाइसेंस के सत्यापन के लिए एक मंच प्रदान करता है।

सीमा शुल्क की भारतीय वर्गीकरण हामोनाइज्ड कमोडिटी विवरण (एचएस) और कोडिंग प्रणाली पर आधारित है। HS कोड 6 अंकों के होते हैं।

सभी आयातों और निर्यातों पर लागू होने वाला IGST, अच्छे पर प्राथमिक सीमा शुल्क के साथ अच्छे के मूल्य पर लगाया जाता है। संरचना इस प्रकार है –

आयातित वस्तुओं का मूल्य + मूल बातें सीमा शुल्क ड्यूटी + समाज कल्याण अधिभार = मूल्य जिसके आधार पर IGST की गणना की जाती है

सामान्य मूल्यांकन कारकों के संबंध में भ्रम की स्थिति में निम्नलिखित कारकों को अपवाद के रूप में ध्यान में रखा जाता है –

- नियम 4 के अनुसार समान वस्तुओं के लेनदेन मूल्य की गणना करने के लिए तुलनात्मक मूल्य विधि।
- नियम 5 के अनुसार समान वस्तुओं के लेनदेन मूल्य की गणना करने के लिए तुलनात्मक मूल्य विधि।
- नियम 7 के अनुसार आयात करने वाले देश में किसी वस्तु की बिक्री मूल्य की गणना करने के लिए डिडक्टिव वैल्यू मेथड।
- कम्प्यूटेड वैल्यू मेथड जो कि निर्माण सामग्री और लाभ के अनुसार नियम 8 के अनुसार उपयोग किया जाता हैं।

- नियम 9 के अनुसार उच्च लचीलेपन के साथ माल की गणना करने के लिए फॉलबैक विधि का उपयोग किया जाता है।

केंद्रीय उत्पाद शुल्क और सीमा शुल्क बोर्ड वित्त मंत्रालय के तहत देश में सीमा शुल्क प्रक्रिया का प्रबंधन करता है। अगर सही तरीके से किया जाए तो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में बहुत बड़ा लाभ है। आप जो भी बेचने की योजना बनाते हैं, आपको एक उपयुक्त लॉजिस्टिक पार्टनर चुनना होगा जो आपको परेशानी से मुक्त करने में मदद कर सके। शिपट्रैक के साथ, आप अपने उत्पादों को समय पर वितरित कर सकते हैं और अपने व्यापार को दुनिया भर के एक्सएनयूएमएक्स + देशों तक बढ़ा सकते हैं।

केंद्रीय उत्पाद शुल्क एवं सेवाकर आयुक्तालय की स्थापना वर्ष 1997 में हुई थी। इस आयुक्तालय का अधिकार क्षेत्र पूरे हिमाचल राज्य, संघ शासित प्रदेश चण्डीगढ़ तथा पंजाब राज्य के फतेहगढ़ साहिब जिला में है। इसके अंतर्गत शिमला, चण्डीगढ़, मण्डी गोबिंदगढ़ एवं बद्दी स्थित चार केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं सेवाकर मण्डल है। इस आयुक्तालय का अधिकार क्षेत्र नये बनने वाले अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा, चण्डीगढ़ का भी है।

आयुक्तालय को इसके अंतर्गत अधिसूचित क्षेत्र में केन्द्रीय उत्पाद शुल्क / कर उगाही का कार्य तथा इससे संबंधित प्रशासनिक कार्य सौंपा गया है। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं सेवाकर आयुक्तालय का प्राथमिक कार्य केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1944 तथा इसके अंतर्गत बनाये गये नियमों तथा केन्द्रीय उत्पाद शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1985 के विभिन्न प्रावधानों के कार्यान्वयन तथा संसद द्वारा पारित अन्य संबंधित अधिनियमों जिसके अंतर्गत केन्द्रीय उत्पाद शुल्क या लगाये गये ऐसे अन्य शुल्क की उगाही भी करना है। इसके साथ–साथ वित्त विधेयक, 1994 के अंतर्गत सेवाकर की उगाही करना तथा उसकी अनुपालना करना है। चण्डीगढ़–1 आयुक्तालय के कार्यों का संचालन करने के लिये इसे निम्नलिखित रूप से विभिन्न शाखाओं और परिक्षेत्र कार्यालयों में बांटा गया है –

- मुख्यालय स्तर पर विभिन्न शाखायें
- केन्द्रीय उत्पाद शुल्क मण्डल एवं सेवाकर मण्डल कार्यालय
- केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं सेवाकर परिक्षेतर

आयुक्तालय के अधिकारियों व कर्मचारियों की शक्तियां व कर्तव्य

अधिकारियों के कर्तव्य और शक्तियां केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1944 तथा इसके अंतर्गत बनाये गये नियमों में परिभाषित की गई है। इन्हीं के आगे केन्द्रीय उत्पाद शुल्क मैन्युअल में परिभाषित किया गया है जो कि एक प्रकाशित दस्तावेज है।

केन्द्रीय उत्पाद शुल्क उन सभी वस्तुओं पर (विशेष आर्थिक जोन में उत्पादित माल को छोड़कर) जो भारत में उत्पादित या निर्मित की जाती है, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1985 में विनिर्दिष्ट दरों पर देय होता है। वर्तमान निर्धारण प्रणाली के अंतर्गत एक विनिर्माता को आवश्यक है कि वह अपने विनिर्मित माल पर देय शुल्क का स्वतः निर्धारण कर उसे प्राधिकृत बैंक में जमा कराये। निर्मित माल का विवरण, छूट दावा, अदा किये गये केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के संबंध में ई०आर० 1/2 तथा 3 विवरणियों में भर कर विभाग को प्रस्तुत करना अपेक्षित है। प्रस्तुत की गई इन विवरणियों को संबधित केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारियों द्वारा छानबीन करने की आवश्यकता पड़ती है कि निर्माता द्वारा पूरी राशि की अदायगी कर दी गई है या नहीं। चण्डीगढ़–1 आयुक्तालय के प्रमुख आयुक्त हैं जो अपने अधिकार क्षेत्र में केन्द्रीय उत्पाद शुल्क तथा सेवाकर संग्रहण के लिये उत्तरदायी है साथ ही ग्रुप

'बी' स्तर के अधिकारियों तक की नियुक्ति तथा अनुशासनिक प्राधिकारी हैं। मुख्यालय में इनकी सहायता के लिये अपर आयुक्त / संयुक्त आयुक्त हैं जिन्हें विशिष्ट क्षेत्रों के कार्यों का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। उपायुक्त / सहायक आयुक्त शाखा के प्रभारी हैं जिन्हें और विशिष्ट कार्य सौंपे जाते हैं। उपायुक्त / सहायक आयुक्त के कार्य में अधीक्षक, निरीक्षक, कर सहायक उच्च / अवर श्रेणी लिपिकों आदि द्वारा सहायता प्रदान की जाती है।

चण्डीगढ़–1 आयुक्तालय का अधिकार क्षेत्र चार केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं सेवाकर मंडलों में विभाजित किया गया है। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क मण्डल का क्षेत्र उद्योगों की सघनता, उत्पादित वस्तुओं की जटिलता तथा राजस्व प्राप्तियों की मात्रा पर आधारित होता है। प्रत्येक मंडल का प्रमुख उपायुक्त / सहायक आयुक्त होता है। जिसकी सहायता के लिये अधीक्षक एवं निरीक्षकों सहित एक प्रशासनिक अधिकारी तथा अन्य अनुसचिवीय स्टॉफ होता है। प्रत्येक मण्डल एक अपर आयुक्त / संयुक्त आयुक्त के पर्यवेक्षण नियंत्रण में होता है।

मण्डल कार्यालय का अधिकार क्षेत्र फिर से रेंजों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक रेंज कार्यालय प्रमुख एक अधीक्षक होता है जिसे रेंज अधिकारी कहा जाता है। प्रत्येक रेंज में उनके अधीन एक से दो निरीक्षक होते है। प्रत्येक निरीक्षक के प्रभार में कुछ निश्चित इकाइयां होती है जिनकी संख्या परिक्षेत्र से परिक्षेत्र पर निर्भर करती है। एक निरीक्षक का अधिकार क्षेत्र 'सैक्टर' कहलाता है। अपर / संयुक्त आयुक्त (कार्मिक एवं सतर्कता) कार्मिक एवं सतर्कता मामलों में प्रभारी होते हैं। अपर / संयुक्त आयुक्त (कर अपवंचन) आयुक्तालय में कर अपवंचन गतिविधियों संबंधी कार्यों के लिये उत्तरदायी है अपर / संयुक्त आयुक्त (समीक्षा) का उत्तरदायित्व विभिन्न मूल तथा अपीलीय प्राधिकारियों द्वारा पारित न्यायनिर्णयन आदेशों की समीक्षा करना तथा जो आदेश विधि सम्मत व उचित नहीं है उनके विरूद्ध आगे अपील दायर करना है। अपर / संयुक्त आयुक्त (तक) कानून की व्याख्या एवं उसके अनुपालन कराने के लिये उत्तरदायी है। वह उद्योग एवं व्यापारी वर्ग के लियेडधो 'फेसिलिटेटर' के रूप में कार्य करते है। व्यापारी वर्ग द्वारा उत्पाद शुल्क / कर की सही तरीके से अदायगी की प्रथम जांच केन्द्रीय उत्पाद शुल्क / सेवाकर रेंज के अधीक्षक व उनके स्टाफ द्वारा की जाती है। समय पर राजस्व उगाही तथा प्रक्रिया के उचित अनुपालन की जांच के लिये अपर / संयुक्त आयुक्त के अधीन लेखा परीक्षा शाखा दूसरे जांच बिन्दु के रूप में कार्य करती है।

उद्योग तथा व्यापारी वर्ग एवं विभाग के बीच रेंज कार्यालय प्रथम सम्पर्क कार्यालय होता है। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के करदाताओं को पंजीकरण, घोषणा दायर करना आदि संबंधित क्षेत्राधिकार के सहायक / उपायुक्त के समक्ष आवेदन करना अपेक्षित है जो कि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क पंजीकरण प्रमाणपत्र प्रदान करने के लिये उत्तरदायी है। सेवाकर पंजीकरण के मामलों में करदाताओं को अधीक्षक के समक्ष आवेदन करना अपेक्षित है। वर्तमान निर्धारण योजना के अनुसार एक विनिर्माता, सेवाकर प्रदाता द्वारा स्वतः उत्पादित माल / प्रदान की गई सेवाओं पर देय उत्पाद शुल्क / कर का स्वयं निर्धारण करके इसे प्राधिकृत बैंकों में जमा कराना अपेक्षित हैं। विनिर्मित माल का ब्यौरा, छूट दावा, अदा किये गये उत्पाद शुल्क / सेवाकर का विवरण ई०आर०–1 / ई०आर०–3 / एस०टी०–3 में आवधिक विवरणियां विभाग को प्रस्तुत करना अपेक्षित है। लघु उद्योग क्षेत्र की इकाइयों द्वारा तिमाही विवरणियां भरी जाती है जबकि अन्य इकाईयों द्वारा मासिक विवरणियां प्रस्तुत की जानी अपेक्षित है। सेवाकर के मामलों में करदाताओं द्वारा अर्धवार्षिक विवरणी दाखिल करना अपेक्षित है। यह देखने के लिये कि उत्पाद शुल्क की ठीक–ठीक धनराशि की अदायगी कर दी गई है रेंज स्तर पर संबंधित केन्द्रीय उत्पाद शुल्क / सेवाकर अधिकारियों द्वारा इन विवरणियों की जांच व छानबीन की जानी अपेक्षित है। अब ए०सी०ई०एस० प्रणाली के लागू

होने से उपरोक्त सारी प्रक्रिया कम्प्यूटरीकृत कर दी गई है तथा ऑन–लाईन कर दी गई है। जल्दी ही ए०सी०ई०एस० प्रणाली के अंतर्गत अन्य सभी प्रक्रियायें भी ऑन–लाईन कर दी जायेंगी।

निर्धारण कार्य के अतिरिक्त करदाताओं द्वारा दायर कुछ सांविधिक घोषणाओं की सत्यता की जांच भी रेंज अधिकारी द्वारा की जाती है। रेंज अधिकारी निर्यात किये जाने वाले माल की जांच करते हैं तथा निर्यात किये जाने माल की गुणवता एवं मात्रा के संबंध में प्रमाण पत्र जारी करते हैं। निर्धारण संबंधी उत्पन्न किसी भी विवाद के संबंध में संलिप्त आर्थिक सीमा के आधार पर मंडल के सहायक / उपायुक्त या उनसे वरिष्ठ अधिकारी द्वारा करदाता को कारण बताओ नोटिस जारी किया जाता है। पांच लाख रूपये तक के उत्पाद शुल्क के संबंध में सहायक आयुक्त / उपायुक्त द्वारा कारण बताओं नोटिस जारी किया जाता है। पांच लाख से लेकर 50 लाख तक के उत्पाद शुल्क के मामले में संयुक्त / अपर आयुक्त द्वारा कारण बताओ नोटिस जारी किया जाता है। आयुक्त बिना किसी आर्थिक सीमा के कारण बताओं नोटिस जारी कर सकते हैं। उपरोक्त नोटिस का निर्णय / न्यायनिर्णयन उसी स्तर के अधिकारियों द्वारा किया जाता है।

विभाग द्वारा जारी कारण बताओ नोटिस से एक करदाता के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही की शुरूआत होती है। कारण बताओ नोटिस का जवाब देने के लिये प्रायः तीस दिन का समय दिया जाता है। करदाता द्वारा दिये गये उत्तर तथा व्यक्तिगत सुनवाई के आधार पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी आदेश पारित करते हैं। यह आदेश मूल आदेश अथवा एक न्यायनिर्णयन आदेश कहलाता है। इस आदेश के विरुद्ध आयुक्त (अपील) के पास अपील दायर की जा सकती है। अपील का अगला चैनल सीमा शुल्क, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क सेवाकर ट्रिब्यूनल (सेसटैट) है। ट्रिब्यूनल के आदेश के विरूद्ध उच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय में मामले के आधार पर अपील की जा सकती है।

रेंजों के समूह का कार्य मण्डलीय अधिकारी द्वारा देखा जाता है। वह अधिकारी उपायुक्त या सहायक आयुक्त के स्तर के हो सकते है। मण्डल के प्रभारी के रूप में उप/सहायक आयुक्त को करदाता द्वारा प्रस्तुत घोषणाओं की जांच व उनकी स्वीकृति सहित अधिनियम के अंतर्गत कुछ सांविधिक कार्य करने होते हैं। वह नियमों के अंतर्गत कुछ अनुमतियां प्रदान करते हैं। वह केन्द्रीय उत्पाद शुल्क नियम / वित्त विधेयक के उचित अनुपालन एवं प्रक्रिया के अनुपालन के लिये अपने क्षेत्राधिकार के लिये उत्तरदायी है। उनके पास अर्धन्यायिक कार्य भी है तथा जिन मामलों में 5 लाख रूपये तक की राशि का उत्पाद शुल्क संलिप्त है। उन मामलों की न्यायनिर्णयन शक्तियां है। तथापि मूल्यांकन एवं वर्गीकरण से संबंधित कितनी भी संलिप्त धनराशि के सभी मामलों का निर्णय उनके द्वारा पारित किया जाता है। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क / देयता का अन्तिम कर निर्धारण मण्डल के सहायक / उपायुक्त द्वारा स्वीकृत किया जा सकता है। ऐसे कागजात और रिकार्ड जिन्हें मामलों की स्थिति के अनुसार आवश्यक या उचित समझा जाये की मांग कर उप/सहायक आयुक्त को कर निर्धारण को अंतिम रूप देना अपेक्षित है। वह आसूचना का संग्रह करने या कर अपवंचन अभियान का आयोजन अपने अधिकार क्षेत्र में करने के लिये उत्तरदायी है। मण्डल स्तर पर वह लेखा परीक्षा से सम्बन्धित कार्य के अनुपालन कार्य भी देखते है। करदाता रिफंड / रिबेट के लिये अपने क्षेत्र के उप/सहायक आयुक्त को आवेदन भी कर सकते है। रिफंड / रिबेट दावों के ऐसे आवेदन केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1944 की धारा 11 बी के प्रावधानों के अंतर्गत किये जा सकते हैं। रिफंड / रिबेट दावों को दायर करने तथा स्वीकृत करने के लिये संबंधित अधिकार क्षेत्र के उप/सहायक आयुक्त प्राधिकृत प्राधिकारी है। वह आयुक्त, अपर आयुक्त, संयुक्त आयुक्त को अनुशासन के प्रवर्तन तथा कर्तव्यच्चुत अधिकारियों के विरूद्ध कार्यवाही करने में सहायता करते है।

सभी मण्डल कार्यालयों का पर्यवेक्षण अपर आयुक्त, संयुक्त आयुक्त, उप/ सहायक आयुक्तों तथा अन्य अधीनस्थ अधिकारियों के सहयोग से आयुक्त द्वारा किया जा सकता है।

अपने अधिकार क्षेत्र के कानून और प्रक्रिया के विधिवत अनुपालन का उत्तरदायित्व आयुक्त का है। वह न्यून उदग्रहण (शार्ट लेवी) / अनुदग्रहण (नॉन लेवी) के मामलों का बिना किसी धनराशि की सीमा के न्यायनिर्णयन करते हैं। वह अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा पारित न्यायनिर्णयन आदेशों की समीक्षा भी करते हैं। उपरोक्त कार्यों के साथ–साथ वह लेखा परीक्षा तथा कर अपवंचन शाखाओं से संबंधित कार्यों के पर्यवेक्षण का कार्य भी करते हैं। अपर आयुक्त / संयुक्त आयुक्त आयुक्तालय के पर्यवेक्षण संबंधी कार्य में आयुक्त के सहायक है।

मुख्यालय की अपवंचन रोधी शाखा उत्पाद शुल्क / कर चोरी संबंधी आसूचना एकत्रित करने तथा ऐसी किसी भी गतिविधि को रोकने के लिये प्रभावी कदम उठाने का कार्य करने के लिये उत्तरदायी है। वर्ष में एक करोड़ रूपये से अधिक का राजस्व अदा करने वाले कारखानों का लेखा परीक्षा शाखा द्वारा वर्ष में एक बार तथा अन्यों का वर्ष में दो बार लेखा परीक्षण किया जाता है तथा यह सुनिश्चित करने के लिये कि अदा करने योग्य केन्द्रीय उत्पाद शुल्क का सही तरीके से एवं निर्धारित तिथि तक भुगतान किया गया है, उनके रिकार्ड की पूरी छानबीन की जाती है।

अधीक्षकों, जो कि ग्रुप 'बी' के कार्यकारी राजपत्रित अधिकारी होते हैं, के अतिरिक्त प्रत्येक आयुक्तालय में निरीक्षकों के ग्रुप 'बी' कार्यकारी अधिकारी, ग्रुप 'सी' अनुसचिवीय अधिकारी तथा ग्रुप डी का स्टाफ तैनात होता है।

निर्णय लेने की प्रक्रिया में तथा पर्यवेक्षण एवं उत्तरदायित्वों संबंधी पालन की जा रही कार्यविधि, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क मैनुअल, एडजुडिकेशन मैनुअल, ऑडिट मैनुअल में दिये गये हैं।

पंजीकरण : केन्द्रीय उत्पाद शुल्क / सेवाकर करदाताओं को निर्धारित प्रपत्र में क्षेत्र के सहायक आयुक्त (केन्द्रीय उत्पाद शुल्क पंजीकरण के लिये), अधीक्षक (सेवाकर पंजीकरण मामले में) को पंजीकरण / घोषणायें व आवेदन के लिये आवेदन करना अपेक्षित है। उक्त अधिकारी केन्द्रीय उत्पाद शुल्क पंजीकरण प्रमाण पत्र जो प्राय पंद्रह अंकों का तथा पेन आधारित होता है, प्रदान करने के लिये उत्तरदायी है। अब ए०सी०ई०एस० प्रणाली के अंतर्गत पंजीकरण ऑन–लाईन किये जा रहे हैं।

विवरणियों की छानबीन : स्वतः निर्धारण के बाद करदाताओं द्वारा केन्द्रीय उत्पाद शुल्क / सेवाकर की दायर की गई रिटर्न की निरीक्षक द्वारा जांच की जाती है तथा इसे अधीक्षक को प्रस्तुत किया जाता है। निर्धारण से उत्पन्न किसी विवाद के लिये संलिप्त आर्थिक सीमा के आधार पर मंडल के सहायक / उपायुक्त या उनसे वरिष्ठ अधिकारी द्वारा करदाता को नोटिस भेजा जाता है। अब ए०सी०ई०एस० प्रणाली के लागू होने से रिटर्न फाइल करना तथा जांच करना ऑन–लाईन किया जाता है।

अस्थायी मूल्य निर्धारण : मूल्य विवाद सहित विभिन्न अन्य कारणों से अस्थायी मूल्य निर्धारण तथा उस पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क देयता की करदाता दुबारा छानबीन कर सकते हैं जिसकी स्वीकृति मंडल के सहायक / उपायुक्त प्रदान कर सकते हैं। सहायक आयुक्त द्वारा मामलों की स्थिति के अनुसार ऐसे कागजात व रिकार्ड को जिन्हें वह आवश्यक समझे। मांगने के बाद ऐसे मूल्य निर्धारण को अंतिम रूप देना अपेक्षित है।

न्यायनिर्णयन : विभाग द्वारा कारण बताओ नोटिस जारी करने के बाद किसी करदाता के विरूद्ध विभागीय कार्यवाही की शुरूआत होती है। कारण बताओ नोटिस का उत्तर देने के लिये प्राय तीस दिनों का समय दिया जाता है। उत्तर के आधार पर तथा करदाता की मांग करने पर व्यक्तिगत सुनवाई के दौरान की गई प्रस्तुति के आधार पर आयुक्त से नीचे के स्तर के केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी आदेश पारित करते हैं। इस आदेश को मूल आदेश या

न्यायानिर्णयन आदेश कहा जाता है। इस आदेश के विरुद्ध आयुक्त (अपील) के समक्ष अपील दायर की जा सकती है। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1944 की धारा 35–बी के अंतर्गत इससे अगली अपील सीमा शुल्क, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं सेवाकर ट्रिब्यूनल के पास की जा सकती है। ट्रिब्यूनल के आदेश के विरूद्ध जैसा मामला हो उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

रिफंड / रिबेट : करदाता रिफंड / रिबेट के लिये अपने क्षेत्र के सहायक / उपायुक्त को आवेदन कर सकते हैं। ऐसे रिफंड / रिबेट के आवेदन केन्द्रीय शुल्क अधिनियम, 1944 की धारा 35–बी के प्रावधानों के अनुसार किये जा सकते हैं। क्षेत्र के मंडल कार्यालय के सहायक / उपायुक्त रिफंड / रिबेट के दावे प्रस्तुत करने तथा स्वीकृति करने के लिये प्राधिकृत है।

लेखा परीक्षा : केन्द्रीय उत्पाद शुल्क / सेवाकर करदाताओं का विभाग द्वारा निर्धारित मानदंडों के अनुसार जिसे ई०ए०–2000 कहा जाता है, ऑडिट किया जाता है। आयुक्त के पूर्ण पर्यवेक्षण में अपर / संयुक्त आयुक्त के अधीन केन्द्रीय उत्पाद शुल्क / सेवाकर ऑडिट सैल कार्य करता है। लेखा परीक्षा की पूर्व सूचना देने के बाद अधीक्षक की अध्यक्षता में अधिकारियों की टीम द्वारा इकाईयों का ऑडिट किया जाता है।

निवारक : इस शाखा का मुख्य कार्य आसूचना या सूचना एकत्र करके करदाताओं द्वारा केन्द्रीय उत्पाद शुल्क की चोरी सहित अन्य कर अपवंचन की गतिविधियों को रोकना है। इस शाखा के मुखिया सहायक / उपायुक्त होते हैं जिनकी सहायता के लिये पर्याप्त संख्या में अधीक्षक व निरीक्षक होते है तथा आयुक्त के प्रति जवाबदेह है।

CBEC का नया नाम CBIC पूर्व वित्त मंत्री जेटली ने कहा कि नाम बदलने के लिए कानून में जरूरी सुधार का वित्त विधेयक में प्रस्ताव किया गया था।

देश में जीएसटी लागू होने के बाद केंद्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क बोर्ड (सीबीईसी) का नाम बदलकर केंद्रीय अप्रत्यक्ष कर एवं सीमा शुल्क बोर्ड (सीबीआईसी) कर दिया गया है।

वित्त मंत्री अरुण जेटली ने गुरुवार को संसद में 2018–19 का आम बजट पेश करते हुए यह बात कही। जेटली ने कहा कि नाम बदलने के लिए कानून में जरूरी सुधार का वित्त विधेयक में प्रस्ताव किया गया है।

इसके तहत, टैक्स कलेक्शन की पुरानी चली आ रही व्यवस्था में बदलाव के लिए पूरे देश में ई–एसेसमेंट की प्रणाली शुरू की जाएगी। बिजनेस करने में आसानी के लिए कस्टम एक्ट में सुधार के लिए कई कदम प्रस्तावित हैं। 'मेक इन इंडिया' को बढ़ावा देने के लिए मोबाइल फोन और टीवी पार्ट्स पर कस्टम ड्यूटी बढ़ा दी गई है।

कुछ संदर्भ

- एच०सी० महरोत्रा और वी०पी० अग्रवाल, अप्रत्यक्ष कर : जी०एस०टी० सहित, आगरा, साहित्य, 2019
- एच०सी० महरोत्रा और वी०पी० अग्रवाल, अप्रत्यक्ष कर
- वी०एस० दांते, अलिमेन्टस ऑफ इनडारेक्ट टेक्सिज, 2010
- वी० बाला चंदरन, इनडारेक्ट टेक्सेशन : जी०एस०टी० और कस्टम लॉ, 2019

कुछ प्रश्न

- केन्द्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क बोर्ड के संगठन तथा कार्यों का वर्णन करो।
- केन्द्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क की तत्कालीन नियमावली का वर्णन करो।

अध्याय – 12

वस्तु तथा सेवा कर

(Goods and Services Tax)

रूपरेखा

- वस्तु तथा सेवाकर : अर्थ
- महत्व
- कार्यप्रणाली
- पंजीकरण प्रक्रिया
- दण्ड प्रावधान
- कुछ उपयोगी संदर्भ
- कुछ प्रश्न

वस्तु एवं सेवा कर या जी०एस०टी० भारत सरकार की नई अप्रत्यक्ष कर व्यवस्था है जो 1 जुलाई 2017 से लागू हो रही है। लेकिन जी०एस०टी० क्या है और यह वर्तमान टैक्स संरचना को कैसे सुधार देगा ? इससे भी महत्वपूर्ण सवाल यह है कि भारत को एक नए टैक्स सिस्टम की आवश्यकता क्यों है ? हम इन सवालों के जवाब इस विस्तृत लेख में करेंगे।

1 जी०एस०टी० क्या है ?

2 वस्तु एवं सेवा कर इतना महत्वपूर्ण क्यों है ?

3 जी०एस०टी० कैसे काम करेगी ?

4 जीएसटी कैसे भारत और आम आदमी की मदद करेगी ?

5 क्या आपको जीएसटी पंजीकरण की आवश्यकता है ?

6 जीएसटी के लिए पंजीकरण कैसे करें ?

7 जीएसटी के तहत पंजीकृत नहीं होने के लिए दंड

जी०एस०टी० क्या है (What is G.S.T.)

वस्तु एवं सेवा कर या जी०एस० एक व्यापक, बहु–स्तरीय, गंतव्य–आधारित कर है जो प्रत्येक मूल्य में जोड़ पर लगाया जाएगा।

इसे समझने के लिए, हमें इस परिभाषा के तहत शब्दों को समझना होगा। आइए हम 'बहु–स्तरीय' शब्द के साथ शुरू करें। काई भी वस्तु निर्माण से लेकर अंतिम उपभोग तक कई चरणों के माध्यम से गुजरता है। पहला चरण है कच्चे माल की खरीदना। दूसरा चरण उत्पादन या निर्माण होता है। फिर, सामग्रियों के भंडारण या वेर्हाउस में डालने की व्यवस्था है। इसके बाद, उत्पाद रीटैलर या फुटकर विक्रेता के पास आता है और अंतिम चरण में, रिटेलर आपको या अंतिम उपभोक्ता को अंतिम माल बेचता है।

यदि हम विभिन्न चरणों का एक सचित्र विवरण देखें, तो ऐसा दिखेगा :

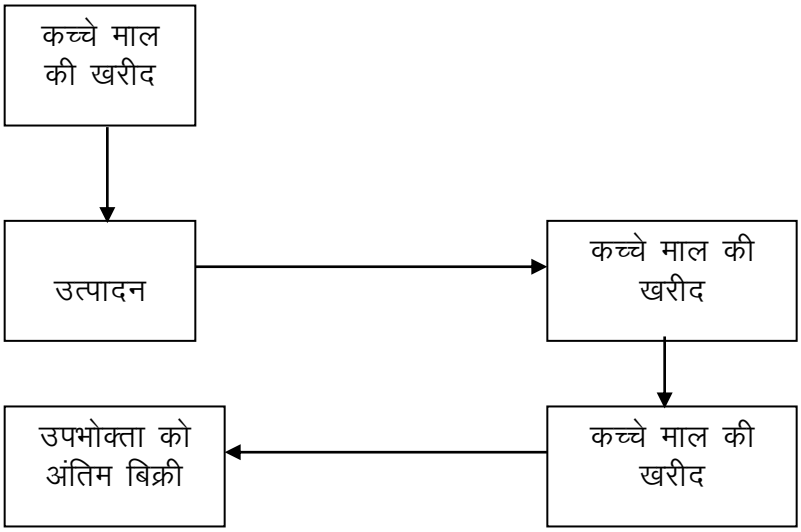

इन चरणों में जी०एस०टी० लगाया जाएगा और यह एक बहु–स्तरीय टैक्स होगा। कैसे ? हम शीघ्र ही देखेंगे, लेकिन इससे पहले, आइए हम 'वैल्यू ऐडिशन' के बारे में बात करें।

मान लें कि निर्माता एक शर्ट बनाना चाहता है। इसके लिए उसे धागा खरीदना होगा। यह धागा निर्माण के बाद एक शर्ट बन जाएगा। तो इसका मतलब है, जब यह एक शर्ट में बुना जाता है, धागे का मूल्य बढ़ जाता है। फिर, निर्माता इसे वेयरहाउसिंग एजेंट को बेचता है जो प्रत्येक शर्ट में लेबल और टैग जोड़ता है। यह मूल्य का एक और संवर्धन हो जाता है। इसके बाद वेयरहाउस उसे रिटेलर को बेचता है जो प्रत्येक शर्ट को अलग से पैकेज करता है और शर्ट के विपणन में निवेश करता है। इस प्रकार निवेश करने से प्रत्येक शर्ट के मूल्य में बढ़ौती होती है।

इस तरह से प्रत्येक चरण में मौद्रिक मूल्य जोड़ दिया जाता है जो मूल रूप से मूल्य संवर्धन होता है। इस मूल्य संवर्धन पर जी०एस०टी० लगाया जाएगा।

परिभाषा में एक और शब्द है जिसके बारे में हमें बात करने की आवश्यकता है – गंतव्य–आधारित। पूरे विनिर्माण श्रृंखला के दौरान होने वाले सभी लेनदेन पर जी०एस०टी० लगाया जाएगा। इससे पहले, जब एक उत्पाद का निर्माण किया जाता था, तो केंद्र ने विनिर्माण पर उत्पाद शुल्क या एक्साइस ड्यूटी लगाता था। अगले चरण में, जब आइटम बेचा जाता है तो राज्य वैट जोड़ता है। फिर बिक्री के अगले स्तर पर एक वैट होगा।

पहले टैक्स लेवी का स्वरूप इस तरह था –

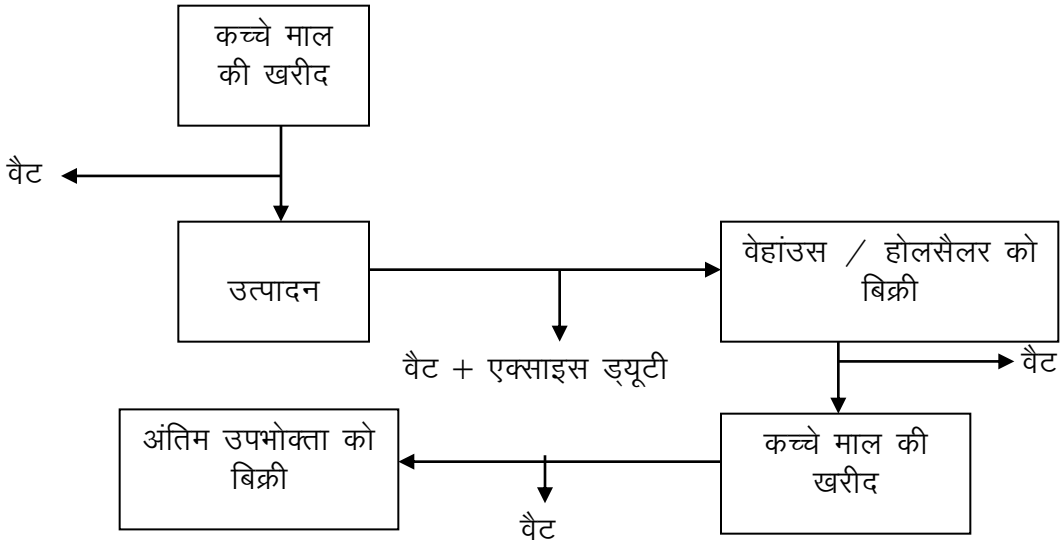

अब, बिक्री के हर स्तर पर जीएसटी लगाया जाएगा। मान लें कि पूरे निर्माण प्रक्रिया राजस्थान में हो रही है और कर्नाटक में अंतिम बिक्री हो रही है। चूंकि जीएसटी खपत के समय लगाया जाता है, इसलिए राजस्थान राज्य को उत्पादन और वेयरहाउसिंग के चरणों में राजस्व मिलेगा। लेकिन जब उत्पाद राजस्थान से बाहर हो जाता है और कर्नाटक में अंतिम उपभोक्ता तक पहुंच जाता है जो राजस्थान को राजस्व नहीं मिलेगा। इसका मतलब यह है कि कर्नाटक अंतिम बिक्री पर राजस्व अर्जित करेगा, क्योंकि यह गंतव्य–आधारित कर है और यह राजस्व बिक्री के अंतिम गंतव्य पर एकत्र किया जाएगा जो कि कर्नाटक है।

वस्तु एवं सेवा कर का महत्व (Significance of GST)

अब हम जीएसटी समझ गए हैं तो हम देखते हैं कि वर्तमान टैक्स संरचना को और अर्थव्यवस्था को बदलने में इतनी महत्वपूर्ण भूमिका क्यों निभाएगी।

वर्तमान में, भारतीय कर संरचना दो में विभाजित है – प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर। प्रत्यक्ष कर या डायरेक्ट टैक्स वह हैं जिसमें देनदारी किसी और को नहीं दी जा सकती। इसका एक उदाहरण आयकर है जहां आप आय अर्जित करते हैं और केवल आप उस पर कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी हैं।

अप्रत्यक्ष करों के मामले में, टैक्स की देनदारी किसी अन्य व्यक्ति को दी जा सकती है। इसका मतलब यह है कि जब दुकानदार अपने बिक्री पर वैट देता है तो वह अपने ग्राहक को देयता दे सकता है। इसलिए ग्राहक आइटम की कीमत और वैट पर भुगतान करता है ताकि दुकानदार सरकार को वैट जमा कर सके। मतलब ग्राहक न केवल उत्पाद की कीमत का भुगतान करता है, बल्कि उसे कर दायित्व भी देना पड़ता है और इसलिए, जब वह किसी आइटम को खरीदता है तो उसे अधिक खर्च होता है।

यह इसलिए होता है क्योंकि दुकानदार को जब वह आइटम थोक व्यापारी से खरीदा था तब उसे कर का भुगतान करना पड़ा था। वह राशि वसूल करने के साथ ही सरकार को भुगतान किए गए वैट की भरपाई के लिए वह अपने ग्राहक को देयता दे देता है जिसे अतिरिक्त राशि का भुगतान करना पड़ता है। लेन–देन के दौरान दुकानदार के लिए अपनी जेब से जो भी भुगतान करता है, उसके लिए रिफंड का दावा करने का कोई दूसरा तरीका नहीं है और इसलिए, उसके पास ग्राहक की देयता को पारित करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

जीएसटी की कार्यप्रणाली (Working of GST)

सख्त निर्देशों और प्रावधानों के बिना एक देशव्यापी कर सुधार काम नहीं कर सकता है। जीएसटी परिषद् ने इस नए कर व्यवस्था को तीन श्रेणियों में विभाजित करके इसे लागू करने की एक विधि तैयार की है। यह कैसे काम करता है ? यहाँ विस्तार से आपको बताएंगे।

जब जीएसटी लागू किया जाएगा, तो 3 तरह के कर होंगे –

सीजीएसटी : जहां केंद्र सरकार द्वारा राजस्व एकत्र किया जाएगा।

एसजीएसटी : राज्य में बिक्री के लिए राज्य सरकारों द्वारा राजस्व एकत्र किया जाएगा।

आईजीएसटी : जहां अंतर्राष्ट्रीय बिक्री के लिए केंद्र सरकार द्वारा राजस्व एकत्र किया जाएगा।

ज्यादातर मामलों में नए शासन के तहत कर संरचना निम्नानुसार होगी –

लेन–देन	नई प्रणाली	पुरानी व्यवस्था	व्याख्या
राज्य के भीतर बिक्री	सीजीएसटी + एसजीएसटी	वैट + केंद्रीय उत्पाद शुल्क / सेवा कर	राजस्व अब केंद्र और राज्य के बीच साझा किया जाएगा
दूसरे राज्य को बिक्री	आईजीएसटी	केंद्रीय बिक्री कर + उत्पाद शुल्क / सेवा कर	अंतर्राष्ट्रीय बिक्री के मामले में अब केवल एक प्रकार का कर (केंद्रीय) होगा।

उदाहरण

महाराष्ट्र में एक व्यापारी ने 10,000 रूपये में उस राज्य में उपभोक्ता को माल बेच दिया। जीएसटी की दर 18 प्रतिशत है जिसमें सीजीएसटी 9 प्रतिशत की दर और 9 प्रतिशत एसजीएसटी दर शामिल है। ऐसे मामलों में डीलर 1800 रूपए जमा करता है और इस राशि में 900 रूपए केंद्र सरकार के पास जाएंगे और 900 रूपए महाराष्ट्र सरकार के पास जाएंगे। इसलिए अब डीलर को आईजीएसटी के रूप में 1800 रूपये चार्ज करना होगा। अब सीजीएसटी और एसजीएसटी को भुगतान करने की आवश्यकता नहीं होगी।

जीएसटी और आम आदमी (GST and Common Man)

जीएसटी इनपुट टैक्स क्रेडिट मूल्य

संयोजन श्रृंखला के एक सहज प्रवाह पर आधारित है। विनिर्माण प्रक्रिया के हर चरण में, व्यवसायों को पिछले लेनदेन में पहले से ही चुकाए गए टैक्स का दावा करने का विकल्प होगा। इस प्रक्रिया को समझना व्यवसायों के लिए महत्वपूर्ण है। यहाँ विस्तृत विवरण दिया गया है।

इसे समझने के लिए, पहले समझ लें कि इनपुट टैक्स क्रेडिट क्या है। यह वह क्रेडिट है जो निर्माता को उत्पाद के निर्माण में इस्तेमाल किए गए इनपुट पर दिया गया कर के लिए प्राप्त होता है। इसके बाद शेष राशि सरकार को जमा करनी होगी।

हम इसे एक काल्पनिक संख्यात्मक उदाहरण के साथ समझते हैं।

एक शर्ट निर्माता कच्चे माल खरीदने के लिए 100 रूपये का भुगतान करता है। यदि करों की दर 10 प्रतिशत पर निर्धारित है और इसमें कोई लाभ या नुकसान नहीं है, तो उसे कर के रूप में 10 रूपये का भुगतान करना होगा। तो शर्ट की अंतिम लागत अब (100 + 10 =) 110 रूपये हो जाती है।

अगले चरण में, थोक व्यापारी 110 रूपये में निर्माता से शर्ट खरीदता है और उस पर लेबल जोड़ता है। जब वह लेबल जोड़ रहा है, वह मूल्य जोड़ रहा है। इसलिए, उसकी लागत 40 रूपए (अनुमानित) से बढ़ जाती है। इसके ऊपर, उसे 10 प्रतिशत कर का भुगतान करना पड़ता है और अंतिम लागत इसलिए हो जाती है (110 + 40 =) 150 + 10 प्रतिशत कर = 165 रूपये।

अब, फुटकर विक्रेता या रिटेलर थोक व्यापारी से शर्ट खरीदने के लिए 165 रूपये का भुगतान करता है क्योंकि कर दायित्व उसके पास आया था। उसे शर्ट पैकेज करना पड़ता है और जब वह ऐसा करता है, तो वह फिर से मूल्य जोड़ रहा है। इस बार, मान लें कि उनका मूल्य अतिरिक्त 30 रूपये है। अब जब वह शर्ट बेचता है, तो वह इस मूल्य को अंतिम लागत (और वैट जिसे वह सरकार को देना होगा) में जोड़ता है। इसके साथ ही उसे सरकार को देय वैट जोड़ना होगा। तो, शर्ट की लागत 214.5 रूपए हो जाती है। इस का एक ब्रेक अप देखते हैं –

लागत = रू० 165 + मान जोड़ = रू० 30 + 10 प्रतिशत कर = रू० 195 + 19.5 = 214.5 रूपये

इसलिए, ग्राहक एक शर्ट के लिए 214.5 रूपये का भुगतान करता है, जिसकी कीमत मूल रूप से केवल 170 रूपये (110 + 40 + 30 रूपये) थी। ऐसा होने के लिए, कर दायित्व हर बिक्री पर पारित किया गया था और अंतिम दायित्व ग्राहक के पास आ गया। इसे करों का व्यापक प्रभाव कहा जाता है जहां टैक्स के ऊपर टैक्स का भुगतान किया जाता है और आइटम का मूल्य हर बार बढ़ता रहता है।

कार्य	लागत	10 प्रतिशत कर	कुल
कच्चे माल खरीदना @ 100	100	10	110
उत्पादन @ 40	150	15	165
मूल्य जोड़ें @ 30	195	19.5	214.5
कुल	170	44.5	214.5

जीएसटी में, इनपुट प्राप्त करने में भुगतान किए गए कर के लिए क्रेडिट का दावा करने का एक तरीका है। इसमें वह व्यक्ति जिसने कर चुकाया है, वह अपने करों को जमा करते समय इस कर के लिए क्रेडिट का दावा कर सकता है।

हमारे उदाहरण में, जब थोक व्यापारी निर्माता से खरीदता है, तो वह अपनी लागत मूल्य पर 10 प्रतिशत कर देता है क्योंकि उसके पास देयता दे दी गई है। फिर वह 100 रूपयों की लागत कीमत पर 40 रूपए का मूल्य जोड़ा और इससे उसकी लागत 140 रूपए हो गई। अब उसे इस कीमत का 10 प्रतिशत सरकार को कर के रूप में देना होगा। लेकिन उन्होंने पहले ही निर्माता को एक कर का भुगतान किया है। इसलिए, इस बार वह क्या करता है, सरकार को टैक्स के रूप में (140 रूपये के 10 प्रतिशत = 14) का भुगतान करने की बजाय वह पहले से भुगतान की गई राशि को घटा देता है। इसलिए उसकी 14 रूपए की नई देनदारी से वह 10 रूपए कटौती करता है और सरकार को केवल 4 रूपए का भुगतान करता है। तो 10 रूपए उसका इनपुट क्रेडिट हो जाता है।

जब वह सरकार को 4 रूपये का भुगतान करता है, तो वह रिटेलर को अपनी देयता दे सकता है। इसके बाद फुटकर विक्रेता उसे शर्ट खरीदने के लिए (140 + 14 =) 154 रूपये का भुगतान करेगा। अगले चरण में, रिटेलर ने 30 रूपये का मूल्य उसकी लागत कीमत में जोड़ दिया और सरकार को उस पर 10 प्रतिशत कर का भुगतान किया। जब वह मूल्य जोड़ता है, तो उसकी कीमत 170 रूपये हो जाती है। अब, अगर उसे उस पर 10 प्रतिशत कर देना पड़ता है, तो वह ग्राहक के दायित्व को पारित कर देता। लेकिन उसके पास इनपुट क्रेडिट है क्योंकि उसने थोक व्यापारी को टैक्स के रूप में 14 रूपये में भुगतान किया है। इसलिए, अब वह अपनी कर दायित्व (170 प्रतिशत = 170) = 17 रूपय से 14 रूपए कम कर देता है और उसे सरकार को केवल 3 रूपए का भुगतान करना पड़ता है और इसलिए वह अब ग्राहक को यह शर्ट (140 + 30 + 17 =) 187 रूपये में बेच सकता है।

कार्य	लागत	10 प्रतिशत कर	वास्तविक देयता	कुल
कच्चे माल खरीदना @ 100	100	10	10	110
उत्पादन @ 40	140	14	4	154
मूल्य जोड़ें @ 30	170	7	3	187
कुल	170		17	187

अंत में, हर बार जब कोई व्यक्ति इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा करने में सक्षम है, तो उसके लिए बिक्री मूल्य कम हो जाता है और उसके उत्पाद पर कम कर दायित्व के कारण लागत मूल्य भी कम हो जाता है। शर्ट का अंतिम मूल्य भी 214.5 रूपये से 187 रूपये कम हो गया, इस प्रकार अंतिम ग्राहक पर कर का बोझ कम हो गया। इसलिए अनिवार्य रूप से, माल और सेवा कर में दो–तरफा लाभ होने वाला है। पहला, यह करों के व्यापक प्रभाव को कम करेगा और दूसरा, इनपुट कर क्रेडिट की अनुमति के द्वारा, यह कर के बोझ को कम करेगा और उम्मीद है, कीमतें भी कम हो जाएंगी।

जीएसटी पंजीकरण (GST Registeration)

जीएसटी सभी व्यवसायों पर लागू होगा।

व्यवसायों में शामिल हैं – व्यापार, वाणिज्य, निर्माण, पेशे, व्यवसाय या किसी अन्य समान कार्यवाही, इसकी पसार या प्रायिकता के बावजूद। इसमें व्यवसाय शुरू करने या बंद करने के लिए माल / सेवाओं की आपूर्ति भी शामिल है।

सेवाओं का मतलब वस्तु के अलावा कुछ भी है। यह संभावना है कि सेवाएं और सामान एक अलग जीएसटी दर होगी।

जीएसटी सभी व्यक्तियों पर लागू होगा।

व्यक्तियों में शामिल हैं – व्यक्तियों, एचयूएफ (हिंदू अविभाजित परिवार), कंपनी, फर्म, एलएलपी (सीमित दायित्व भागीदारी), एओपी, सहकारी सोसायटी, सोसाइटी, ट्रस्ट आदि। हालांकि, जीएसटी कृषक विशेषज्ञों पर लागू नहीं होगी।

कृषि में फूलों की खेती, बागवानी, रेशम उत्पादन, फसलों, घास या बगीचे के उत्पादन शामिल हैं। लेकिन डेयरी फार्मिंग (दूध का व्यापार), मुर्गी पालन, स्टॉक प्रजनन (पशु– अभिजनन क्षेत्र), फल या संगमरमर या पौधों के पालन में शामिल नहीं है।

जीएसटी पंजीकरण की आवश्यकता कब होगी –

जीएसटी पंजीकरण प्राप्त करने के लिए पैन अनिवार्य है। हालांकि, अनिवासी व्यक्ति सरकार द्वारा अनिवार्य अन्य दस्तावेजों के आधार पर जीएसटी पंजीकरण प्राप्त कर सकता है।

एक पंजीकरण प्रत्येक राज्य के लिए आवश्यक होगा। करदाता राज्य में अपने अलग–अलग बिजनेस वर्टिकल (व्यापार ऊर्ध्वाधर) के लिए अलग–अलग पंजीयन प्राप्त कर सकते हैं।

निम्नलिखित मामलों में जीएसटी पंजीकरण अनिवार्य है –

कारोबार आधार

वित्तीय वर्ष में आपके कारोबार की सीमा 20 लाख रूपए से अधिक होने पर जीएसटी एकत्र करना और भुगतान करना होगा। (कुछ विशेष श्रेणी राज्यों के लिए 10 लाख है)। यह सीमा जीएसटी के भुगतान के लिए लागू होती है।

''कुल कारोबार'' का मतलब सभी कर योग्य आपूर्ति, मुक्ति की आपूर्ति, वस्तुओं के निर्यात और / या सेवाओं और एक समान पैन वाले व्यक्ति की अंतर–राज्य की आपूर्ति को सभी भारत के आधार पर गणना करने और करों को शामिल करने के लिए (यदि कोई हो) सीजीएसटी अधिनियम, एसजीएसटी अधिनियम और आईजीएसटी अधिनियम के तहत देय होगा।

अन्य मामले (कारोबार के बावजूद जीएसटी पंजीकरण अनिवार्य है)

- माल / सेवाओं की अंतर–राज्य आपूर्ति करने वाले
- कोई भी व्यक्ति जो एक कर योग्य क्षेत्र में माल / सेवाओं की आपूर्ति करता है और इसमें व्यवसाय का कोई निश्चित स्थान नहीं है – जिसे आकस्मिक कर योग्य व्यक्तियों के रूप में संदर्भित किया जाता है। ऐसे व्यक्ति को जारी किए गए पंजीकरण 90 दिनों की अवधि के लिए वैध है।
- कोई भी व्यक्ति जो माल / सेवाओं की आपूर्ति करता है और भारत में व्यापार का कोई निश्चित स्थान नहीं है, जिसे अनिवासी कर योग्य व्यक्ति कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति को जारी किए गए पंजीकरण 90 दिनों की अवधि के लिए वैध है।
- रिवर्स प्रभारी तंत्र के तहत कर का भुगतान करने वाले व्यक्ति को। रिवर्स चार्ज तंत्र का मतलब है कि जहां सामान / सेवाओं को प्राप्त करने वाले व्यक्ति को आपूर्तिकर्ता के बजाय कर का भुगतान करना पड़ता है।
- एजेंट या किसी अन्य व्यक्ति जो अन्य पंजीकृत कर योग्य व्यक्तियों की ओर से आपूर्ति करता है।

- वितरक या इनपुट सेवा वितरक। इस व्यक्ति के पास आपूर्तिकर्ता के कार्यालय के रूप में एक ही पैन है। यह व्यक्ति आपूर्तिकर्ता के एक अधिकारी है, वह सीजीएसटी / एसजीएसटी / आईजीएसटी के ऋण को वितरित करने के लिए आपूर्ति और टैक्स चालान को प्राप्त करता है।
- ई–कॉमर्स ऑपरेटर (ई–व्यवसाय)
- ई–कॉमर्स ऑपरेटर के माध्यम से आपूर्ति करने वाले व्यक्ति (ब्रांडेड सेवाएं को छोड़कर)
- एग्रीगेटर जो अपने ब्रांड नाम के तहत सेवाएं प्रदान करता है।
- भारत में एक व्यक्ति को भारत से बाहर एक जगह से ऑनलाइन सूचना और डेटाबेस पहुंच या पुनर्प्राप्ति सेवाओं की आपूर्ति करने वाले व्यक्ति (एक पंजीकृत कर योग्य व्यक्ति के अलावा)।

पंजीकरण प्रक्रिया (Registration Procedure)

जीएसटी पंजीकरण करने के लिए आवश्यक दस्तावेज हैं –

- फोटो
- करदाता का संविधान
- व्यापार स्थान के सबूत
- बैंक खाता विवरण
- प्राधिकरण फार्म

जीएसटी के तहत पंजीकृत नहीं होने के लिए दंड

कोई भी अपराधी जो टैक्स का भुगतान नहीं कर रहा है या कम भुगतान करता है, उसे देय कर राशि का 10 प्रतिशत (जिसमें से 10000 न्यूनतम राशि है) जुर्माना देना होगा। जहां एक संकल्पित करवंचन देखा गया वहां अपराधी को देय कर राशि का 100 प्रतिशत जुर्माना देना होगा। हालांकि, अन्य वास्तविक त्रुटियों के लिए, जुर्माना कर का 10 प्रतिशत है।

कुछ प्रश्न

- GST क्या है। इसके कितने प्रकार है। GST से होने वाले लाभ व हानियों का वर्णन करे।
- भारत में कर सुधार के संदर्भ में GST के महत्व व GST की कार्यप्रणाली पर एक निबंध लिखे।